हमारी उत्तमोत्तम सरल सुन्दर सचित्र पुस्तकें ।

नेमिनाथ-चरित्र	१०)
आदिनाथ-चरित्र	८)
शान्तिनाथ-चरित्र	८)
पार्श्वनाथ-चरित्र	८)
राजा सम्प्रति	७)
चन्दराजा	६)
सविधि स० पञ्च प्रतिक्रमणसूत्र	६)
श्रीपाल-चरित्र	४॥)
वीर अम्बड़	४)
उत्तम कुमार	४)
राजा यशोधर	४)
शुकराज कुमार	२)
अभय कुमार	१॥)
नल-दमयन्ती	१॥)
राजा-प्रियंकर	१॥)
जम्बूस्वामी	१॥)
हरिबल मच्छी	१॥)
मुनिपति-चरित्र	१॥)
रतिसार कुमार	१।)
राजा हरिश्चन्द्र	१।)
पर्युषणपर्वमाहात्म्य	१।)
शीलवती	१)
सुरसुन्दरी	१)
चन्दनबाला	१)
कलावती	॥।)
चम्पक सेठ	॥।)
जय विजय	॥।)
राजर्षि प्रसन्नचन्द्र	॥।)
सुदर्शन सेठ	॥।)
अञ्जनासुन्दरी	॥।)
कयवन्ना सेठ	॥।)
रत्नसार कुमार	॥।)
स्थूलभद्र मुनि	॥।)
तेरह काठिये	॥।)
ललितांग कुमार	॥।)
काम-कुम्भ माहात्म्य	॥।)
सती सीता	॥।)
अरणिक मुनि	॥)
आनन्द श्रावक	॥)
नमस्कार मन्त्र माहात्म्य	॥)
कूर्मा पुत्र	॥)
इलाची कुमार	॥)
लकड़हारा	॥)
रत्नशिखर	॥)
सती राजीमती	॥)
महासती मृगावती	॥)
महाशतक श्रावक	।=)
ब्राह्मी-सुन्दरी	।=)
कामदेव श्रावक	।=)
सुरादेव श्रावक	।=)
नन्दिनीप्रिय श्रावक	।=)
अतिमुक्त कुमार	।=)
ज्ञा० पञ्चमी माहात्म्य	।=)
कुण्डकोलिक श्रावक	।)

पता :—पण्डित काशीनाथ जैन, पो० बंबोरा (उदयपुर-मेवाड़)

(१०) जो सज्जन हमारे कार्यालयमें आकर या पोष्ट मनि-आर्डर द्वारा ११) रुपये पेशगी जमा करवा देंगे, वे इस साहित्य-मालाके "स्थायी" ग्राहक बन सकेंगे और एक-एक प्रति क्रमशः उनकी सेवामें पौणे मूल्यसे वि० पी० पार्सल द्वारा भेजी जायगी। अगर एक प्रतिसे अधिक मंगवायेंगे तो उसके दाम पूरे लिये जायेंगे।

(११) संरक्षक, सहायक, आजीवन सभासद, और स्थायी ग्राहक जो बाहर गाँवके होंगे, उनकी पुस्तकोंके भेजनेका डाक खर्च लगेगा, वह उन्हीं सज्जनोंके जिम्मे रहेगा।

(१२) "माला" के नियमोंमें किसी प्रकारका परिवर्तन करनेका अधिकार अध्यक्ष महोदयके जिम्मे रहेगा और जो भी नियमोंमें परिवर्तन किया जायगा, वह सभीको मान्य होगा।

७, खेलात घोष लेन,
कलकत्ता-६
बसन्त पञ्चमी १९६०

निर्मल सिंह जैन
व्यवस्थापक :—
'आदिनाथ हिन्दी-जैन-साहित्य-माला'

राजा सम्प्रति

जैन धर्म का दिग्विजय

पहला परिच्छेद

बाल-युवराज



प्रातःकालका समय होनेसे दो घुड़-सवार प्रभातकी शीतल-मन्द-सुगन्धमयी वायु सेवन करनेके लिए नगरसे बाहर चले जा रहे थे। उस समय क्षिप्रानदीका निर्मल जल अपनी रूपहरी चादर बिछाकर दर्शकोंका ध्यान आकर्षित कर रहा था। एक ओर नदीका विशाल-प्रवाह, दूसरी ओर विशाल तरुवरोंसे सुशोभित यह रमणीय प्रदेश उन अश्वारोहियोंको आनन्द प्रदान कर रहा था। साथही वे अश्व भी मानों आनन्द-मग्न होकर शीतल-मन्द वायुकी लहरोंका अनुभव करते हुए मन्द-मन्द गतिसे चले जा रहे थे। दोनों ही घोड़े एकसे दिखाई देते थे। एक पर प्रौढ़ावस्थाका पुरुष बैठा

हुआ था, और दूसरेपर सात वर्षका कुमार था। किन्तु सात वर्षकी अवस्था होते हुए भी उसकी स्फूर्ति अद्भुत थी। उसके बाल्यतेजका प्रभाव भी अपूर्व था। अर्थात् उसमें बालकोचित् उपद्रव, मस्ती और हुकुम देनेकी आदत आदिके अङ्कुर अभीसे प्रकट होते दिखाई देते थे। वह उस प्रौढ़ व्यक्तिसे वार्तालाप करते हुए नयी-नयी बातें पूछता था।

"यह अवन्ती भी हमारे नगरके समान ही है। कितना सुन्दर नगर है?" उस बालकने आनन्दमय उद्गार व्यक्त किये।

"हाँ, युवराज! यह नगर सुन्दर क्यों न होगा? मालव-देशका तो यह तिलक ही माना जाता है। और उसमें भी यह अवन्ती तो उसकी राजधानी ही है? श्री और समृद्धि एवं मालवेकी सुन्दरताका यह नगर केन्द्रस्थान है।" प्रौढ़ पुरुषने उत्तर दिया।

"पिताजीने मुझे यहाँ भेजकर ठीक ही किया है। क्योंकि ऐसा आनन्द मुझे वहाँ अथवा अन्य कहीं भी नहीं मिल सकता था। मुझे नित्य ही यहाँ टहलनेके लिए आना बहुत अच्छा लगता है। घोड़ा दौड़ाने, तलवार-फिराने, तीर चलाने, कुश्ती लड़ने आदि खेलोंमें भी मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है।" बालकने फिर कहा।

"ठीक भी है युवराज! तुम्हें युद्ध करनेके खेल तो ध्यान देकर सीखना ही चाहिए! उसीके साथ-साथ कुछ पढ़ने-लिखनेका अभ्यास भी तुम्हें अब करना चाहिए। पुरुषके लिए तो कलम, कुड़छी—चम्मच और बर्छी, तीनों कलाओंमें प्रवीण होना आवश्यक है।"

"पर, ये तीनों कलाएँ क्या हैं? चाचाजी!"

"कलम अर्थात् पढ़ने-लिखनेकी कला, इसमें पुरुषको लिखना-पढ़ना अवश्य सीखना चाहिए। उसमें भी फिर तुम्हें तो अब विशेष शास्त्रका अभ्यास भी करना उचित है। क्योंकि जिसे राजा बनना हो वह यदि शिक्षित न हो, तो उसके राज्य-प्रबन्धमें अनेक त्रुटियाँ रह जाती हैं। विद्याध्ययनसे बुद्धि विकसित होती है। साथ ही राज्य-प्रजा दोनोंका हित समझमें आ सकता है। प्रबन्धकी त्रुटियोंको सुधारा जा सकता है। राज्य और प्रजाकी उन्नतिमें शास्त्र बड़ी ही सहायता करते हैं। इसी प्रकार कुड़छी या चम्मचका मतलब है पुरुषको रसोई—भोजन बनानेकी कलामें भी प्रवीण होना चाहिए।

"पुरुषके लिए और रसोई बनाना? यह काम तो स्त्रियोंका है।" इस प्रकार कहते हुए बालक मुँह बनाकर हँसा और बोला "आप ऐसी ढीली-ढाली बातें

क्यों करते हैं? कोई शूर-वीरताकी बातें कहिये; जिससे आनन्द प्राप्त हो!"

"यह भी ठीक है। बर्छी अर्थात् तलवार, भाला, तीर आदि फैंकने–चलानेका भी अभ्यास होना आवश्यक है। यह युद्धकला भी तुमको सिखाई जा रही है। जसे-जैसे बड़े होते जाओगे वैसे-वैसे युद्धमें भी तुम पारंगत हो सकोगे! इस प्रकार तुम निर्भय हो जाओगे! अभी तुम बालक हो, इसीलिए कुड़छी-चम्मचका महत्त्व तुम्हारी समझमें नहीं आता। किन्तु प्रसंग आनेपर इसका भी कितना महत्त्व है, इसे कोई-कोई ही समझ सकता है!"

"हाँ, लड़ना-भिड़ना, मारपीट करना, दूसरोंको दबादेना आदि काम तो मुझे अवश्य अच्छे लगते हैं और शस्त्रविद्या सीखनेमें मुझे कितना आनन्द प्राप्त होता है; इसका आपको कैसे पता लग सकता है?"

"तो क्या शास्त्रका अभ्यास आपको अच्छा नहीं लगता?"

"ऐसी बात तो नहीं है। मैं पढ़ूँगा, किन्तु..."

"तो ठीक है! महाराजकी आज्ञा प्राप्त कर तुम्हारी पढ़ाई आरम्भ कर देनी चाहिए?"

"तब तो बहुत अच्छा होगा...किन्तु इस नदीमें





युवराजने घोड़ेकी लगाम मोड़ दी और उसके पीछे वह प्रौढ़ अश्वारोही भी चलदिया। (पृष्ठ ५)

हम जब स्नान करेंगे, तो पानीमें खेलते हुए बड़ा आनन्द प्राप्त होगा।"

"किन्तु अभी ही हम स्नान कैसे कर सकते हैं? अभी तुम्हें ठीक तरहसे तैरना भी तो नहीं आता; और इस नदीका जल भी बहुत गहरा है।"

"तब तो मैं अवश्य स्नान करूँगा! मुझे तैरना आता है। थोड़ी ही देरमें नहा कर हम लौट चलेंगे। इस समय नहानेसे बड़ा आनन्द प्राप्त होगा!" कुमारने घोड़ा रोक दिया।

"युवराज! आप स्नान भले ही करें, किन्तु यहाँ जलके साथ खिलवाड़ करना ठीक नहीं। उसमें भी यहाँ जल बहुत गहरा है। हम उधर घाटकी तरफ चलें, वहाँ आपको स्नान करनेमें अधिक आनन्द प्राप्त होगा।

"अच्छी बात है। उधर ही चलिये।" युवराजने घोड़ेकी लगाम मोड़ दी और उसके पीछे वह प्रौढ़ अश्वारोही भी चलदिया। किसी भी प्रकारसे युवराजका चित्त प्रसन्न रखना उसका कर्त्तव्य था। राजकुमारकी चाहे जैसी उद्धताई या मस्ती होने पर भी उसे समझा बुझा कर या दूसरी ओर उसका मन मोड़कर, हमेशा प्रसन्न रखते हुए उसकी मनोवृत्तिको सुधारना ही उस अश्वारोहीका तथा अन्य अनेक

पुरुषोंका कर्त्तव्य-कर्म था। फिर भी बाल युवराजके संस्कार ही कुछ इस प्रकारके थे कि वह अपने आपको राजा और दूसरोंको सेवक समझकर किसीको भी महत्त्व नहीं देता था। अनेक स्त्रियाँ, दास-दासियाँ और पुरुष उसे प्रसन्न रखनेके लिए निरन्तर आतुर रहते थे, और अपने सुन्दर शरीर एवं बालोचित आनन्दी स्वभावके कारण वह प्रायः सभी स्त्री-पुरुषोंके लिए अत्यन्त प्रिय होगया था। दूसरी ओर उसके जीवनको किसी प्रकारकी भी गर्म-आँच लगनेपर उस एकके जीवनके पीछे हजारों जीवोंका बलिदान हो जानेकी बात भी वे जानते थे। इसी कारण कुछ तो राजभयसे और कई स्नेहवश युवराजके जीवनकी सुरक्षितताके लिए सतत सावधान रहते थे।

वापस लौटते हुए अश्वारोही मन्दगतिसे नदीके घाटकी ओर जा रहे थे। राजकुमार बीच-बीचमें अनेक प्रकारके प्रश्न पूछता जाता था। अपनी बाल्य क्रीड़ाके अनुरूप अनेक कुतूहल करता हुआ कभी वह उस प्रौढ़ पुरुषका सिर भी पचा देता था। किन्तु नदीके घाटपर पहुँचते ही कुमारका विचार बदल गया। क्योंकि उस समय वहाँ हजारों मनुष्य आ-जा रहे थे। अनेक युवतियाँ पानीके घड़े भरकर

सिरपर रखे अपनी सखियोंसे बातचीत करती हुईं घर लौटती दिखाई देती थीं। शान्तिका साम्राज्य होनेसे नगर आनन्दमें मस्त हो रहा था। नगरका तेजप्रताप, गौरव और रूप उसके सौन्दर्यको आकर्षक बना रहे थे और यह सब अवलोकन करते हुए वे अश्वारोही आगे बढ़ रहे थे। वह प्राकृतिक सौन्दर्य उनके चित्तको प्रसन्न कर रहा था।

"चाचाजी! चलिये, वापस लौट चलें।" कुमारने कहा।

"क्यों? क्या स्नान करनेका विचार नहीं है?" प्रौढ़ पुरुषने पूछा।

"नहीं! दिन बहुत चढ़ गया है; अतः अब हमें किलेमें पहुँच जाना चाहिए।"

"जैसी आपकी इच्छा।"

नगरके छोटे-बड़े प्रत्येक व्यक्ति उन अश्वारोहियोंको नमन करके विनय-पूर्वक मार्गसे हट जातेथे। सिपाही और अधिकारी वर्ग भी सैनिक ढंगसे उन्हें सलाम करके उनकी प्रसन्नता-सम्पादन करनेके लिए उत्सुक रहते थे। दोनोंकी वेशभूषा राजवंशी होते हुए भी उस समय घूमनेवाले शिकारियों जैसी ही थी। नगरके मुख्य द्वारमें प्रवेशकर वे साथ-साथ किलेमें चले गये।

वह प्रौढ़पुरुष अवन्तिकाका अधिकारी माधवसिंह था। इधर कुछ समयसे उसकी गणना मगधेश्वर सम्राट्के सम्मुख सामन्तोंमें होती थी। नियमित रूपसे सम्राट् अशोककी ओरसे समय-समयपर कारभारियों और अधिकारियोंकी बदली होती रहती थी।

वह बालकुमार मगधपति महाराज अशोकका पुत्र कुणाल था। उसे जन्म देते ही माताने देह त्याग दिया था। इसी कारण राजकुमार कुणालपर महाराजका विशेष स्नेह था। वही राज्यका उत्तराधिकारी होनेसे बाल्यावस्थामें ही महाराजने उसे 'युवराज'-पद प्रदान कर दिया था। उन दूरदर्शी मगधेश्वरने विचार किया कि :—"मैं राज्य प्रबन्धमें लगा रहनेसे इस मातृ-विहीन कुमारकी ठीकसे देख-रेख न कर सकूँगा, और यही राज्यका उत्तराधिकारी होनेसे सौतेली माताओंकी आँखोंमें भी यह बुरी तरह चुभता होगा। वे कदाचित उचित अवसरकी प्रतीक्षामें भी होंगी कि मेरी असावधानीसे लाभ उठाकर कुणालका जीवन ही समाप्त करदें। अतएव उन सौतेली माताओंसे इसे दूर ही रखना उचित है।" इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर सम्राट् अशोकने अपनी चतुरङ्गिनी सेना सहित विश्वस्त प्रधानोंके साथ कुणालको उज्जयिनी भेज दिया

था। अतएव देवताओंके समान क्रीड़ा करता हुआ युवराज कुणाल अवन्तिका में रहकर सुखपूर्वक अपना काल निर्गमन कर रहा था। साथ ही सम्राट् स्वयं अपने हाथोंसे नियमित पत्र लिखकर उसके प्रति अपना स्नेह प्रदर्शित करते रहते थे। आज कितने ही वर्षों से कुणाल इस प्रकार अवन्तिकामें समय व्यतीत कर रहा था। क्रमशः उसकी अवस्था आठ वर्ष की होगई।

कुमारकी पढ़ने योग्य अवस्था हो जानेसे प्रधानोंने मगधेश्वरको उसका सब विवरण लिख भेजा; और साथ ही कुशलक्षेमके समाचार भी सूचित कर दिये।

दूसरा परिच्छेद

तिष्यरक्षिता

—:o:—

"महारानीजी! यदि आप अप्रसन्न न हों तो मैं कुछ निवेदन करूँ!" इस प्रकार एकदिन एकान्तमें अवसर पाकर एक दासीने अपनी स्वामिनीसे कहा:—

"तू क्या कहना चाहती है?" उसने बेपर्वाहीसे उत्तर दिया।

"आप आज कितनेही दिनोंसे उदास दिखाई देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों आपके हृदयमें कोई शल्य चुभ रहा है! आपके मनका भेद किसीको ज्ञात नहीं होता! ऐसी क्या बात है?" दासीने कहा।

"तुझे उससे क्या प्रयोजन है? तुझ जैसी दासियोंको बड़ोंके काममें सिर देनेकी क्या आवश्यकता है?"

"केवल इसीलिए कि यदि आपका कोई कार्य हो तो उसे सेवाके द्वारा मैं अपना नमक अदा कर सकूँ। जो कुछ सहायता मुझसे हो सकती हो उसके लिए मैं प्रस्तुत हूँ।

"तू मेरी सहायता करना चाहती है, किन्तु तेरा विश्वास क्या है, श्यामा?"

"विश्वास तो हम पर रखना ही चाहिए। आजतक आपकी सेवा करनेपर भी आप हमारे हृदयको न परख सकीं; यह भी हमारा अभाग्य ही है!" कुछ अप्रसन्नतासी प्रकट करते हुए श्यामाने उत्तर दिया।

"श्यामा! श्यामा! तू इतना भी नहीं समझती कि, वह बैरन, छोकरेको छोड़कर क्या मर गई, मुझे सदैवके लिए मार गई! गरीब बेचारा मेरा महेन्द्र!" रानीने निःश्वास छोड़ते हुए अपने उद्गार प्रकट किये।

"मैंने भी यही अनुमान किया था कि उस सौतने

मरते-मरते यह बदला चुकाया है। महारानीजी! उस बिना माँके लड़केपर महाराजाके चारों हाथकी छाया भी तो है।"

"परन्तु अब हम कर भी क्या सकते हैं? महाराजने तो उसे 'अवन्ती' भेज दिया है, नहीं तो अबतक कभीका उसे उसकी माँके पास भेज दिया होता, और मेरे महेन्द्रका मार्ग निष्कण्टक हो जाता।"

और आपके इस शुभ कार्यमें मैं भी सच्चे हृदयसे आपकी सहायता करती; किन्तु इस प्रकार उस काले कर्म करनेवाली श्यामाने जलती हुई आगमें घी डालकर उसे अधिक भड़काया।

"फिर भी यदि मौका मिला तो, भले ही वह उज्जयिनीमें भी क्यों न रहे; मैं यहीं बैठी हुई जब उसे राज्यभ्रष्ट कर दूँगी, तभी मुझे चैन पड़ेगी।"

"आपका कथन सर्वथा सत्य है महारानीजी! देखा न आपने; महाराजने उसे बाल्यावस्थासे ही युवराजका पद देकर राज्यका उत्तराधिकारी बना दिया है। क्या आप महाराजको समझा नहीं सकतीं?"

"अरी! मैं तो बात ही बातमें कितने ही दिनोंसे महाराजको मोहपाशमें फँसाकर अपना काम बना लेनेका अवसर देख रही हूँ। किन्तु महाराज समझें, तब तो!

वे और सब बातें सुनते हैं; किन्तु कुणालकी चर्चा होने पर ध्यान ही नहीं देते।"

"एकाधदिन अत्यधिक प्रेम-भाव बताकर उन्हें विवश करते हुए अपना काम बना लीजिये नँ! प्रेम ही प्रेममें एकबार वे स्वीकार करलें; फिर तो सारी बाजी अपने हाथमें है! अतः प्रयत्न छोड़ना उचित नहीं। आज महाराज आपका जितना सम्मान करते हैं; क्या उस दृष्टिसे आपको राजमाता बनने की इच्छा नहीं होती? यदि अभीसे नहीं चेतोगी, तो उस सौतके बेटे द्वारा तिरस्कार-पूर्वक फैंके हुए टुकड़ों पर ही आपको पराधीन जीवन बिताना पड़ेगा! और कुमार महेन्द्रकी तो और भी न जाने क्या दशा होगी!"

"यह सब मैं भी समझती हूँ, और इसीलिए सदैव जागृत-सावधान रहती हूँ। महेन्द्रको राज्यका उत्तराधिकारी बनवानेके लिए मैं अनेक प्रकारके प्रयत्नमें लगी हुई हूँ। केवल अवसर-मौकेकी राह देख रही हूँ।"

"प्रभु आपके इस शुभ कार्यमें सहायक हों और आपकी मनोकामना पूर्ण हो।" "मैं रातदिन इसी प्रयत्नमें हूँ कि किसी प्रकार महाराजको अपने चक्रमें फँसाकर काम बना लूँ। भला, महाराज भी कैसे हैं, जो उसके पीछे पागलसे हो रहे हैं। वह मुआ, इतनी

दूर है, फिर भी उसके लिए कितनी चिन्ता रखते हैं ! गरीब मेरा महेन्द्र ! उस कुणालसे आधा प्रेम भी कभी महाराजने इस बेचारेके प्रति दिखलाया है ? क्या मैं मूर्ख हूँ जो कि यह सब नहीं समझती ? किन्तु समय आनेपर देखना है।" इस प्रकार तिरस्कार-पूर्वक महारानीने अपने उद्गार प्रकट किये। उस समय कुछ क्रोध एवं तिरस्कारसे उसका शरीर काँप रहा था। उस गौर मुखमण्डलपर क्रोधकी रक्तवर्णीय छाया व्याप्त हो रही थी और वह श्यामसुखवाली श्यामा अपनी स्वामिनीको इस दुःखमें दिलासा दे रही थी।

मगधकी तत्कालीन सम्पूर्ण शोभा एवं सौन्दर्यके प्रतीक एवं महान् ऐश्वर्यशाली पाटलीपुत्र-पटनाके एक विशाल एवं स्वर्गके विमानको भी लज्जित करनेवाले इन्द्रभवनमें इस समय ये दोनों स्त्रियाँ बैठी हुईं बातें कर रही थीं। संसारकी रूपवती रमणियोंका मान-मर्दन करनेवाली एक महिला थी महाराज अशोककी प्रिय महारानी तिष्यरक्षिता। वह महाराजाकी प्रिय एवं पुत्रवती होते हुए भी दुःखी थी। विधिका विधान ही ऐसा कुछ विचित्र एवं विपरीत गतिवाला है कि जो समस्त सुखोंमें कुछ न कुछ विघ्न-बाधा उपस्थित कर ही देता और इस प्रकार मनुष्य-जीवनके साथ उपहास

करता रहता है। मगधराज अशोककी कई महारानियाँ थीं, किन्तु उनमें तिष्यरक्षिता मुख्य थी, अर्थात् महाराज पर अपने रूप, चातुर्य एवं हावभाव द्वारा जैसा प्रभाव वह डाल सकती थी, उतनी कुशलता अन्य रानियोंमें नहीं थी। इसीलिये वह महाराजको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी। राज्यकार्य एवं शासन-प्रबन्धमें भी वे महारानीसे परामर्श किया करते थे। उस प्रियतमाकी प्रसन्नताके लिए महाराज क्या-क्या नहीं करते ? किन्तु फिर भी कुटिल महारानीको सन्तोष नहीं होता था। क्योंकि उसका लक्ष्य तो कुछ और ही था, और महाराजाकी इतनी कृपापात्र होते हुए भी वह अब तक उस उद्देश्यको सिद्ध नहीं कर सकी थी, क्योंकि सभी बातोंमें उसकी इच्छानुसार चलनेवाले महाराज अशोक कुणालके सम्बन्धमें वह जो कुछ कहती उसे चुपचाप सुन लेते थे, किन्तु कोई स्पष्ट उत्तर नहीं देते थे। एवं उसके शब्दोंमें स्वार्थमयी भावना देखकर ही उस मातृहीन बालककी प्राणरक्षाके विषयमें सदैव सतर्क रहते थे।

इस प्रकार महाराज अशोकके राजकुमारोंमें कुणाल जिसप्रकार अवन्तीमें पिताके प्रयत्नसे आनन्दमय दिन व्यतीत कर रहा था; उसी प्रकार दूसरा पुत्र महेन्द्र भी उसीका समवयस्क होते हुए तिष्यरक्षिताका पुत्र था।

इनके सिवाय भी और कई पुत्र थे। उन्हींमें संघमित्रा नामकी पुत्री भी थी। राजकुमार महेन्द्र मातापिताकी छत्रछायामें परिपोषित होकर बड़ा हो रहा था। वह मातापिताका लाड़ला बेटा उधम, उपद्रवमें भी अग्रसर ही था।

तिष्यरक्षिताका स्वभाव प्रारम्भसे ही उग्र था। वह राजकाजमें भी हस्तक्षेप करके अपना मनमाना काम करा लेती थी। अतः आज उसके स्वभावका पोषक एक महान् कार्य उसके सामने उपस्थित हुआ। बर्षों से वह अपने हृदयमेंसे उस शल्यको बाहर नहीं निकाल सकी थी। कुणालको उसकी माताके ही साथ परलोकको भेज देनेके प्रयत्नमें तिष्यरक्षिताने कोई कसर नहीं रखी थी। किन्तु मनुष्यके प्रयत्न की अपेक्षा दैवेच्छा बलवान होनेके कारण बाल-कुमार कुणाल तिष्यरक्षिताके चक्रसे अकस्मात बच गया और सम्राट् अशोक भी सचेत होकर समझ गये कि यह मातृहीन बालक अपनी माताके अभावमें सौतेली माताके कुचक्रमें प्राण खो बैठेगा। क्योंकि आज इसका सहायक कोई भी नहीं है और अर्थ-लोलुप दास-दासियों द्वारा कब यह षड्यंत्रमें फँसा लिया जायगा; इसका कोई ठिकाना नहीं है। अतः अतएव उसे तुरन्त ही "युवराज" बनाकर अवन्तिका भेज

दिया। उस समय महाराजको अपनी बातोंमें भुलानेका इस अधम नारीने बड़ा प्रयत्न किया, किन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। महाराज समझ गये थे कि यह स्वार्थान्ध स्त्री कब क्या कर डालेगी, इसका कोई ठिकाना नहीं। इसीलिए उसके कथन पर विशेष ध्यान न देकर उन्होंने अपने आप्त विश्वासी स्वजनोंके साथ कुणालको अवन्तिका भेज दिया था। इसी कारण अन्तरमें क्रोधसे फड़-फड़ाती हुई कुटिल तिष्यरक्षिता हाथ मलती रह गई। थोड़ी-सी भूलसे वह बच गया; इसलिए उसके निर्दय हृदयमें पछतावा होने लगा। किन्तु फिर भी वह हिम्मत न हार कर उचित अवसरकी प्रतीक्षा करने लगी; जिससे कि मौका साधकर वह उस बढ़ते हुए काँटेको जड़-मूलसे उखाड़कर अपने महेन्द्रके लिए इस विशाल राजमार्गको परिष्कृत-साफ कर सके। इसीलिये, जब-जब वह महेन्द्रको देखती तब उसका जोश उभर पड़ता और वह मरी हुई सौतको मन-ही-मन बुरी तरह कोसने लगती।

इस परिवर्तनसे उसका स्वभाव चिड़चिड़ा होगया था। इसी चिन्ताके आवेशके कारण किसी भी कार्यमें रानीका मन नहीं लगता था। सम्राट् अशोककी महारानी होते हुए भी उसकी आशा-वासनाएँ उसे

अधम मार्गकी ओर खींचकर नीच कार्य करनेके लिए प्रेरित कर रही थीं। अनेक दास-दासी एवं अटूट वैभव होते हुए भी उसके हृदयमें ज्वाला जल रही थी। उस अग्निसे उसका हृदय धधक रहा था। इतना ही नहीं, वरन् उस आगमें बेचारे निरपराध दास-दासी भी जले जा रहे थे। संसारका यह एक सामान्य नियमसा है कि बड़े कहलाने वाले, गरीबोंका मूल्य नहीं समझ पाते। इसीलिए ऐसे कई जीवोंका मूल्य बलिदान पाकर भी उसके हृदयमें शान्ति नहीं थी।

अपना उद्देश्य पूर्ण करनेके लिए वह अपने मनमें अनेक प्रकारके संकल्प-विकल्प करती-रहती थी। बारंबार बालकुणाल उसे अपने सामने सूक्ष्म शरीरमें खड़ा दिखाई देता, और उस समय वह उसका वध करनेके लिए तलवार लेकर टूट पड़ती। किन्तु वह कोई सच्चा कुणाल तो था नहीं, जिसे कि वह मार सकती। साथ ही वह अपने उस अत्यन्त जोशकी ज्वालाको महाराजके भयसे छिपानेकी भी कोशिष करती थी। क्योंकि वह महाराजको विश्वासमें लेकर ही विश्वासघात द्वारा कार्यसाधनेकी आशा कर रही थी। इसीलिए वह प्रयत्न करती थी कि, मेरी चेष्टाओंका कहीं महाराजको पता न लग जाय; अन्यथा यह एक अन्तिम

शेष रही हुई इच्छा भी धूलमें मिल जायगी। इसी उद्देश्यसे वह अपने अन्तरका मर्म महाराज अथवा अन्य किसीके सामने प्रकट न होने देनेके लिए पूरी सावधानी रखती थी। वह महाराजके साथ इस प्रकार वार्तालाप करती, मानों कुणालसे उसका कोई सम्बन्ध ही न हो। और इस रीतिसे वह महाराजके मनपर प्रभाव डाल कर उनका विश्वास सम्पादन करनेके लिए अनेक प्रकारके प्रयत्न कर रही थी। परन्तु अभी तो उस विषैली सर्पिणीको वह विषका घूंट हृदयमें ही रखकर समय व्यतीत करनेको विवश होना पड़ रहा था।

तीसरा परिच्छेद

नन्दनाचार्य

—:o:—

"गुरुजी! आपको सुख साता तो है नँ?"

"हाँ; आपको देखकर तो विशेष रूपसे, महारानी जी!"

"इधर कई दिनोंसे मैं आपके दर्शनार्थ आनेके लिये आतुर थी; किन्तु आना नहीं हो पाता था।

फिर भी आज तो मैं चाह कर ही आपके दर्शनार्थ आयी हूँ।" आगन्तुक रमणीने कहा।

"गुरु दर्शनके लिए तो अवश्य आना ही चाहिए। इससे सत्सङ्गका लाभ होनेके साथही पाप भी नष्ट होते हैं; यह तो आपको विदित ही है। शास्त्रमें तो देवतासे भी गुरुकी महिमा अधिक वर्णन की गई है।"

"सो किसलिये? गुरुसे तो देवता ही बड़े माने जाते हैं। तो फिर गुरुको देवतासे अधिक कहनेके लिये क्या कारण हो सकता है?" आतुर हृदयसे उस रमणीने पूछा।

"कारण यही है कि देवता तो आज मनुष्यसे बहुत दूर होगये हैं। इसीलिए संसारके अज्ञानी जीवोंको, उन देवताओंके स्वरूपका परिचय करानेवाले हम जैसे महान् गुरु ही हो सकते हैं।

यदि हम जैसे गुरु जगतमें विद्यमान न होते, तो आज समग्र भारतमें जिस बौद्धधर्मका प्रसार हो रहा है, वह न हो पाता!" उनके ये उद्गार कुछ गर्वयुक्त अवश्य थे। फिर भी उनके मुखपर सन्तोष और प्रसन्नता की भावना झलक रही थी।

"सत्य है गुरुदेव! आप जैसे समर्थ पुरुषोंका ही यह प्रभाव है कि मगधराज जैसे सम्राट् आज आपके भक्त हैं।" उस महिलाने कहा।

"हमारा धर्म ही ऐसा पवित्र और शुद्ध है उसका स्वरूप जानते ही सहज भावसे उसे पालन करनेकी अभिलाषा हो जाती है। सम्राट् अशोकने हमारे धर्मका पालन करके उसकी शोभा बढ़ाई है और आज हमारे हजारों भिक्षुओंने देश-विदेशमें विचर कर बौद्धधर्मकी महत्ता प्रस्थापित की है।"

"आप समर्थ हैं। आज मेरे पति जैसे मगध सम्राट्के भी आप माननीय एवं पूज्य गुरु हैं, इसीलिए मैं आपसे आशीर्वाद पानेको यहाँ आई हूँ।"

बौद्धगुरु चौंक पड़े। "महारानीजी! आपको ऐसी किस वस्तुकी न्यूनता हो गई है; जिसके लिए कि आप मेरे पास आशीर्वाद लेने आई हैं?"

"है; गुरुवर्य्य! है! आप मुझे आशीर्वाद दीजिये ताकि मेरा सङ्कट निवारण हो जाय!"

"कहिये, आपकी क्या इच्छा है? ऐसी कौनसी वासना अधूरी है; कि जिसे आप पूर्ण करना चाहती हैं?" बोद्धाचार्यने पूछा।

"महाराज! मुझे आशीर्वाद दीजिये कि जिस प्रकार मैं राजरानी हूँ, उसी प्रकार मैं राजमाता भी बन जाऊँ!" कहने वाली मगधराजकी पटरानी तिष्य-रक्षिता थी।

सुननेवाले उस समयके प्रसिद्ध बौद्धाचार्य नन्दनाचार्य थे। उपगुप्तके उपदेशसे उनके अहिंसाके तत्त्वसे प्रभावित होकर महान् अशोकने बौद्धधर्म स्वीकार किया था और उसके बाद रानियाँ भी बौद्धगुरुकी अनन्य भक्त बन गई थीं। उपगुप्तका स्थान इस समय नन्दन नामके भिक्षुकके हाथमें था।

किसी विशेष विचारके उत्पन्न होनेसे ही पटरानी तिष्यरक्षिता अपने गुरु नन्दनाचार्यसे एकान्तमें परामर्श करनेके लिए बौद्धमठमें आई थी। उसके साथ पाँच सात दासियाँ भी थीं। इस प्रकार गुरुको वन्दन करके उसने अन्तमें उनसे राजमाता बननेका आशीर्वाद माँगा।

उस समय बौद्धाचार्य एकान्तमें बैठे हुए थे। उनके शिष्य बाहर बैठे हुए अध्ययन कर रहे थे। अतएव अवसर साधकर कहा हुआ रानीका वचन सुनते ही नन्दनका हृदय एकदम चौंक पड़ा। किन्तु फिर भी उसने गम्भीरताके साथ रानीसे कहा :—"महारानीजी! इसमें नयी बात ही क्या है? आज जिस प्रकार आप महाराजकी प्रियतमा हैं, उसी प्रकार एकदिन राजमाता भी अवश्य बन जाएँगी!"

"आप किस आधारपर ऐसा कहते हैं? आपको

पता है कि महाराजने युवराजपद तो उस कुणालको देकर राज्यका उत्तराधिकारी बना दिया है।"

"इससे क्या हुआ? वह तो समय अपना काम कर ही रहा है। भविष्यकी बातोंको हम अल्पबुद्धि-वाले मनुष्य कैसे समझ सकते हैं?"

"प्रभु! आप कुछ भविष्य कथन कर सकते हैं। अथवा आप..." महारानी तिष्यरक्षिता बोलते-बोलते रुक गई।

किन्तु रानीके कहनेका आशय बौद्धाचार्य समझ गया। फिर भी उसने अनजान की तरह पूछा, "कहिये, आप क्या कहना चाहती हैं?"

"जी, वह एक एकान्तमें कहनेकी निजी बात है! यदि आप वह काम कर सकें, तो मैं आपके सामने उसे प्रकट करनेको उद्यत् हूँ।" रानीने उत्तर दिया।

"अवश्य कहिये! आपकी क्या इच्छा है? आपका चाहे जैसा भी दुष्कर कार्य होगा, मैं अवश्य कर दूँगा।"

रानीने श्यामाके सिवाय अन्य सभी दासियोंको बाहर सावधानी रखनेके लिए भेजकर श्यामाको द्वार पर खड़ा कर दिया और धीरेसे कहा :—"महाराज! आप ऐसा कोई काम कर सकते हैं, जिससे कि कुणालका जीवन समाप्त हो जाय! और मेरा पुत्र युवराज बन सके!"

"किन्तु, देखिये रानीजी, आपका कथन यथार्थ है और आपका काम भी हो जायगा, किन्तु एकदम नहीं। ऐसे कामोंमें धीरे-धीरे ही सफलता प्राप्त होती है।"

"अच्छी बात है! धीरे-धीरे ही क्यों न हो; किन्तु वह विषैला काँटा जड़से उखाड़ कर फेंक दिया जाना चाहिये। किसी ऐसे मारण-उच्चाटन मन्त्रका प्रयोग कीजिये कि वह फिरसे पाटलीपुत्रको देख ही न सके।"

"रानीजी! इसकी सीधी चावी-कूंची तो आपके ही पास मौजूद है। आप मोह-द्वारा सम्राट्को वशमें करके अपना काम क्यों नहीं बना लेतीं? ऐसा सुन्दर स्वरूप और वाणीका चातुर्य रूपी उपहार प्राप्त करके भी आप इनका उपयोग क्यों नहीं करतीं?"

"भगवन्! मेरा यह रूप और कला महाराजको अवश्य रिझा सकते हैं, किन्तु मेरा कार्य नहीं कर सकते! इसीलिए मैं आपके पास आई हूँ। आपकी शरणागत हुई हूँ। मैं महाराजको समझा-समझाकर हार गई! अब तो आपही उन्हें समझा सकते हैं। मैं तो समझती हूँ, उन्हें समझा सकना ही अत्यन्त कठिन कार्य है।"

"आपके रूप गुणपर मुग्ध होकर भी यदि राजा पागल न हो सका, तब तो मेरे द्वारा भी उसे समझा सकना कठिन ही है। फिर भी आपके पुत्र महेन्द्रके लिए तो मैं अवश्य प्रयत्न करूँगा और साथही राजाके विचार बदलनेका भी उपाय सोचूँगा।"

"महेन्द्र आपका ही है, ऐसा समझ कर आप प्रयत्न करेंगे। मेरा यह इतना काय तो आपको अवश्य करना ही होगा।" महारानीने दृढ़ता पूर्वक कहा।

"जहाँ तक होगा अवश्य करूँगा; किन्तु आप भी बीच-बीचमें आती-जाती रहें।" और आप भी हमें दर्शन देनेके लिए महलमें अवश्य पधारते रहें। राजसभामें तो आप प्रायः पधारते ही हैं। अतः उपदेश देनेके बहाने अन्तःपुरमें भी पधारनेकी कृपा किया करें तो कितना अच्छा हो! इस प्रकार आपके दर्शन और उपदेशामृतका लाभ तो हमें होता रहे!"

"अवश्य! आपका कथन यथार्थ है; महारानीजी! उन परम कृपालु भगवान बुद्धदेव पर विश्वास रखिये! उनकी कृपासे आपका कार्य शीघ्र ही सिद्ध होगा।"

"तो आपको भी अवश्य लाभ होगा। वर्तमान समयकी अपेक्षा मेरा महेन्द्र राजा बन जाने पर अपना

धर्म अधिक उन्नति कर सकेगा। बौद्धधर्मकी दिग्विजय हो सकेगी।"

महारानीके वचन सुनकर उस धर्माभिमानी बौद्धाचार्यके मुँहमें पानी भर आया। "अवश्य! धर्म की विजयके लिए हम चाहे सो करनेको आतुर रहते हैं। बौद्धधर्मकी विजयध्वजा जगत्की चारों दिशाओंमें फहराती हुई देखनेको हम बड़े उत्सुक हैं।"

"आपकी कृपासे मेरा महेन्द्र यदि राजा बन सका तो मैं भी आपकी अनन्य भक्ता बन जाऊँगी। रात-दिन आपकी चरणसेवा करके मैं अपना जन्म सफल करूँगी। अहा! आपके इस उपकारका बदला मैं कैसे चुका सकूँगी?" रानीने बौद्ध गुरुके प्रति आभार प्रकट किया।

"आपका कार्य सिद्ध हो जानेपर तो आप चाहे जिस प्रकारसे बदला चुका सकती हैं। आप बौद्धधर्मकी अनन्यभक्ता बनकर उसकी सेवा कर सकती हैं। यह बदला भी कुछ ऐसा-वैसा नहीं है।"

नन्दन और तिष्यरक्षिताका वार्तालाप चलते हुए कितना समय बीत गया, इसका उन्हें भान तक नहीं रहा। अतएव द्वारपर खड़ी श्यामाने आकर कहा, "महारानीजी! समय बहुत हो गया है; इसलिए हमें अब लौट-चलना चाहिए।"

"हाँ श्यामा ! हमें अब शीघ्रतासे चले जाना ही उचित है। तेरा कहना ठीक है।" इस प्रकार गुप्त-मंत्रणासे निवृत्त होते ही महारानीने श्यामासे कहा :—
"जा, श्यामा ! सारथीसे रथ तैयार करनेके लिए कह दे ; तबतक मैं भी वहाँ आ पहुँचती हूँ।"

"किन्तु आप शीघ्रही पधारियेगा।" यों कहती हुई श्यामा वहाँसे चली गई।

रानीने बारम्बार हँसते हुए प्रसन्नचित्तसे अपने कार्यकी पूर्तिके लिए नन्दनाचार्यसे अनुरोध किया, और वह भी मधुर दृष्टिसे उस सुन्दर मुखमण्डलको देखता रहा। दोनों एक दूसरेके स्वार्थमें डूब रहे थे, किन्तु दोनोंके विचार जुदे-जुदे थे। संसार रूपी शतरंजपर दोनोंही न जाने कौन-सा दाव चाल खेल रहे थे।

थोड़ीही देरमें महारानीजी बात करती हुई बाहर आकर रथपर बैठ गईं। किन्तु रथमें बैठे-बैठे भी उन्होंने गुरुको प्रणाम किया। देखते ही देखते रथ वहाँसे दृष्टि-ओट हो गया। तब तक बौद्धाचार्य की आँखें उधर ही लगी रहीं। इसके बाद उसने मनमें सोचा—"अहा ! यह इस युगकी कितनी सुन्दर महिला है !"

चौथा परिच्छेद

राजसभामें

—:०:—

जिस समयमें हमारे इस कथानकका आरम्भ होता है, वह आजसे २२०० वर्ष पूर्वका था। उस समय महान् अशोकका भाग्य भास्कर समस्त भारतको आलोकित कर रहा था। भारतभूमिके समस्त नरपतिगण उसके तेज प्रभावसे दबकर "साम्राज्य-कर" भेंट करते थे। उसने अपनी तलवारका पानी कलिङ्गके युद्धमें बतलाकर संसारको अपने पराक्रमसे परिचित करा दिया था। उस भयङ्कर युद्धमें कलिङ्गवासी वीर तीन वर्षोंतक अशोकवर्द्धनके सामने जमे रहे। और उस स्वदेशाभिमानकी वेदिकापर एक लाख कलिङ्ग वीरोंका बलिदान हो गया। लगभग डेढ़ लाख लड़ते हुए पकड़े गये। साथही अन्नके अभावमें मरनेवालोंकी तो गिनती ही नहीं थी।

महाराज अशोकके राज्यका विस्तार सुदूर अफगानिस्तान और सिन्धतक, उत्तरमें नैपाल, पूर्वमें बङ्गाल और कलिङ्ग तथा पश्चिममें सौराष्ट्र एवं कच्छसे लेकर विन्ध्याचलके दक्षिणमें मैसूरके उत्तरी भाग तक व्याप्त

होगया था। शासनकी व्यवस्थाके लिए उसने चार विभागीय केन्द्र स्थापित किये थे। उत्तरमें तक्षशिला, पूर्वमें कलिङ्ग, दक्षिणमें सुवर्णगिरि और पश्चिममें उज्जयिनी। इन प्रत्येक केन्द्रमें भिन्न-भिन्न अधिकारी हाकिम—दंड-नायकोंकी योजना की गई थी। सिंहल-द्वीपका राजा इसे प्रसन्न करनेके लिए नयी-नयी भेट-सामग्री अर्पण करता रहता था। साथ ही महाराजा अशोकके बौद्धधर्म स्वीकार करलेनेसे उस समय बौद्ध-मतका भी यथेष्ट उत्कर्ष हो रहा था।

बौद्धाचार्य उपगुप्तके संसर्गमें आनेके पश्चात् सम्राट्को जीवदयाका तत्वज्ञान होनेपर उसे बुद्धधर्मके प्रति अनुराग हुआ और कलिङ्गके युद्धमें लाखों जीवोंकी आहुतिने उसके हृदयको विचलित कर दिया था। मनुष्य-जीवनका मूल्य भी उसी समय उसके समझमें आ सका था। अतएव उसने अपनी तेज तलवारको म्यानमें रखकर अहिंसाकी ओर अपना लक्ष्य परिवर्तन किया और उस अमूल्य अवसरसे लाभ उठा कर बौद्धाचार्यने उसे अनुकूल उपदेश दिया। राजाने बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया और वह उपगुप्ताचार्यका अनन्य भक्त बनगया।

बौद्धाचार्य उपगुप्त प्रतिदिन सम्राट्की राजसभामें आकर धर्मोपदेश करने लगे। इस प्रकार अनुकूल उपदेश

देते हुए उन्होंने राजाको बौद्धधर्ममें इतना सुदृढ़ विश्वासी बना दिया कि, उसने देश-विदेशमें धर्मोपदेशक भेजनेका निश्चय कर लिया। उसी उपगुप्तके स्थानपर आज नन्दनाचार्य प्रतिष्ठित था।

एकदिन राजसभामें सम्राट्के निकट सिंहासन पर अपने शिष्य-समुदायसे परिवेष्टित नन्दनाचार्य धर्म-सम्बन्धी चर्चा कर रहे थे। धर्म-सम्बन्धी अनेक प्रश्न उपस्थित होनेपर आचार्य अपनी बुद्धिके अनुसार उनका समाधान करते हुए राजसभा पर अपने धर्मकी मुहर भी लगा रहे थे। साथ ही वे सर्वज्ञ बुद्धदेवकी महिमा वर्णन कर उनकी ओर समस्त सभासदोंका चित्त आकर्षित करनेके लिये भी प्रयत्न कर रहे थे।

"महाराज! भगवान् बुद्धदेवकी जन्मभूमि कपिलवस्तु नगरी हिमालयकी तलहटीके निकट अवस्थित है; वहाँ की यात्रा आप अवश्य कीजिये।" बात ही बातमें नन्दनाचार्यने महाराजाके सम्मुख प्रस्ताव उपस्थित किया।

"किन्तु वह 'कपिलवस्तु' तो नष्ट हो गई है, न देव?" राजाने पूछा।

"हाँ, आपका कथन यथार्थ है। फिर भी जिस भूमिने भगवानका चरण स्पर्श भी किया हो, वह भी

उतनी ही वन्दनीय होती है ; तब यह तो उनकी जन्म-भूमि ही है। राजन्! उसके माहात्म्यमें क्या न्यूनता हो सकती है ?"

"तब तो अवश्य उस पुण्यभूमिके दर्शनकर हमें अपने पापरूपी मलका प्रक्षालन करना चाहिए। अभी बुद्ध-भगवान्को गये अधिक समय भी नहीं बीता है। फिर उस नगरीका इसप्रकार विनाश कैसे हो गया ?" सम्राट्ने पूछा।

"आजसे लगभग २५०० वर्ष पूर्व बुद्ध भगवान् सर्वज्ञ हुए और उसके बाद उन्होंने काशीके निकट सारनाथमें आकर उपदेश देना आरम्भ किया। यथाक्रम जब मगधदेशमें विहार करते-करते भगवान् बुद्धदेव पहुँचे, उस समय वहाँका श्रेणिक-बिम्बिसार राजा उनका भक्त बना था।" नन्दनाचार्यने पुरातन चर्चाका पर्दा उठाना आरम्भ किया।

"तो क्या बिम्बिसार जैन थे ?" बीचमें ही राजाने प्रश्न किया।

"हाँ ; वह बादमें ज्ञातपुत्र महावीरके उपदेशसे जैन हो गया था ; किन्तु पहले तो वह बौद्ध ही था। तत्पश्चात् उसके पुत्र अजातशत्रु-कोणिक मगध-सम्राट् बना और वह भी प्रारम्भमें तो बौद्ध ही था ; किन्तु

पीछे जाकर वह बौद्धोंका शत्रु हो गया और उसने बुद्धके द्वेषके कारण कपिलवस्तु नगरीको नष्ट कर दिया।" बौद्धाचार्यने इस पुरातन दुःखपूर्ण गाथाका स्मरण करते हुए एक दीर्घ निःश्वास त्यागा।

"कपिलवस्तुके सिवाय और भी कोई तीर्थस्थान है?" अशोकने पूछा।

"सबसे बड़ा तीर्थ सारनाथ है। उसीप्रकार गया और प्रयागके निकट सरयूके तटपर पलासके वनमें भगवान् बुद्धने तप किया था और जहाँ उन्हें बोधिसत्त्व प्राप्त हुआ था। राजगृह नगरमें हमारे मठकी स्थापना भी बुद्धभगवानके ही हाथों द्वारा हुई थी। जहाँ आज कई साधु निवास कर रहे हैं। कुशीनगरमें वे देह मुक्त हुए थे। श्रावस्ती आदि प्रसिद्धस्थान भी उन प्रभुकी चरण-रजसे पवित्र हुए हैं। ऐसे पवित्र स्थानोंके दर्शनसे अनेक जन्मोंके पाप नष्ट होकर आत्मा पवित्र हो जाती है।" बौद्धगुरुने उत्तर दिया।

"भगवन्! आत्मा तो क्षणिक है आप भी उसे क्षण स्थायी मानते हैं! जब कि प्रतिक्षण आत्मा नष्ट होती और नवीनरूपमें जन्म लेती है, तो फिर हम पुण्य-पापका हिसाब कैसे लगा सकते हैं?" राजाने पूछा।

"आपका यह कथन यथार्थ है। आत्मा प्रतिक्षण

बदलती रहनेके कारण कर्म करनेवाला भी कोई अन्य है और उसका फल भोगनेवाला भी कोई अन्य, किन्तु इस सिद्धान्तके गम्भीर रहस्यको राजन्! आप नहीं समझ सकेंगे! अतएव बुद्धभगवानपर श्रद्धा रखते हुए ऐसे पवित्र स्थानोंके दर्शन तो अवश्य ही करने चाहिए।" इस प्रकार गुरुने श्रद्धा रखनेका महामन्त्र राजाको बतलाया।

"गुरुदेव! आपका कथन सत्य है। आपके धर्मोपदेशसे मेरी दुर्बुद्धि आज शुद्ध होगई है। साथही धर्मकी भावना भी मेरी अन्तरमें स्पष्टरूपसे अङ्कित होगई है।

यह आपकी सरलता और सुजनताका लक्षण है। कितने ही कर्म-मार्गियोंका कठोर-हृदय तो अखण्ड उपदेश-धारा बर्सानेपर भी द्रवित नहीं होता! फिर धर्मकी तो वे बात ही कैसे समझ सकते हैं?"

"यह सब आप ही की कृपाका फल है!"

"राजन्! जिस प्रकार आपने धर्मके प्रति दृढ़ता धारण करली है, उसी प्रकार अब आपका यह प्रयत्न भी होना चाहिये कि जनतामें बौद्धधर्मके तत्त्वका प्रसार हो सके।"

"इसके लिए तो आपके बौद्ध-भिक्षु देश-विदेशमें उपदेश दे ही रहे हैं। अतः अब आप मुझसे इस विषयमें जो सहायता चाहें, उस धर्मसेवाके लिए मैं भी तैयार हूं।"

"राजन्! आप भगवान बुद्धके सच्चे और अनन्य भक्त हैं। अतएव आपके द्वारा इस प्रकारकी भावना व्यक्त होना योग्य ही है। इस समय आवश्यकता इस बातकी है कि स्थान-स्थानपर बड़ी-बड़ी पाठशालाएँ स्थापित कर उनमें बौद्धधर्मकी शिक्षा दिलाते हुए बौद्ध-पण्डितोंको तैयार किया जाय, और वे पण्डित या उपदेशक आपकी ओरसे यदि आपके राज्यमें भ्रमण कर बौद्ध-धर्मका प्रसार करें तो इसका जनतापर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।"

"आपकी बात मेरी समझमें आरही है। आप शुभ मुहूर्त्तमें पाठशालाकी स्थापना कीजिये और उसके लिए जो भी व्यय होगा, वह राज-कोषसे दिया जायगा। देश-विदेशके हजारों विद्यार्थियोंको यह शिक्षा देते हुए उपदेशक तैयार कराइये और बौद्धधर्मको दिगन्तव्यापी बनाइये।

आजके समयके लिए यही वस्तु अनुकूल है। आज भारतमें जहाँ-तहाँ जैनत्त्व छा रहा है। चारों वर्णोंमें आज जिस प्रकार ज़ैन-भाव फैल रहा है, वैसा ही बौद्धत्त्वका भी प्रसार होना चाहिए। यदि हमारा यह मनोरथ सफल हो सके तो समझ लीजिये कि हमने बुद्ध-भगवान की भली-भाँति सेवा की है।"

"किन्तु भगवन्! बुद्ध और महावीर तो लगभग समकालीन ही हुए हैं। फिर भी जहाँ-तहाँ जैन-धर्मका इतना अधिक प्रचार कैसे देखनेमें आता है? हमारे पूर्वज भी जनधर्मके ही अनुयायी थे। उनसे पहलेके मगध-सम्राट् भी श्रीमहावीरके ही भक्त थे।" राजाने पूछा।

"इसीलिए तो राजन्! हमें उपदेशकों-द्वारा बौद्धत्वके प्रसारार्थ कटिबद्ध होना चाहिए। इसी बातकी हमारे यहाँ कमी है कि हममें बुद्धभगवान-जैसी शक्ति नहीं है। इस कार्यमें हमें राजाकी सहायताकी भी आवश्यकता है।" नन्दनने निराश होते हुए कहा।

"फिर यह भी कारण हो सकता है कि जैनधर्म तो पूर्व परम्परासे चला आ रहा है; जब कि बुद्धभगवान तो अभी ही हुए हैं और उन्होंने नये धर्मको आरम्भ किया है।" राजाने कहा।

"यह भी ठीक है। ज्ञातपुत्र चौवीसवें तीर्थंकर हैं। अर्थात् उनसे पहले तेईस (२३) तीर्थंकर हो चुके थे। उनमेंसे प्रथम तीर्थंकरने उसे आरम्भ किया और परंपरासे प्रत्येक तीर्थंकर उसमें वृद्धि करते चले गये। उसी प्रकार हमें भी जैनत्वका प्रभाव हटाकर बौद्धत्वकी स्थापनाके लिए तैयार होना चाहिए।"

इस प्रकार वार्तालापमें समय पूरा होजाने पर राज्यसभा विसर्जित करके, राजा गुरुको साथ ले, अन्तः पुरमें गये और वहाँ रानियोंको धर्मका उपदेश देकर नन्दन भी अपने स्थानको चले गये।

नन्दनाचार्यके मस्तिष्कमें अपने धर्मको दिगन्त-व्यापी बनानेकी योजना तैयार हो रही थी। क्योंकि उससे स्पर्धा करनेवाला जैनधर्म आज जगत्में विजयी हो रहा था। उसीके समान यदि अपने धर्मका महत्त्व भी संसारमें व्याप्त हो सकेतो वह बुद्ध-भगवानकी कितनी अपूर्व सेवा सिद्ध हो सकती है? इसीलिए उसने तत्काल ही पाठशालामें विद्वान् उपदेशक तैयार करनेकी योजना महाराजकी सहायतासे कार्य रूपमें परिणत कर दिखाई।

पाँचवाँ परिच्छेद

सौतेली माताका स्नेह

—:o:—

एकदिन राजा अपने एकान्त विचार-भवनमें बैठा हुआ था। उस समय अवन्तीसे दूत जो सन्देश लेकर आया था; उसे पढ़कर हृदयमें अनेक प्रकारके विचार

उत्पन्न हुए।" राजकुमार प्रतिदिन बड़ा होता जा रहा है; अतएव उसे अब विद्याभ्यास कराना ही उचि है। यदि वह सुशिक्षित होगा तो अवश्य इत विशाल साम्राज्य ठीक तरहसे चला सकेगा। साथ ही मैं तो इस बातके लिए भी विशेष उत्सुक हूँ कि उसीके हाथसे लिखे हुए पत्र कब मेरे पास आवें? विशे विद्याध्ययन एवं अनेक शास्त्रोंके परिशीलनसे बुद्धि सम्पादित होती है और मस्तिष्कमें अनेक प्रकारके न ीन विचार स्फुरित होते हैं। चतुराईके अङ्कुर प्रकट हो ते हैं और उससे सत्य-असत्यको परखनेकी शक्ति प्राप्त होती है। विद्या-विहीन मानव मनुष्य नहीं समझा जाता पण्डितोंकी सभामें वह नामको भी लज्जित करता है। वल्कि वह उपहास-पात्र ही सिद्ध होता है। अ. एव अवतो कुमारको शिक्षित बनाना ही सव प्रकारसे हित हो सकता है।" इस प्रकार विचार करते हुए अपने हाथोंसे ही पत्र लिखना आरम्भ किया।

महाराजका ध्यान पत्र लिखनेमें एकाग्र हो रहा था कि अचानक वहाँ एक व्यक्तिने प्रवेश किया। उसनेदेखा कि महाराज पत्र लिखनेमें तल्लीन हो रहे हैं। उसे आश्चर्य हुआ कि इतने आदरपूर्वक ये किसे पत्र लिख रहे होंगे? वह धीमे पाँव चलकर



पटरानीके वचन सुनतेही महाराजने उसकी ओर देखकर मुसकुरा दिया। (पृष्ठ ३७)

पीछे खड़ी होगई। किन्तु पत्रको न पढ़ सके, इस प्रकार वह कुछ दूर खड़ी रही।

पाठक समझ ही गये होंगे कि वह महारानी तिष्यरक्षिता ही हो सकती थी। चाहे जहाँ और चाहे जब वह अन्तःपुरमें महाराजके पास आ सकती थी। क्योंकि महाराजका उसपर इतना अधिक प्रेम था। प्रसंगानुसार राजकाजमें भी वह महाराजाके साथ चर्चा कर सकती थी। जब कुछ देर तक भी राजाकी एकाग्रता भङ्ग नहीं हुई ; तब अपना आगमन जतलानेके लिए वह उनके सम्मुख आ खड़ी हुई। उसके सहज ही खँकारनेसे महाराजका ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हुआ। उसने कहा अरे, आज महाराज ऐसे किस कार्यमें तल्लीन हो रहे हैं कि मेरे बड़ी देरसे यहाँ खड़े-खड़े थक जाने पर भी आपका ध्यान विचलित नहीं हुआ।"

पटरानीके वचन सुनतेही महाराजने उसकी ओर देखकर मुसकुरा दिया। फलतः महारानी भी उनको हँसती हुई बोलीं। आपतो इतने अधिक व्यवसायमें फँस गये कि आत्मीय-जनोंकी भी आपको सुधि नहीं रह गई है !"

"लेकिन, तुम आज किधर रास्ता भूलगई हो महारानी ?" राजाने पूछा।

"हम तो आपके बिना रास्ता भूल ही जाते हैं; किन्तु आपको हमारी क्या चिन्ता है ?"

"क्यों ? ऐसी क्या बात है ? इस प्रकार मर्म-भरे शब्दोंका प्रयोग क्यों हो रहा है ?"

"आपके लिए तो हम रातदिन पागलकी तरह भटक रहे हैं; किन्तु आपको तो हमारी ओर ध्यान देनेका भी अवकाश नहीं है ?"

"किन्तु मेरा ध्यान न होनेका अनुमान तुमने कैसे कर लिया ?"

"हम ऐसा क्यों न समझें ? आखिर हम भी तो सेर अनाज खाते ही हैं।"

"किन्तु हम भी तो कहाँ धूल फाँकते हैं महारानी जी ! आज तुम्हारा चित्त खिन्न क्यों है ?"

"भला, आप हमारे साथ बैठकर कभी विनोदकी दो बातें भी तो नहीं करते ! बस, दिनरात राज-राज्य-राज्य ! सदैव राज्यकी ही चिन्तामें मग्न रहते हैं। किन्तु राजा हो जानेपर भी घरके लोगों परसे स्नेह नहीं उठ जाता।" तिष्यरक्षिताने राजाकी जोड़में आसन ग्रहण करते हुए कहा।

उसने वहाँ बैठतेही उस पत्रको तिरछी दृष्टिसे देखा। वह पत्र युवराज कुणालके लिए लिखा जा रहा

था। इस बातको वह समझ गई। किन्तु उसीके साथ वह इस बातको जाननेके लिए व्यग्र हो उठी कि पत्रमें क्या लिखा गया है? इसीलिए वह पत्रको पढ़नेका अवसर खोजने लगी।

राजाने भी इस बीच पत्र लिखकर समाप्त कर दिया और महारानीसे कहा कि:—"देवी! धर्म, अर्थ और काम ये तीनों पुरुषार्थ हम परस्पर बिना किसी बाधाके साध सकते हैं, और सुख भोगनेमें भी हम क्या न्यूनता रखते हैं?" इसके बाद वह पत्र एक ओर रख दिया।

इतनेहीमें छः वर्षका कुमार महेन्द्र और चार वर्षकी संघमित्रा दोनों वहाँ दौड़ते हुए आ पहुँचे।

महेन्द्रको देखतेही तिष्यरक्षिताने कहा:—लीजिये, यह आपका महेन्द्र आगया। यह बेचारा चाहे जैसा हो, परन्तु..." बोलते बोलते रानी रुक गई।

दोनों बालक पिताकी गोदमें जा बैठे; और परस्पर खेलने लगे। अनेक प्रकारके संयोग-वियोगमें व्यतीत होनेवाले महत् पुरुषोंके जीवन जब भिन्न प्रकारके होते हैं, तब बालकोंकी निर्दोष सृष्टि भी कुछ भिन्नही होती है।

"रानीजी! कहते-कहते क्यों रुक गईं?"

"कुछ नहीं महाराज! वह तो ऐसे ही!"

"नहीं, अपने मनकी बात तो तुम्हें कहनीही होगी!"

"किन्तु ऐसी छोटी सी बात मैं आपके सामने कैसे कहूँ ?"

"जो कुछ तुम्हारे मनमें हो, वह अवश्य कहो !"

"क्या आप मेरे महेन्द्रको युवराज-पद नहीं दे सकते ?"

"रानी ! युवराज तो जो बड़ा होता है, वही हो सकता है।"

"इसीलिए आपने कुणालको युवराज बनाया है ?"

"हाँ, किन्तु महेन्द्र भी राज्य कर सकता है। क्योंकि जो कुशल और शासन चलानेके लिए योग्य होता है, वह भी राजा तो हो ही सकता है। हमारा सोचा हुआ थोड़े ही होता है ?"

"यह तो विधाताके लेख की बात है, किन्तु इसमें आपकी तो कोई कृपा नहीं है नँ ?"

"इसमें कृपाकी कौनसी बात है ? एक साथ दो तीन व्यक्तिको युवराज-पद देकर क्या कभी राज्यका उत्तराधिकारी निश्चित किया जा सकता है ?"

"अवश्य किया जा सकता है ! यदि इस विषयमें आपका विचार दृढ़ हो तो ऐसा भी किया जा सकता है ?

"तो इस विषयमें तुम क्या कहना चाहती हो ?"

"यही कि उस छोकरेके प्रति आपको इतना मोह क्यों है ? आप दिनरात उसीके लिए चिन्तित रहते हैं ! आपको तो सभी पुत्रों पर समान दृष्टि रखनी चाहिए।"

"तुम नहीं जानती महारानी ! वह बेचारा बिना माँका है। यदि मैं उसका इतना ध्यान न रखूँ तो उसके जीवनका ही अन्त आजाय !"

"इसका कारण क्या है ?" तिष्यरक्षिताने अनजान-सी बनकर पूछा।

"कारण स्पष्ट ही प्रकट हो रहा है कि वह राज्यका उत्तराधिकारी युवराज होनेके कारण प्रत्येककी आँखमें किरकिरीके समान चुभता होगा। उसके जीवनकी प्यासी कुछ रानियाँ समयकी प्रतीक्षा कर रही होंगी।"

"तो क्या, इसीलिए आपने उसे अवन्तीमें रक्खा है ?"

"हाँ, इसीलिए !"

रानीने मनमें निश्चय कर लिया कि राजा इस-प्रकार समझाये नहीं समझेगा। अतः कोई ऐसा संयोग उपस्थित होने पर ही कार्यसिद्धि हो सकती है। इतनेहीमें राजा-रानीकी बात-चीतका क्रम टूट गया और दासीने आकर निवेदन किया कि :—"महाराज ! भोजन तैयार है।"

राजा-रानी भोजनके लिए उठे। महेन्द्रने महाराज

की उँगली पकड़ी और संघमित्रा माताके साथ चली। दोनों वहाँसे भोजन-शालामें जा पहुँचे।

दैवयोगसे उस पत्रकी बात विषयान्तर हो जानेके कारण राजाको तो विस्मृत होगई, किन्तु रानीके मस्तिष्कमें वह घूमही रही थी। उस अमूल्य अवसरको वह खोना नहीं चाहती थी, उस पत्रको पढ़नेके लिए वह आतुर हो रही थी। अतः किस बहाने वह वहाँसे उठ जाय, इसीका विचार करने लगी। राजा भोजन करने लगे और रानी भी पासही बैठी होनेके कारण मन-ही-मन कोई निमित्त सोच रही थी। महेन्द्र और संघमित्रा भी सामने बैठे हुए भोजन कर रहे थे। तत्कालही महारानी शौच-निवृत्तिका कारण बताकर उठ खड़ी हुई और सीधी महाराजके विचार-गृहमें पहुँच कर उसने वह पत्र झट्पट् पढ़ लिया। पढ़तेही उसके मुख-परसे विचारोंकी छाया-झलक दिखाकर लुप्त होगई। उसने क्रूर अट्टहास किया और अनेक प्रकारके तर्क-वितर्क उसके मनमें उठने लगे। बड़ी शीघ्रतासे उसने नेत्राञ्जनकी शलाका लेकर उसे थूंकसे गीली करते हुए अञ्जनमें डुबोया और एक स्थानपर पत्रमें कुछ सुधार दिया। अर्थात् अकार पर केवल बिन्दु लगाकर पत्रको ज्यों-का-त्यों रख दिया। इसके बाद फुर्तीसे वह बाहर

राजा भोजन करने लगे और रानी भी।





अकारपर केवल बिन्दु लगाकर। (पृष्ठ ४२)

निकली तो सामनेही कृष्णमुखी श्यामा मिली। उसकी कार्य कुशलतासे श्यामा सावधान होगई कि आज अवश्यही कोई विशेष बात हुई है। श्यामाको देखतेही रानी मुसकुराई! उसकी उस क्रूर हँसी परसे श्यामाने पूछा "क्या महारानीजी; कामकी कोई चाबी (कुंजी) हाथ लगी?"

"अभी तो ऐसा ही जान पड़ता है। कार्य प्रारम्भ कर दिया है। पूर्ण होने पर जब उसका फल प्राप्त हो, तब की बात है!" रानीने धीरेसे कहा।

"बस, अब तो अपनी विजय ही समझिये!"

"तब तो तेरे मुँहमें घी, शक्कर।"

इसप्रकार श्यामासे कहकर महारानी सीधी भोजन गृहमें पहुँची; जहाँ कि महाराज भोजन कर रहे थे। उसने शांतिपूर्वक महाराजको भोजन कराया क्योंकि अब उसके मनमें शांति थी, साथही प्रसन्नता भी। महाराज भोजन करनेके बाद विश्राम-गृहमें आये। वे पानका बीड़ा खाही रहे थे कि इतनेमें अवन्ती जानेवाला दूत तैयार होकर सामने आ खड़ा हुआ। उसने महाराजको नमन किया और राजाने तत्काल कुणालके लिए लिखा हुआ पत्र लिफाफेमें बंदकर मुहर लगानेके बाद दूतको सौंप दिया। साथही कुछ समाचार जबानी भी कहे।

दूतने नम्रता-पूर्वक नीचे झुककर पत्र उठा लिया और पुनः महाराजको प्रणाम कर अश्वारूढ़ हो वह अवन्ती का ओर चल दिया।

छठा परिच्छेद

पूर्व-परिचय

—:०:—

यह अवसर्पिणी-कालका पाँचवा 'आरा' चल रहा है। पहला 'सुषम्-सुषम्' नामका आरा चार कोड़ा-कोड़ी सागरोपम परिमाणका होता है। इस आरेके आरम्भमें पुरुषकी आयु तीन पल्योपम तथा शरीर तीन कोसका होता है। वही क्रमशः हीन होते हुए दूसरे 'सुषम्' नामके आरेमें दो पल्योपम का आयुष्य और दो कोसका शरीर रह जाता है। इस दूसरे आरेका परिमाण तीन कोड़ा-कोड़ीका जानना चाहिए। यह दूसरा आरा पूर्ण होकर जब तीसरा आरा आरम्भ होता है; तब मनुष्यके शरीरका परिमाण एक कोसका और आयुष्य भी एक पल्योपमका हो जाता है। तीसरे आरेका परिमाण भी दो कोड़ा-कोड़ी सागरोपमका

होता है। इसका नाम 'सुषम्-दुःषम्' है। इन तीनों आरोंमें युगलिक मनुष्य होते हैं। अर्थात् वे स्त्री और पुरुष साथही जन्म लेते हैं। कल्पवृक्षसे इच्छित वस्तु प्राप्त कर कषाय-रहित हो सांसारिक सुख भोगते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं। अल्प कषाय युक्त होनेसे मृत्यु पाकर भी वे देवलोकमें जाते हैं। इस तीसरे आरेके अन्तमें भी ऋषभदेव भगवानका जन्म हुआ।

ऋषभदेव स्वामीने युगलिक धर्म निवारण कर व्यवहार मार्ग प्रवर्तित किया। वेही पहले राजा हुए और प्रथम धर्म प्रवर्तक एवं प्रथम तीर्थंकर हुए। उन्हींके पुत्र भरत इस अवसर्पिणीमें पहले चक्रवर्ती हुए। प्रथम तीर्थंकरके मोक्ष प्राप्त करनेके पश्चात् तीन वर्ष और साढ़े आठ मास व्यतीत होनेपर चौथा आरा आरम्भ हुआ। इस चौथे आरेका परिमाण बयालिस हजार वर्षकम एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपमका है। इसके आरम्भमें पाँचसौ धनुष्यके परिमाणका शरीर और कोटि 'पूर्व' का आयुष्य परिमाण था। इस युगके आरम्भमें भरत चक्रवर्ती थे।

श्रीऋषभदेव भगवानको केवलज्ञान प्राप्त होनेके पश्चात् अंतर्मुहूर्त्तमें मोक्षमार्ग आरम्भ हुआ; वह उनकी असंख्याती पाट-परम्परातक चालू रहा। उनके समयमें संसारमें महान्से भी महान् जैन धर्म था। राष्ट्रधर्म कहो

या राजधर्म, सभी भगवान ऋषभदेवके कथित धर्मको मानते थे। यद्यपि उनके पुत्र कच्छ, महाकच्छ आदि तापस रूपमें वन-फलही खाते थे ; फिर भी भावसे तो वे ऋषभदेवको पूजनेवाले एवं उन्हींका ध्यान धरनेवाले ही थे। भरतका पुत्र मरिची त्रिदण्डी हो गया था। फिर भी वह ऋषभदेवका ध्यान धरता और जैन साधुओंकी सेवा करता था। ऋषभदेवका शासन लगभग अर्ध आरा पर्यन्त चला। उनको हुए पचास लाख कोटि सागरोपम काल व्यतीत हो गया तब उन्हींकी पाट परम्परामें विनिता नगरीमें दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ हुए। उनके समयमें 'सगर' नामके दूसरे चक्रवर्ती हुए।

सगर चक्रवर्तीके ही जह्नुकुमार आदि साठ हजार पुत्र देशाटन करनेके लिए निकले, वे घूमते-घूमते अष्टापद पर्वतके पास पहुँचे और वहाँकी यात्रा करते हुए भव्यमन्दिरोंको देखकर अपने पूर्वजोंकी कीर्त्तिरक्षाके लिए उन्होंने अष्टापदके चारों ओर दंडरत्नोंसे युक्त एक खाई निर्माण की और उसमें गङ्गाका जल प्रवाह मोड़ दिया। इससे भुवनपतिके नागकुमारके भुवनोंमें खलबली मच गई। अतः नागकुमारके इन्द्र-भूतानेन्द्रने अपनी दृष्टि-ज्वालासे उन्हें जलाकर भस्म कर दिया। इसप्रकार तीर्थ भक्ति करते हुए मारे गये,

वे सगरराजाके पुत्र बारहवें देवलोकमें गये। गङ्गाके प्रवाहसे ग्राम एवं नगरोंके हानि पहुँचनेके कारण सगरने अपने पौत्र भगीरथ कुमारको वहाँ जानेकी आज्ञा दी और उसने वहाँ जाकर भूतानेन्द्रको प्रसन्न करके जाह्नवीको पुनः समुद्रमें मिलाकर लोगोंका संकट दूर किया। तभीसे गङ्गा, जाह्नवी और भागीरथीके नामसे भी सम्बोधित की जाती है।

भगवान अजितनाथके मोक्षगमनके पश्चात् तीस लाखकरोड़ सागरोपम व्यतीत होजानेपर संभवनाथका निर्वाण हुआ। उसके बाद दसलाख करोड़ सागरोपम बीतने पर अभिनन्दनका निर्वाण हुआ। इस प्रकार बीस तीर्थंकरों तक चौथे आरेका कितनाही समय व्यतीत होगया।

बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रतस्वामी मगध देशकी राजगृही नगरीमें तीस हजार वर्षकी आयु लेकर उत्पन्न हुए। उन्नीसवें मल्लिनाथके पश्चात् चौवन लाख वर्षमें मुनिसुव्रत मोक्षको गये। उनके समयमें हस्तिनापुर नगरमें पद्म नामका राजा राज्य करता था। उसके विष्णुकुमार और महापद्म नामके दो पुत्र थे। उनमें महापद्म छह खण्ड पृथ्वी साध कर नवें चक्रवर्ती हुए। उन महापद्म चक्रवर्तीका नमुचि नामक ब्राह्मण मन्त्री

था। चक्रवर्तीने एकदिन पूर्व उसे वरदान दिया। इसलिए नमुचिने महापद्मसे कार्तिक शुक्ल चउदस तकके लिए राज्य माँग लिया। चक्रीने उसे राज्य सौंप दिया और स्वयं अन्तःपुरमें निवास किया।

इधर नमुचिने हिंसामय यज्ञ आरम्भ किया और उसमें अनेक ऋषि एवं ब्राह्मणोंने भाग लेकर उसकी प्रशंसा करते हुए दक्षिणा लेना आरम्भ किया। इस-प्रकार प्रत्येक धर्मके लोग एवं नेतागण उसके यज्ञमें आये; किन्तु वह यज्ञ हिंसामय होनेके कारण जैन यतियों-द्वारा उसमें भाग न लेनेसे नमुचि क्रुद्ध हुआ। दैव-योगसे उस समय मुनिसुव्रत स्वामीके शिष्य सुव्रत-सूरिका अनेक शिष्योंके साथ वहाँ चौमासा था। अतएव नमुचिने उन्हें बुलाकर पूछा कि:—"जब प्रत्येक धर्म-दर्शनके पण्डितोंने मेरे यज्ञमें भाग लिया है; तब आप क्यों नहीं पधारे?"

"राजन्! उस हिंसामय यज्ञमें जैन-यति भाग नहीं ले सकते!" सुव्रतसूरिने कहा।

"ऐसा अनुपम पुण्यमय यज्ञ आपकी दृष्टिमें हिंसा-मय है, क्यों? ठीक है! आपको सात दिनकी अवधि दी जाती है कि इस बीच मेरे राज्यकी सीमा छोड़कर चले जाइये।"

"किन्तु राजन् ! चौमासेमें साधुलोग विहार नहीं कर सकते। साथही समस्त भरतक्षेत्रमें आपका राज्य होनेसे साधु कहाँ जायँगे ?" सुव्रतसूरिने उसे समझानेका प्रयत्न किया।

फिर भी गाढ़ अज्ञानरूपी अन्धकारमें अन्धे बने हुए एवं अभिमानरूपी फणिधरके रूपमें डौलते हुए उस नमुचिकी उन्मत्त आत्मापर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने पुनः उसी आज्ञाको दोहराते हुए कहा :—"यदि सात दिनके भीतर तुमलोग मेरी सीमा छोड़कर नहीं चले गये ; तो मैं तुम सबको मरवा दूँगा, यह याद रखना।"

सुव्रतसूरि उपाश्रयमें चले आये और नगरके सभी सज्जनों एवं मन्त्रियोंने भी नमुचिको बहुत समझाया ; किन्तु मूसलधार वर्षा होनेपर भी जिस प्रकार चिकने पत्थर पर उसका कोई असर नहीं होता ; उसी प्रकार नमुचिने किसीकी बातपर ध्यान नहीं दिया।

सुव्रतसूरिने अपने आकाश-गामिनी विद्यावाले एक शिष्यको मेरुपर्वतके शिखरपर तप करने वाले महापद्म चक्रवर्तीके ज्येष्ठ बन्धु विष्णुकुमारको बुलानेके लिए भेजा। उसने वहाँ जाकर उनको सब हाल कह सुनाया। तब वे उस शिष्य सहित हस्तिनापुर आये और गुरुको

वन्दन कर दूसरे दिन विष्णुकुमार मुनि राजसभामें पहुँचे, जहाँ कि यज्ञ हो रहा था ; किन्तु उन्हें देखकर नमुचिको छोड़ सभी ब्राह्मण, ऋषि, मन्त्रियों तथा अन्य राजाओंने वन्दना की।

विष्णुकुमारने भी नमुचिको समझानेका सब प्रकारसे प्रयत्न किया, किन्तु 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि'के अनुसार उसने एक भी बात नहीं सुनी ; और अपनी उसी आज्ञाको फिरसे दोहराते हुए कहा कि सात दिनकी अवधि समाप्त होते ही मैं सबको मरवा डालूँगा। सातमेंसे आजका एकदिन तो कम हो ही गया है।

"ठीक है ; तब क्या मुझ अकेलेको रहनेके लिए तो थोड़ीसी भूमि मिल जायगी ?"

"हाँ ; केवल तीन पाँव पृथ्वी तुम्हें मिलेगी।" उस अभिमानी नमुचिने उत्तर दिया।

इसके पश्चात् विष्णुकुमारने वैक्रिय-लब्धि द्वारा एकलाख योजन आकारका शरीर बढ़ालिया और जम्बूद्वीपके पूर्व-पश्चिम जगती दुर्गपरिसीमा पर दो पाँव रखकर क्रोधसे तमतमाते हुए विष्णुकुमारने पूछा :—"बतला ! अब तीसरा पाँव कहाँ रक्खूँ ?" किन्तु उनका ऐसा भयङ्कर रूप देखकर नमुचि चकित हो स्तब्ध रह गया। अतएव विष्णुकुमार मुनिने तीसरा पाँव उसकी छातीपर रखकर

उसे पातालमें पहुँचा दिया। इसप्रकार नमुचिका शरीर पातालमें पहुँच कर उसकी आत्मा सातवीं नर्कभूमि की अतिथि बनगई।

विष्णुकुमारके लाख योजनका शरीर धारण करनेसे पृथ्वीमें उथल-पुथल मचगई। पर्वतोंके शिखर ढहने लगे, ज्योतिषी देव भी भयभीत होगये। वे आश्चर्य करने लगे कि 'यह क्या हो रहा है?' समग्र ब्रह्माण्डमें खलबली क्यों मचगई? चक्रवर्ती भी अन्तःपुरसे निकल कर अपने ज्येष्ठ बन्धुके क्रोधको शान्त करनेके लिए उनके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना करने लगा। साथही विद्याधर और गन्धर्व भी उन महामुनिका क्रोध शान्त करनेके लिए आकाश मण्डलमें मधुर स्वरमें गान करने लगे। इसप्रकारके अनेक मधुर कोलाहलके द्वारा जैसे-जैसे उन महामुनिका क्रोध शान्त होता गया, वैसे-वैसे उनका शरीर भी संक्षिप्त होने लगा। क्रमशः मुनि अपने मूल स्वरूपमें स्थित हुए और चक्रवर्तीने उनसे क्षमा याचना की। इसप्रकार नमुचिका उपसर्ग निवारण कर विष्णु-कुमार मुनि उपाश्रयमें पधारे। आचार्यके समीप जाकर उन्होंने अपने कार्य क्रोधका प्रायश्चित्त किया। यद्यपि संघका कार्य होनेसे उन्हें कोई दोष नहीं लग सकता था; फिर भी स्वाध्याय, ध्यान एवं इरियावहि द्वारा

गुरुके समक्ष आलोचना करके अन्तमें विष्णुकुमार मुनि मोक्षपुरीके अधिकारी हुए।

इस महा उत्पात्के शान्त हो जानेपर समस्त मानव समुदाय इसप्रकार प्रसन्न एवं हर्षित हुआ, मानो उसका पुनर्जन्म ही न हुआ हो! सब लोग आनन्दपूर्वक खान-पान करके तथा सुन्दर वस्त्रधारण करके परस्पर प्रणाम करते हुए क्षेम-कुशल पूछने लगे। वह दिन कार्तिक शुक्लपक्षकी प्रतिपदाका था। अतएव तभीसे इस दिन मानव समाजमें मुख्यतः जैन समाजमें प्रणाम करने और नवीन वस्त्र पहनने एवं मन चाहा भोजन करनेका रिवाज चलपड़ा जो आज भी संसारमें प्रचलित है। इस विष्णुकुमारके दृष्टान्तसे अन्य मतवालोंने अपनी कथा रचकर अपने शास्त्रोंमें एक पुराणका निर्माण करडाला है। जिसमें बताया गया है कि "सौ यज्ञ करनेवाले बलिराजाको भगवानने वामनरूप धारण करके छला और उसे पातालमें भेज दिया।" इस रूपमें वह पुराण प्रसिद्ध होगया।

इन्हीं मुनि सुव्रतस्वामीके समयमें राम-लक्ष्मण एवं रावण, आठवें बलदेव और वासुदेव तथा प्रति वासुदेव हुए हैं। राम-लक्ष्मणके समयमें गौतम नामके एक ऋषि हुए हैं। कदाचित् न्याय शास्त्रके कर्त्ता भी यही गौतम

हो सकते हैं। मुनि सुव्रतस्वामीके मोक्ष गमनके बाद छह लाख वर्ष बीतनेपर इक्कीसवें नमिनाथका मोक्ष गमन जानना चाहिए। इन नमिनाथके समयमें दसवें हरिषेण नामके चक्री हुए और उनके शासनमें 'जय' नामके तीन हजार वर्षकी आयुष्यवाले ग्यारहवें चक्रवर्ती हुए।

इक्कीसवें नमिनाथके मोक्ष गमनके पाँचलाख वर्ष पश्चात् नेमिनाथका मोक्षगमन समझना चाहिए। नेमिनाथके समयमें अन्तिम वासुदेव, बलदेव, प्रति वासुदेव, श्रीकृष्ण, बलभद्र और जरासन्ध हुए। इन्हींके समयमें वेदव्यास ऋषि हुए, जिन्होंने वेदोंकी रचना की। जोकि आज संशोधन-परिवर्धनके साथ प्रचलित हैं। शेष रहे हुए इनके बनाये वेद तो ऋषभदेवके समयमें नव-तीर्थंकरके समय तक रहे। उसके बाद संघ विच्छेद होनेसे ब्राह्मण पण्डितोंने नयी-नयी श्रुतियाँ रचकर अपने सिद्धान्त प्रचलित किये। इसी कारण तबसे संसारमें संयतिके बदले असंयतिकी पूजा आरम्भ हुई और वह आज तक प्रचलित है। उनके पश्चात् दसवें शीतलनाथ तीर्थंकर हुए, किन्तु उनका सत्योपदेश उन ब्राह्मण पण्डितोंने स्वीकार नहीं किया। तभीसे ये लोग जैनोंके विपरीत बनगये और भोले-भाले लोगोंको भर-माकर स्वयं गृहस्थ गुरुके रूपमें जगत्में पुजवाने लगे।

श्राद्ध-दान आदिमें उत्तम पात्र अपने आपको बतलाकर संसारमें याचना करते हुए द्रव्य एकत्र करने लगे। उनकी परम्परासे रचित नयी-नयी श्रुतियोंको एकत्र कर व्यास ऋषिने वेदकी रचना की।

नेमिनाथका समय उस कालमें बहुत ही सुधरा हुआ माना जाता था। नेमिनाथ प्रभुको केवल ज्ञान होनेके दो वर्ष बाद मोक्षका मार्ग चालू हुआ, वह उनकी आठ पाट तक चलता रहा। एक हजार वर्षकी आयुवाले नेमिनाथके मोक्षगमनके पश्चात् ८३७५० वें वर्ष श्रीपार्श्वनाथ भगवान मोक्षको गये। नेमिनाथ प्रभुके मोक्षगमनके कुछ समय पश्चात् पञ्जाब-पाञ्चाल देशके काम्पिल्यपुर नगरमें सातसौवर्षकी आयुष्यवाले ब्रह्मदत्त नामके बारहवें चक्रवर्ती हुए। यही इस भारतवर्षमें अन्तिम चक्रवर्ती हुए हैं। ये छह मासमें ही छह खण्ड पृथ्वीपर अधिकार करके भरतक्षेत्रके अधिपति हुए। इन चक्रीका समय नेमिनाथ और पार्श्वनाथके बीचका था।

तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ काशीके राजा अश्वसेनके कुमार थे। यह राजा अपनी परम्परासे चले आते हुए नेमिनाथके शासनमें जैनधर्मका पालन करता था। अतः पार्श्वकुमार जब कुमारावस्थाको प्राप्त हुए, उस समय कमठ नामका एक ब्राह्मण अपनी दरिद्रावस्थासे उकता



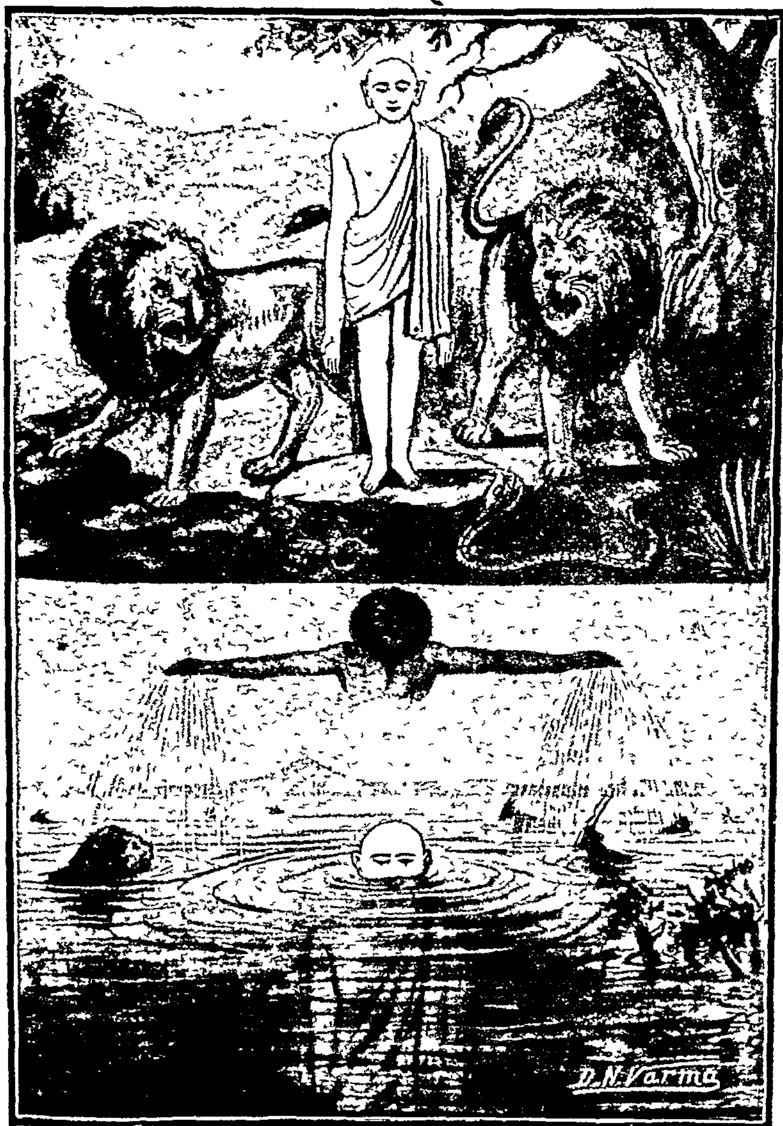
अर्धदग्ध सर्प तत्काल ही लोगोंके सामने वाहर निकल पड़ा । (पृष्ठ ५५)

कर संसार-सुखकी आशासे तापस होगया था। वह घूमता हुआ अपनी तपश्चर्यासे सबको आश्चर्यान्वित करनेके लिए काशीनगरीमें आकर जाह्नवी-गंगाके तटपर पञ्चाग्नि तप करने लगा; किन्तु उसके अग्निकुण्डके एक बड़े काष्ठमें जलते हुए एक विषधर-सर्पका रहस्य कोई न जान सका। अतः पार्श्वकुमारने वहाँ आकर दया-धर्म समझाते हुए कमठको उपदेश दिया, किन्तु इससे वह अज्ञान युक्त तपकरने वाला कमठ उलटा क्रुद्ध हो उठा। तब पार्श्वकुमारने अपने अनुचरों-द्वारा उस काष्ठको निकलवा कर चिरवाया; और उसमेंसे एक अर्धदग्ध सर्प तत्काल ही लोगोंके सामने बाहर निकल पड़ा; किन्तु वह मृतप्रायः सर्प प्रभुके दर्शन पाकर नवकार सुननेके कारण नागकुमारके रूपमें देवलोकमें इन्द्रपद पाकर आज भी धरणेन्द्र शासन भक्तिके कार्य कर रहा है और उसमें भी वह श्रीपार्श्वनाथका तो विशेष भक्तके रूपमें जैनशासनमें प्रसिद्ध है। जो कि जैनसङ्घके कष्टोंको सुनते ही बारम्बार दौड़ता हुआ आकर सङ्घके विघ्न दूर करता है। वह धरणेन्द्र उस नागका ही जीव है। उसे श्रीप्रभुके दर्शनका ही यह फल प्राप्त हुआ है।

इसके बाद श्रीपार्श्वनाथ दीक्षा लेकर मौन पूर्वक

विचरने लगे। एकदिन वे किसी तापसके आश्रमके कुएके निकट वटवृक्षके नीचे रात्रिके समय कायोत्सर्ग ध्यानमें निमग्न थे। उसीसमय वह कमठ तापस जो आज संसारमें नहीं था; अर्थात् वह अपना तापस-भव पूरा करके भुवन पति निकायमें मेघमाली नामका देव होगया था, वही प्रभुके प्रति अपने पूर्व वैरका स्मरण कर उन्हें उपसर्ग पहुँचानेके लिए फ़ुर्तीसे वहाँ आ पहुँचा। आते ही उसने अपनी देव-शक्तिके द्वारा विविध प्रकारके उपसर्ग किये, किन्तु इसपर भी उन उपसर्गोंसे भगवान विचलित नहीं हुए। उसने धूलकी वर्षा की और उसके बाद दैत्यलोगोंके द्वारा उपद्रव करवाये, और अन्तमें थक कर मूसलधार वर्षा करके पृथ्वीको जलमय कर दी। वह जलप्रवाह क्रमशः प्रभुके घुटने, जाँघ, और नाभि-पर्यन्त बढ़ता जाकर ठेठ नासिका पर्यन्त पहुँच गया। फिर भी भगवान तो निश्चिन्त ही थे। भला, जो विश्वके समस्त मनोरथ पूर्ण करनेकी शक्ति रखते हों वे प्रभु जलमें कैसे डूब सकते थे?

उस समय धरणेन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ और अवधि-ज्ञान द्वारा इस उत्पातको जानकर वह अपनी देवियोंके साथ तत्काल वहाँ आ पहुँचा। आतेही उसने उनके नीचे कमलकी रचनाकर नागका रूप धारण करते



नासिका पर्यन्त पहुँच गया। फिर भी भगवान तो निश्चिन्त ही थे। (पृष्ठ ५६)





अपने फणके द्वारा उनके मस्तकपर छत्र धारण किया।

(पृष्ठ ५७)

हुए भगवानके शरीरसे लिपटकर अपने फणके द्वारा उनके मस्तक पर छत्र धारण किया। इस प्रकार जैसे-जैसे पानी बढ़ने लगा, वैसे-वैसे कमल ऊपर उठता चला गया और भगवान उसमें न डूब सके। इसप्रकार कमठ जल बरसाकर भी जब भगवानको विचलित न कर सका; तब धरणेन्द्रने अवधिज्ञान-द्वारा कमठका उत्पात जानकर उसकी अवहेलना की।

अन्तमें कमठने भयभीत होकर अपनी माया समेट ली, और वह भगवानके चरणोंमें गिर पड़ा। इसप्रकार शत्रुभावसे प्रकट हुए कमठने वहाँ समकित प्राप्त किया।

जिस समय कमठ मेघमाली उपसर्ग कर रहा है, उसी समय धरणेन्द्र भक्ति करता है; किन्तु ऐसे शत्रु और मित्रपर जिनकी समान मनोवृत्ति है, वे पार्श्वनाथ प्रभु जगतके विघ्न दूर करें।

केवलज्ञान प्राप्तकर एवं सौ वर्ष की आयुष्य पूर्णकर समेत-शिखर पर्वतपर पार्श्वनाथ प्रभु मोक्षको प्राप्त हुए। आज भी वह पहाड़ पार्श्वनाथ-पहाड़के नामसे प्रसिद्ध है। इन पार्श्वनाथ प्रभुको केवलज्ञान प्राप्त होनेके तीन वर्ष पश्चात् मोक्षका मार्ग आरम्भ हुआ और उनके मुक्तिगमनके पश्चात् चार पाट तक वह चालू रहा।

श्रीपार्श्वनाथके पश्चात् चौबीसवें महावीर स्वामी

२५० वर्षमें मोक्षको प्राप्त हुए। श्रीपार्श्वनाथके पाट पर शुभदत्त गणधर हुए। उनके पाट पर हरिदत्तजी हुए और तब चौथे आर्य समुद्र हुए। उनके बाद पाँचवें स्वयंप्रभसूरि हुए। इनके शिष्य पिहिताश्रय मुनिके शिष्य बुद्धिकीर्तिने 'बौद्धमत' के नामसे एक नया मत चलाया। स्वयंप्रभसूरिके पाट पर छठे केशिकुमार [illegible] हुए। चरम तीर्थंकर महावीरके समयमें ये केशीगणधर विद्यमान थे। इन्होंने श्वेताम्बी नगरीके नास्तिक प्रदेशी राजाको उपदेश देकर जैन बनाया था।

एकदिन केशीगणधर और गौतम स्वामी [illegible] मिल गये। धर्मचर्चा करने पर सरल हृदय केशीगणधरने महावीर स्वामीका मार्ग स्वीकार किया। वीरप्र[illegible] केवलज्ञान होनेके चार वर्ष बाद मोक्षका मार्ग आरम्भ हुआ और वह उनके बाद तीन पाट तक चालू रहा। आनन्द, कामदेवादिक दश तो महावीरके बड़े बारह व्रतधारी श्रावक ही थे। ये सब बीचमें एक देवताका अवतार लेकर तीसरे भवमें सिद्धिको प्राप्त करेंगे। उनके सिवाय महावीर स्वामीके समयमें नौ व्यक्तियोंने तीर्थंकर नाम कर्मका उपार्जन किया था, जो कि आगामी उत्सर्पिणीमें तीर्थंकर होकर मोक्षको प्राप्त होंगे। १ श्रेणिक, २ महावीरके काका-चाचा सुपार्श्वका जीव,

३ श्रेणिक पौत्र उदायी राजाका जीव, ४ पोटिलाचार्यका जीव, ५ शंख श्रावकका जीव, ६ सत्यकी विद्याधरका जीव, ७ सुलसाका जीव, ८ रेवती श्राविकाका जीव, ६ अम्बड़-तापस सुलसाकी परीक्षा करनेवाला। इसप्रकार नौ श्रावकोंने भी वीर प्रभुके शासनमें तीर्थंकर की पदवी प्राप्त की है। श्रीमहावीरके मोक्ष-गमनके पश्चात् तीन वर्ष और साढ़े आठ मासमें पाँचवाँ आरा इक्कीस हजार वर्षका आरम्भ हुआ। इस आरेके प्रारम्भमें सात हाथका शरीर और १३० वर्षका आयुष्य परिमाण जानना चाहिए।

इस प्रकार तेईस तीर्थंकर और बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ बलदेव और नौ ही प्रति वासुदेव तथा नव-नारद ये इकहत्तर पुरुष चौथे आरेमें हुए। इनके पहले तीर्थंकर तो तीसरे आरेके अन्तमें हो गये हैं। इसप्रकार ७२ पुरुष हुए हैं और बारह रुद्र मिलाकर चौरासी शलाका पुरुष हुए। इन सबको जैनधर्मी जानना चाहिए। नारद प्रथम तो परिव्राजक होते हैं, किन्तु पीछेसे भाव जैन होकर आत्मज्ञान प्राप्त करते हुए मोक्ष-मार्गको साधते हैं।

सातवाँ परिच्छेद

इतिहास-परिचय

—:o:—

बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी राजगृही नगरीमें जन्मे थे। इसीप्रकार अन्तिम प्रति वासुदेव जरासंध भी राजगृहीमें ही जन्मा था। महावीर स्वामीके समयमें मगधराज बिम्बिसार भी राजगृही नगरीमें राज्य करता था; किन्तु ये राजगृहियाँ अलग-अलग कही जाती हैं। बिम्बिसारकी राजधानीवाली राजगृही उसके पिता प्रसेनजित् राजाने बसाई थी। प्रसेनजित् राजाके समय तक मगधके राजाओंकी राजधानी कुशाग्रपुर मानी जाती थी; किन्तु उसमें बारम्बार अग्निका उपद्रव होनेसे मगधपति प्रसेनजित्ने नवीन नगरी बसाकर उसका नाम राजगृही रखा था। प्रसेनजित्के श्रेणिककुमार आदि सौ पुत्र थे; किन्तु बड़ा होनेसे श्रेणिक गद्दीपर बैठा। वह प्रारम्भमें बुद्धके समागममें आनेसे बौद्ध बना था; किन्तु अनाथी मुनिके दर्शन और चिल्लणाके प्रयत्नसे वह शुद्ध जैन हो गया। इतनेही में श्रीमत् वीरप्रभुको केवलज्ञान प्राप्त हुआ और वे राजगृही नगरीमें पधारे। वीर प्रभुकी अमृतमयी वाणी श्रवणकर मगधराज श्रेणिक उनका

अनन्यभक्त होगया। मालवेका राजा चन्द्रप्रद्योत् उनका अविरिति श्रावक था। वत्स-देशकी कोशाम्बीका राजा शतानिक और उसका पुत्र उदयन, सिन्धु-सौवीर देशके वित्तिभय नगरका राजा उदायी, दशार्णदेशका दशार्णभद्र, विशाल नगरीका चेटक राजा, काशी और कौशलदेश-अयोध्याके राजालोग, क्षत्रियकुण्डका राजा नन्दिवर्द्धन, पोलाशपुरका विजय राजा, पोतनपुरका प्रसन्नचन्द्र, हिमालयके उत्तरमें पृष्ट चम्पाके शाल और महाशाल, कनकपुरका प्रियचन्द्र, महापुरी नगरका बलराजा और चम्पानगरीका दत्तराजा आदि जैन राजा उनके भक्त थे।

श्रेणिकके पुत्र अभयकुमार, मेघकुमार, हल्ल और विहल्लकुमार एवं नन्दिषेण कुमार आदिने श्रीवीर प्रभुसे दीक्षा ग्रहण की थी। विशालाके चेटक महाराजाकी कुमारियाँ-मृगावती, सुजेष्ठा, चिल्लणा आदिने भी व्रत ग्रहण किया था। श्रेणिकने अनेक वर्षोंतक मगध राज्यका शासन करते हुए जैनधर्मकी आराधना की। बादमें उनका पुत्र कोणिक मगधराज हुआ। इसने चम्पानगरी वसाकर वहाँ अपनी राजधानी स्थापित की। अपने बाहुबलसे तीन खण्ड पृथ्वीपर अधिकार जमाकर समस्त शत्रु राजाओंको आधीन बना लिया। इसप्रकार वह अजात-शत्रुके नामसे प्रसिद्ध हुआ और इसका पुत्र उदायी भी

इसीकी तरह महावीरका भक्त था। यह अजातशत्रु बौद्धोंका शत्रु था।

बुद्धके एक शिष्य देवदत्तने बुद्धसे निवेदन किया कि :—भगवन्! हमें अपने साधुओंके लिए वनवास, जीर्ण वस्त्र धारण एवं गोचरीसे आहार ग्रहण एवं मांसका त्याग, इन चार नियमोंका पालन आवश्यक बना देना चाहिए; किन्तु गौतमबुद्धने इस बातको स्वीकार नहीं किया। तब देवदत्तने अजातशत्रुके आश्रयमें आकर नया मत चलाया; किन्तु वह अधिक दिनों तक नहीं चला। अजातशत्रु भी जब विजययात्रा करनेके लिए निकला तब उसने सावत्थी नगरीपर अधिकार जमाकर कपिल-वस्तुको जीतनेके बाद नष्ट कर दिया। उनके मांसाहार आदि दोषोंसे वह क्रुद्ध हुआ जान पड़ता है; अर्थात् वह दुनियाको ठगनेके लिए इसप्रकारके पाखण्ड पसन्द नहीं करता था; किन्तु इसप्रकार संसारमें उसका एकछत्र राज्य होनेपर भी उसने बौद्धधर्मका नाश नहीं किया।

कई वर्षोंतक संसारका साम्राज्य भोगनेके पश्चात् इसका पुत्र उदायी गद्दीपर बैठा। पिताकी मृत्युके कारण इस नये चम्पापतिको अपनी राजधानीमें चैन नहीं पड़ सकी। वह बारम्बार पिताको याद करके शोकाकुल

रहने लगा। अतएव मन्त्रियोंने नवीन नगर बसानेकी योजना की, और उसके लिये उपयुक्त भूमिकी खोज करने पर गंगाके किनारे एक सर्वोत्तम भूमि दिखाई दी। अतएव वहाँ नवीन नगरीकी स्थापना कर उसका नाम पाटलीपुत्र रक्खा और शुभ मुहूर्त्तमें उदायी राजाने वहाँ अपनी राजगद्दी प्रतिष्ठित की।

जिस प्रकार अजातशत्रुने दीर्घकाल पर्यन्त राज्य शासन किया; उसी प्रकार उसके पुत्रने भी शासन चलाया; किन्तु प्रभु महावीरस्वामीकी विद्यमानतामें ही श्रेणिककी मृत्यु होगई और अजातशत्रु गद्दीपर बैठा। महावीरस्वामीके पश्चात् गौतमस्वामीको केवलज्ञान प्राप्त हुआ और बारह वर्षौंतक केवली पर्यायका पालन कर वे मोक्षको प्राप्त हुए। उस सुधर्मागणधरकी वन्दना करनेके लिए अजातशत्रु विशाल ऋद्धि सहित आया था।

जिस वर्षमें श्रीप्रभु महावीरने निर्वाण प्राप्त किया; उसीसमय मालव प्रदेशकी राजधानी उज्जयिनीमें पालकका राज्याभिषेक हुआ था। इसीप्रकार जम्बूस्वामीकी प्रभवस्वामीके साथ दीक्षा भी उसी वर्ष हुई थी; किन्तु श्रीमान महावीरके पाटपर गौतम गणधर नहीं विराजे, वरन् स्वतः भगवानने ही सुधर्मास्वामीको पट्टारोहण कराया था। इसालिए गौतमस्वामीने गच्छका

भार सुधर्मास्वामीको सौंपकर महावीरके पश्चात् उन्हें पट्टधर-पदपर स्थापित किया। श्रीमहावीर स्वामीके बीसवर्ष पश्चात् जब सुधर्मागणधर मोक्षको प्राप्त हुए, तब उनके बाद जम्बूस्वामी उस पदपर प्रतिष्ठित हुए; और दीर्घकालपर्यन्त जम्बूस्वामी केवलीपनसे विचरकर श्रीमहावीर से ६४वें वर्ष मोक्षको प्राप्त हुए।

भगवान्के निर्वाण प्राप्त करनेके साठवर्ष पश्चात् मगधराज उदायीकी बिना पुत्रके मृत्यु होजानेसे मगधका राज्य नन्द नामके एक पुरुषके हाथमें चला गया। उसी वर्ष पालकका भी नाश होजानेसे मालवाका राज्य भी मगधके साथ सम्मिलित होगया।

उस नन्दके वंशमें भी क्रमशः नौ नन्द हुए। वे नवों नन्द जनधर्मके अनुयायी और पराक्रमी थे। इनमें पहले नन्दके राज्यशासनके आरम्भसे ही कल्पक नामक एक महा अमात्य नियुक्त हुआ था, उसीके वंशज क्रमशः नन्दोंके प्रधान मन्त्री पदपर प्रतिष्ठित होते रहे। ये नागर ब्राह्मण होते हुए भी जैनधर्मानुयायी थे।

जब नवम नन्द पाटलीपुत्रकी गद्दीपर बैठा, उस समय कल्पक वंशका शकटाल नामक महामन्त्री था। उसके श्रीयक और स्थूलिभद्र नामके दो पुत्र थे। इसी प्रकार यक्षादि सात पुत्रियाँ भी थीं। नन्द राजाकी

सभामें वररुचि नामका एक महा विद्वान् ब्राह्मण था ; साथही व्याडि नामका एक पण्डित और भी था।

वररुचि, व्याडि और पाणिनी ये तीनों एक ही गुरुके शिष्य थे। इनमें पाणिनी मूर्ख था और उसे कुछ भी नहीं आता था। अतएव उसने हिमालय पर जाकर तप किया और शङ्कर नामके देवतासे वरदान पाकर वह प्रखर पण्डित होगया। इसके बाद उसने अष्टाध्यायीकी रचना की ; जिसके सम्मुख वररुचि आदिके व्याकरण भी निस्तेज प्रतीत होने लगे।

यह वररुचि प्रतिदिन ही राजाकी सभामें एकसौ आठ नये काव्य सुनाया करता था, अतः राजा शकटाल मन्त्रीके कथनानुसार एकसौ आठ स्वर्णमुद्राएँ प्रदान करता था ; किन्तु इसप्रकार उस ब्राह्मणको प्रतिदिन स्वर्णमुद्राएँ लेजाते देखकर मन्त्रीको चिन्ता हुई कि थोड़ेही समयमें राज-भण्डार खाली हो जायगा। अतएव उसने वररुचिके श्लोकोंको पुराना सिद्ध करके वे एकसौ आठ स्वर्णमुद्राएँ दिलवाना बन्द करा दी। फलतः वररुचि इस वैर-दाँवको मनमें रखकर बदला लेनेके लिए उपयुक्त अवसरकी प्रतीक्षा करने लगा।

वररुचि गंगानदीमें एक यन्त्र लगाकर एकसौ आठ स्वर्णमुद्राओंकी थैला उसमें रख देता और प्रातः

सबके सम्मुख वह एकसौ आठ श्लोकों द्वारा गंगाकी स्तु! करता, और यन्त्रकी चाबी दबाते ही ... थैली उछलकर उसकी गोदमें आ गिरती थी। ... रातको वह जाकर गंगामें थैली रख आता और प्र वह उसकी गोदमें आजानेसे उसकी ख्याति सर्वत्र ... गई। जब राजाने यह बात सुनी तो उसे भी बड़ा ... हुआ। उसने मन्त्रीसे पूछा कि 'यह क्या रहस्य है?'

मन्त्रीने उसके पीछे गुप्तचर लगाकर वह ... जान लिया और युक्ति पूर्वक वह एकसौ आठ ... मुद्राकी थैली गंगामेंसे निकलवा ली। दूसरेदिन प्रातः... राजा अपने मन्त्री एवं अन्य लोगोंके साथ ...चि चमत्कार देखने गंगाके तटपर पहुँचा। वररुचिने ... आडम्बरके साथ गंगाकी स्तुति करके यन्त्रकी दबाई, किन्तु नित्यकी तरह वह मुहरोंकी थैली ... गोदमें नहीं गिरी। इसके बाद बारम्बार यन्त्रकी च दबाने पर भी जब कोई परिणाम नहीं निकला; ... उन हजारों मनुष्योंके सम्मुख उसे लज्जित होना पड़ा।

उधर शकटाल मन्त्रीने वह एकसौ आठ स्वर्ण मुद्राओंकी थैली वररुचिके सम्मुख रखते हुए कहा: "देखो, यह तुम्हारी ही एकसौ आठ स्वर्णमुद्राए ... थैली तो नहीं है?"

वररुचिने थैलीको तो देखते ही पहचान लिया ; किन्तु यदि वह 'ना' कहता तो वे एकसौ आठ मुहरें हाथसे जातीं ; और यदि 'हाँ' कहता तो वह पाखण्डी सिद्ध होता ! फिर भी लोभवृत्ति बलवान होनेसे उसने 'हाँ' कहकर थैली लेली और वह कपटी लोगोंके बीच तिरस्कारका पात्र हुआ ।

शकटालका बड़ा पुत्र स्थूलिभद्र राजाकी प्रियपात्र कोशा वेश्याके घर दिनरात पड़ा रहता था । उसे वहाँ संसार सुख भोगते हुए बारह वर्षका समय व्यतीत हो गया । उधर कालान्तरमें शकटाल मन्त्रीके स्वर्गवासके पश्चात् नन्दराजाने श्रीयकको बुलाकर जब मन्त्रीकी पदवी देना चाहा ; तब उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि :—"मेरे ज्येष्ठ भ्राता स्थूलिभद्र कोशा वेश्याके घर रहते हैं, उन्हींको बुलाकर यह पदवी दीजिये !"

श्रीयकके यह वचन सुनकर नन्दराजाने स्थूलिभद्रको बुलवानेके लिए कोशाके घरपर सिपाही भेजे । अतः कोशासे अनुमति लेकर स्थूलिभद्र नन्दराजाके सम्मुख उपस्थित हुआ । तब राजाने उसके पिताका वृत्तान्त सुनाकर मन्त्रि-पदवी उसे देना चाहा ; किन्तु स्थूलिभद्रने थोड़ी देर विचार करनेकी आज्ञा माँगी और राजाने शीघ्र विचार करके उपस्थित होनेके लिए कहा ।

स्थूलिभद्र अशोक वाटिकामें जाकर विचार करने लगा। विचार करते-करते ही उसके मनमें वैराग्य उत्पन्न होगया और अपनेही हाथोंसे पंचमुष्टी लोच, यानी अपनेही सिरके बाल नोचकर साधुके समान वह राजसभामें आया और राजाको धर्मलाभ प्रदान किया। इसके बाद स्थूलिभद्र साधु बनकर चले गये, तब राजाने मन्त्रि-पद उनके छोटे भाई श्रीयकको प्रदान किया। स्थूलिभद्रने संभूति-विजय आचार्यके समीप जाकर उनसे दीक्षा ग्रहण की और क्रमशः बहुश्रुत होगये। उस समयमें संभूतिविजय और भद्रबाहु ये चौदह पूर्वधर जैन-शासनमें स्तम्भ रूप माने जाते थे। स्थूलिभद्र भी 'चौदह पूर्व' तक शिक्षा प्राप्त करते रहे। इसीलिए अन्तिम चौदह पूर्वी स्थूलिभद्रजी ही माने गये।

श्रीमहावीर स्वामीके पश्चात् ६४ वें वर्ष जम्बूस्वामी मोक्षको प्राप्त हुए। तत्पश्चात् उनके पाटपर प्रभवस्वामी तीसरे पट्टधर हुए। प्रभवस्वामी विन्ध्याचलके निकट-वर्ती जयपुर नगरके राजा विन्ध्यके पुत्र थे। प्रभव युवराज थे और उनके एक भ्राता प्रभुके नामके दूसरे भी थे। भवितव्यतावश विन्ध्यराजाने युवराज प्रभवको राज्य न देकर छोटे पुत्र प्रभुको अपना उत्तराधिकारी बना दिया। इससे स्वाभिमानी प्रभवने पिताका राज्य

त्यागकर विन्ध्याचलके समीपकी भूमिपर एक नया ग्राम बसाया और लूट-पाट कर वह अपनी आजीविका चलाने लगा। इसप्रकार धीरे-धीरे वह पाँचसौ चोरोंका सरदार बन गया। एकदिन वे सब जम्बूस्वामीका घर लूटनेके लिए आये किन्तु वहाँ उनका उपदेश सुनकर वे सभी वैराग्यवान होकर उनसे दीक्षा लेनेके बाद आत्मकल्याणकी साधनामें प्रवृत्त होगये। इसप्रकार एक महान् लुटेरोंका सरदार जैनधर्मका एवं श्रीमहावीरका तीसरा पट्टधर चौदह पूर्वका ज्ञाता हो गया। जम्बूस्वामीको सुधर्मा स्वामीके मोक्षगमनके पश्चात् केवलज्ञान होनेसे श्रीमहावीरके बाद ४४ वें वर्ष प्रभव चौदह पूर्वके ज्ञाता होकर युगप्रधान हुए। ऐसे युगप्रधान भी एकावतारी होते हैं।

श्रीमहावीरके पश्चात् चौंसठवें वर्ष जम्बूस्वामी मोक्षको प्राप्त हुए और उसी वर्षमें शय्यंभव नामक राजगृहीके समर्थ ब्राह्मणको प्रभवस्वामीने अपने पाटपर स्थापित करनेके लिए दीक्षा दी और वे 'चौदह पूर्व' के ज्ञाता हो गये। वीरके पश्चात् ७० वें वर्ष प्रभवस्वामी शय्यंभव सूरिको अपने पाट पर स्थापित कर स्वर्गलोकमें गये। चौदह पूर्वके ज्ञाता भी जघन्यसे छठे देवलोकतक ही जा सकते हैं।

नवम नन्दके समयमें भद्रबाहु और संभूतिविजय

विद्यमान थे। जैसा कि स्थूलिभद्रके राजसभासे निकलकर संभूतिविजयसे वीर संवत् १४६ में दीक्षा लेनेका वृत्तान्त हम पहले ही देख चुके हैं। उस नवम नन्दके पश्चात् पाटलीपुत्रकी गद्दीपर मौर्य्यवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त भारतके सम्राट् हुए।

आठवाँ परिच्छेद

चाणक्य की चतुराई

—:०:—

चाणक्य नामका एक निर्धन ब्राह्मण निर्धनावस्थासे उकताकर धन उपार्जन करनेके लिए निकला। उसने सुना कि पाटलीपुत्रका नन्द राजा ब्राह्मणोंको स्वर्ण प्रदान करता है; अतएव वह उसी ओर चल दिया। दैवयोगसे नन्दके द्वारपालों-द्वारा न रोका जानेपर वह राजमहलमें प्रविष्ट होकर सीधा नन्दराजाके सिंहासनपर जा बैठा। उसीसमय स्नान करके अनेक प्रकारके आभूषणोंको धारणकर राजा ज्योतिषीके साथ राजसभामें आया, तो चाणक्य ब्राह्मणको सिंहासनपर बैठा देखकर ज्योतिषीने कहा :—"देव! इसप्रकार सिंहासनपर आकर बैठ



उसको पाँव पकड़कर पछाड़ दिया। (पृष्ठ ७१)

जानेवाला व्यक्ति आपके राज्यका नाश करने वाला सिद्ध होगा। अतएव मीठे वचनसे इसे आप सिंहासनपरसे उठा दीजिये ; क्योंकि अग्निको सुलगानेसे तो हानि ही हो सकती है !"

राजाकी आज्ञासे दासीने दूसरा आसन लाकर चाणक्यसे कहा :–"हे ब्राह्मण देवता ! तुम इस आसन-पर बैठो और महाराजका आसन छोड़ दो !"

यह सुनकर उस आसनपर अपना कमण्डलु रखते हुए चाणक्यने कहा :—"इस आसनपर मेरा कमण्डलु रहेगा !"

दासीने तीसरा आसन लाकर रखा तो उसपर चाणक्यने अपना त्रिदण्ड रख दिया। इसप्रकार जितने भी आसन लाकर रखे गये, उन सबपर अलग-अलग वस्तुएँ रखते हुए चाणक्यने उन्हें खाली नहीं रहने दिया।

राजा चाणक्यके इस विचित्र व्यवहारसे क्रुद्ध हो उठा, और उसको पाँव पकड़कर पछाड़ दिया। तब क्रुद्ध होकर चाणक्यने प्रतिज्ञा की कि :—"अभिमानी राजा ! तेरे वंश सहित तुझे राज्यसे जड़मूलसे उखाड़ देने पर ही मैं तुझे छोड़ूँगा।"

"जा, तुझसे जो हो सो कर देना, धूर्त !" यों

कहते हुए नन्दके सुभटोंने गर्दन पकड़कर चाणक्यको बाहर निकाल दिया।

नगरसे बाहर निकलकर चाणक्यने अपना क्रोध शान्त होनेपर विचार किया कि :-"अरे रे ! मैंने कितनी कठोर प्रतिज्ञा कर डाली ! क्रोधके वश होकर की हुई ऐसी विषम प्रतिज्ञाको मैं कैसे पूर्ण कर सकूँगा ? किन्तु जो कुछ होना था सो तो हो ही गया ; अब तो मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी ही चाहिए। क्योंकि रणभूमिपर जाना श्रेष्ठ है ; जब कि लोकोंमें उपहास पात्र होकर जीना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। मुझे याद है कि बाल्यावस्थामें जब मेरा जन्म हुआ, उस समय हमारे गुरु सागरसूरि नामके प्रख्यात आचार्यको मेरी डाढ़का वृत्तान्त सुनाकर मेरे पिताने उसका फल पूछा। इसपर गुरुने कहा था कि :-"तेरा पुत्र बड़ा ही बुद्धिमान् और बहुत बड़ा राजा होगा।"

किन्तु पिताने राज्यको नरक-प्रदान करनेवाला समझकर मेरी डाढ़ोंको पाँचीका-रेतीसे घिस दिया, और यह वृत्तान्त फिर जाकर अपने गुरुसे निवेदन किया। इसपर गुरुने पिताको उलाहना देते हुए कहा :- "हे भद्र ! तुमने यह क्या किया ? प्राणी जैसा कर्म करता है उसका फल तो उसे भोगनाही पड़ता है !

तुमने बालककी डाढ़ोंको घिस दिया है ; फिर भी यह बालक समय आनेपर किसीको आगे रखकर महान् राज्यका उपभोग अवश्य करेगा।" ये पूर्वकालकी सुनी हुई बातें आज याद आरही हैं। अतएव अबतो मुझे प्रयत्न करना ही होगा। इसीलिए "देहं पातयामि वा कार्यं साधयामि"।

"बस, भले ही सूर्य कदाचित् पश्चिममें भी उदय हो जाय ; या पृथ्वी भी उलट जाय ; किन्तु मेरा वचन कदापि निष्फल नहीं हो सकता।" इसप्रकार विचार करते हुए चाणक्यने परिव्राजकका वेष धारणकर जहाँ-तहाँ परिभ्रमण करना आरम्भ किया। क्रमशः वह नन्द राजाके मयूर पोषकोंके ग्राममें जा पहुँचा। उस समय उनके नायककी पुत्री गर्भवती थी। उसे चन्द्रके पान करनेका दोहद उत्पन्न हुआ ; किन्तु उसकी अभिलाषा पूर्ण न हो सकनेसे वह मृत्युमुखकी ओर जाने जैसी हो गई थी।

नायक द्वारा चाणक्यको यह रहस्य ज्ञात होनेपर उसके गर्भसे जन्म लेनेवाला बालक अपनेको देनेकी प्रतिज्ञापर उसने नायककी पुत्रीकी अभिलाषा बुद्धिपूर्वक पूर्ण कर दी।

वहाँसे चाणक्य धातुओंकी खदानोंके देशमें गया

और वहाँ धातुर्वादी लोगोंसे बहुत-सा द्रव्य उपार्जन कर जब वापस लौटा, तब उसने एक बालकको राजा बनकर अन्य बालकोंके साथ खेलते हुए देखा। उस स्वाभिमानी तेजस्वी बालककी सुन्दरता और चतुराई देखकर चाणक्य बहुतही प्रसन्न हुआ और उसके पास जाकर नम्रतापूर्वक कहने लगा :—"देव! मैं ब्राह्मण हूँ; मुझे कुछ दीजिये?"

यह सुनतेही तत्काल बालकने कहा :-"हे ब्राह्मण! यह गायोंका समूह जो सामने चर रहा है; इसे तुम ले जाओ!"

"किन्तु इसका स्वामी मुझे मार नहीं डालेगा?" चाणक्यने पूछा।

"तुम नहीं जानते कि पृथ्वी तो तलवारके बलपर ही भोगी जा सकती है?" बालकके इस वीरतापूर्ण वाक्यको सुनकर चाणक्यने पता लगाया कि यह बालक किसका है?

तब उसे मालूम हुआ कि यही बालक ग्रामके नायककी पुत्रीका लड़का है; और इसका नाम चन्द्रगुप्त है। यह जब गर्भमें था, तभीसे इसे एक परिव्राजकको अर्पणकर दिया गया है।" यह जानते ही चाणक्यको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह बालकके पास आकर कहने लगा :-

"हे वत्स! आओ, आओ! यहाँ मेरे पास आओ! तुम जिस परिव्राजकको अर्पण किये गये हो, वह मैं ही हूँ। मेरे साथ चलो; मैं तुम्हें सच्चा राजा बना दूँगा। इसप्रकार खेलका राजा बननेसे तुम्हें कैसे सन्तोष हो सकता है।" यों कह कर चाणक्य उस बालक चन्द्रगुप्तको वहाँसे लेगया और धातुवादियोंसे एकत्रित किये हुए द्रव्यसे चतुरङ्गिनी सेना खड़ी करके चन्द्रगुप्तको उसका स्वामी-राजा बना दिया तथा स्वयम् उसका महामन्त्री बन गया।

उस सेनाके द्वारा उसने पाटलीपुत्रको घेर लिया। अतएव नन्दराजाको भी अपनी सेना सहित बाहर आना पड़ा और जब युद्धमें चन्द्रगुप्तकी सेना छिन्न-भिन्न होकर पलायन कर गई; तो चाणक्य भी अपनी पराजय होती देख चन्द्रगुप्तको साथ लेकर चलदिया। नन्द-राजाने चाणक्यको पकड़नेके लिए इधर-उधर सैनिक दौड़ाये और उसे पकड़कर लानेके लिए इनाम भी घोषित किया।

इधर चन्द्रगुप्तको लेकर चाणक्य पैदल चलता हुआ एक तालाबके किनारे पहुँचा; किन्तु उसी समय उसने अपनी खोजमें एक सैनिकको उधर आते देखा। अतः चन्द्रगुप्तको डुबकी लगाकर पानीमें छिप जानेके

लिए कहा और उसके डुबकी लगाते ही वह स्वयं धोबी बनकर कपड़े धोने लगा। इतने ही में वह सवार वहाँ आ पहुँचा और उसने धोबीसे पूछा :-"अरे! क्या तूने इधरसे चन्द्रगुप्त और चाणक्यको जाते हुए देखा है?"

"चाणक्यका तो मुझे पता नहीं; परन्तु चन्द्रगुप्त अवश्य इस तालाबमें अदृश्य होगया है।" यह सुनते ही वह सैनिक घोड़ेपरसे उतर पड़ा और उसकी लगाम धोबीको पकड़नेके लिये कहा; इसपर उसने कहा :-"अरे साहब! मैं ऐसे घोड़ेसे डरता हूँ, आप इसे सामने झाड़से बाँध दें।" घोड़ेको झाड़से बाँधकर तलवार और कपड़े किनारे रख उसने ज्योंही तालावमें पैर रखा त्योंही पीछे-से चाणक्यने उसीकी तलवारसे उसका सिर उड़ा दिया।

इसके बाद चाणक्यने चन्द्रगुप्तको पानीसे बाहर निकालकर उसे घोड़ेपर चढ़ाया और खुद भी उसके साथ बैठ कर भाग निकला।

चलते-चलते वे एक ग्रामके निकट पहुँचे। उस समय चन्द्रगुप्तको कड़-कड़ाकर भूख लगी थी। अतः उसे उद्यानमें ठहराकर चाणक्य गाँवमें गया। मार्गमें उसे एक ब्राह्मण मिला जो मरनेके लिए आतुर एवं भाग्यहीन होते हुए भी आकण्ठ भोजन कर पेटपर हाथ फेरता हुआ आ रहाथा। अत्यधिक भोजन करनेसे उसका

इधरसे चन्द्रगुप्त और चाणक्यको जाते हुए देखा है ?"





उसीकी तलवारसे उसका सिर उड़ादिया। (पृष्ठ ७६)

पेटरूपी घड़ा फूटने जैसी दशामें हो रहा था। उसे देख, चाणक्यने पूछा :—"महाराज! इस गाँवमें कहीं पर अभ्यागतको भोजन मिल सकता है?"

"हाँ, भाई! अवश्य मिल सकता है! आज इस गाँवमें एक यजमानके घर महोत्सव होनेसे समस्त अतिथियोंको इच्छानुसार मट्ठा पिलाया जाता है। अतः तुम भी जाकर भरपेट मट्ठा पी आओ। देखो, मैं भी वहींसे मट्ठा पीकर चला आ रहा हूँ।" इसप्रकार उसने पेटपर हाथ फिरातेहुए चाणक्यको उधर जानेके लिए संकेत किया।

भट्टजीकी बात सुनकर चाणक्यने मनमें विचार किया कि चन्द्रगुप्त उद्यान में अकेला है और इधर मैं गाँवमें जा रहा हूँ। यदि वहाँ नन्द राजाका कोई सिपाही मिल गया तो बड़ी मुश्किल होगी और यदि उधर चन्द्रगुप्त पकड़ लिया गया तो सर्वनाश ही हो जायगा। अतएव मैं इसे ही भेजकर मट्ठा मँगवा लूँ और उससे चन्द्रगुप्तकी क्षुधा शान्त करदूँ, यही ठीक होगा। यह सोचकर उसने ब्राह्मणको भेजकर मट्ठा मँगवाया और उससे चन्द्रगुप्तकी क्षुधा शान्त की।

वहाँसे चाणक्य चन्द्रगुप्तको लेकर आगे बढ़ा और सायंकालको एक सन्निवेशमें गड़रियोंकी ढानी-बस्तीके

निकट जाकर वह एक वृद्धा गडरियाइनके यहाँ भिक्ष
लेने पहुँचा।

दैवयोगसे उसी समय उसने अपने बच्चोंको खिलानेके लिए थालीमें गर्मा-गर्म खड़ी परोसी थी उस गर्म खड़ीमें एक बालकने हाथ डाल दिया और हाथके जलनेसे वह चिल्ला उठा। इससे क्रुद्ध होकर वह कहने लगी :—"रे मूर्ख! तू भी क्या चाणक्यके समान बुद्धि-हीन होगया है?"

चाणक्य इन शब्दोंको सुनतेही चौंका और उसने उस वृद्धाके पास आकर पूछा :—"माताजी! आपने जिस चाणक्यकी उपमा दी, वह चाणक्य कौन है?"

"वही चाणक्य जो कि चन्द्रगुप्तको साथ लेकर पाटलीपुत्रको जीतने गया था! किन्तु नन्दराजा पर विजय पानेके बदले वह खुदही हारकर भाग गया। यों कहकर वृद्धा हँसी।

"माँजी! हार-जीतकी बात तो भाग्यपर रहती है; इसमें हँसनेका क्या कारण है?" वृद्धाने कहा :-"मुझे उसकी मूर्खतापर हँसी आती है।"

"उसकी मूर्खतापर?"

उसने ऐसा कौनसा मूर्खतापूर्ण कार्य किया है, जिससे आपको उसपर हँसी आ रही है? चाणक्यने उत्सुकतासे पूछा।

"उस चाणक्यने एकदम पाटलीपुत्रको घेर लिया! यही उसकी मूर्खता थी।"

तो फिर उसे क्या करना चाहिये था, माताजी?" वृद्धाकी बातोंमें चाणक्यकी रुचि बढ़चली। उसे प्रतीत हुआ कि, अवश्यही वृद्धासे कोई नयी युक्ति ज्ञात होगी।"

"उस मूर्खने यों नहीं सोचा कि पहले अगल-बगलके प्रदेशपर अधिकार कर लेनेके बाद राजधानीपर यदि चढ़ाई की जाय तो अल्प समयमें सफलता प्राप्त हो सकती है। उसीप्रकार इस छोकरेने भी आसपासकी खड़ीको चाटे बिना एकदम बीचमें ही हाथ डाल दिया।" वृद्धाकी बात सुनकर चाणक्यकी बुद्धि ठिकाने आगई। उसने सोचा वृद्धाका कथन ठीक है। इसके कहे अनुसार किया जानेपर ही सफलता मिल सकती है। बालकसे भी यदि कोई हितकारी वचन मिल सके तो उसे अवश्य ग्रहण करना चाहिये। नीतिशास्त्र भी यही उपदेश देता है। अतएव नन्दराजाका राज्य हस्तगत करनेके लिए उसने उस वृद्धाका उपदेश ग्रहण कर पुनः प्रयत्न करनेका निश्चय किया।

धीरे-धीरे चाणक्यने फिरसे सेना एकत्र करना आरम्भ किया; और चन्द्रगुप्तको उसका अधीश्वर बनाया। इसके बाद किसी बड़े राज्यसे सहायता लेनेके

विचारसे वह हिमवत्कूट-हिमालय पर्वतकी ओर गया वहाँ भीलोंका नायक पर्वतक नामका राजा था। उससे चाणक्यने मित्रता की। इसके बाद एकदिन ... पर्वतकको अपना उद्देश्य कह सुनाया, और उससे कहा कि :—"यदि आप पूर्णरूपसे सहायता करें, तो नन्दका राज्य जड़मूलसे उखाड़ कर हम दोनों उसकी ... सम्पत्तिको बाँट ले सकते हैं।"

पर्वतकने चाणक्यकी बात स्वीकार करली और थोड़े ही दिनों बाद वह अपनी विशाल एवं सुसज्जित-सेना लेकर चाणक्यके साथ चल दिया। निश्चित स्थानपर चन्द्रगुप्त भी अपनी सेना सहित उससे आ मिला। इस प्रकार बहुत बड़ी सेनाके साथ चाणक्य, चन्द्रगुप्त और पर्वतक नन्दराजाके प्रदेशमें जा पहुँचे। आसपासका प्रदेश हथियाकर उन्होंने नन्दराजाके एक बहुत बड़े नगरके अगल-बगलमें घेरा डाला, किन्तु उस नगर पर अधिकार नहीं हो सका। अतएव चाणक्य परिव्राजकका वेश धारणकर उसका कारण जाननेके लिए नगरमें प्रविष्ट हुआ। चारों ओर भटकनेके बाद उसने एक स्थानपर भलीभांति प्रतिष्ठित की हुई देवियोंकी मूर्तियां देखीं। देखकर उसने सोचा कि, यथार्थमें इन मूर्तियोंके प्रभावसे ही इस नगरपर विजय नहीं प्राप्त की जा

सकी है। अतएव वह उन मूर्तियोंके उत्थापनका उपाय सोचने लगा।"

इधर कई दिनोंके घेरेसे नगरके लोग भी उकता गये थे। इसलिए उन त्रस्त लोगोंने इस परिव्राजकसे पूछा :—"हे भगवन्! क्या आप बतला सकते हैं कि इस नगर परसे यह सङ्कट कब दूर होगा?"

चाणक्यको अनायास मौका मिल गया। उसने प्रसन्नता पूर्वक कहा :—"यदि आपलोग इस नगरको सङ्कटसे मुक्त करना चाहते हैं तो इन देवियोंकी मूर्तियाँ यहाँसे हटाइये। जब-तक ये देवियाँ यहाँ बैठी हुई हैं, तब-तक आपके नगरका सङ्कट दूर नहीं हो सकता।"

फलतः चाणक्यके वचन सुनते ही नागरिकोंने मूर्तियोंको उखाड़ना आरम्भ कर दिया। उधर चाणक्यके सङ्केतपर चन्द्रगुप्त और पर्वतक भी थोड़े थोड़े पीछे हटते चले गये। इससे प्रसन्न होकर नागरिकोंने देवियोंकी मूर्तियाँ उखाड़ कर वहाँ गड्ढा कर दिया।

इसके थोड़ी ही देर बाद चन्द्रगुप्त और पर्वतकने उस नगरीपर चढ़ाई करके अपना अधिकार जमा लिया। तत्पश्चात् उस नगरको नष्ट कर शेष रहे हुए प्रदेशपर भी अधिकार कर लिया और इसप्रकार एक

बहुत बड़ी सेना लेकर उन दोनों राजाओंने, यानी चन्द्रगु
और पर्वतकने चाणक्यको आगे रख पाटलीपुत्रको
लिया। तब अभिमानसे अन्धा बना हुआ नन्दराजा
अपनी सेना साथ लेकर लड़नेके लिए आया; कि
उसका पुण्य क्षय हो जानेसे युद्धमें पराजित होकर सम्पू
सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई। इसप्रकार निर्बल हो जाने
नन्दराजा पकड़ा गया। तब उसने चाणक्यसे द
याचना करके जीवन दान माँगा। उस समय चा
उससे कहा :—"हे नन्द! तूने तो मुझे गर्दन
कर सभामेंसे बाहर निकाल दिया था; किन्तु मैं
तुझे जीवन-दान दे रहा हूँ। इसलिए प्रसन्न होकर
रथमें तू अपनी इच्छानुसार जितना भी द्रव्य चाहे,
लेजा और जहाँ जी चाहे, तू जा सकता है। तुझे मार्ग
कोई भी रोक-टोक या उपद्रव नहीं करेगा।"

चाणक्यके इन मर्मभेदी वचनोंको सुनकर बिजली
समान चञ्चल राज्य-लक्ष्मीको धिक्कारते हुए, नन्दराजा
अपनी दोनों रानियों एवं एक पुत्रीको साथ ले
उत्तमोत्तम रत्नोंसे परिपूर्ण रथ तैयार किया और एक
विषकन्याको शत्रुसे बदला चुकानेके लिए राजभवनमें
छोड़कर शेष सभी सार वस्तुओं सहित वह चल दिया;
किन्तु जिस समय नन्दराजाका रथ जा रहा था;

उसी समय उसकी प्रिय पुत्री चन्द्रगुप्तको देखकर मुग्ध होगई। वह आतुर नेत्रोंसे उसकी ओर देखने लगी। अतः नन्दराजाने उसे रथपरसे उतार कर चन्द्रगुप्तके पास भेज दिया और वह वहाँसे चला गया।

किन्तु नन्दपुत्री पिताके रथसे उतर कर जैसे ही चन्द्रगुप्तके रथपर चढ़ने लगी कि, उसी समय चन्द्रगुप्तके पहियेके नौ आरे टूट गये। इसे अपशकुन समझकर चन्द्रगुप्त राजकन्याको रोकने लगा; किन्तु उसी समय चाणक्यने कहा :—"वत्स! यह तो शुभ शकुन है। इसे रोकना ठीक नहीं।"

चन्द्रगुप्तने आश्चर्यपूर्वक पूछा :—"इसे शुभ शकुन कैसे समझा जाय?"

तब चाणक्यने कहा कि "तुझसे लेकर नौ पीढ़ीतक तेरा राज्य शत्रु रहित एवं निष्कण्टक चलता रहेगा।" अतएव नन्दपुत्रीको रथमें बैठाकर चन्द्रगुप्तने नगरमें प्रवेश किया।

बहुत बड़ी सेना लेकर उन दोनों राजाओंने, यानी चन्द्रगु और पर्वतकने चाणक्यको आगे रख पाटलीपुत्रको लिया। तब अभिमानसे अन्धा बना हुआ नन्दराजा अपनी सेना साथ लेकर लड़नेके लिए आया; प उसका पुण्य क्षय हो जानेसे युद्धमें पराजित होकर सम्पू सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई। इसप्रकार निर्बल हो जाने : नन्दराजा पकड़ा गया। तब उसने चाणक्यसे ५५ याचना करके जीवन दान माँगा। उस समय चा। ५५ उससे कहा :—"हे नन्द! तूने तो मुझे गर्दन . . कर सभामेंसे बाहर निकाल दिया था; किन्तु मैं . तुझे जीवन-दान दे रहा हूँ। इसलिए प्रसन्न होकर . रथमें तू अपनी इच्छानुसार जितना भी द्रव्य चाहे, प लेजा और जहाँ जी चाहे, तू जा सकता है। तुझे मार्ग कोई भी रोक-टोक या उपद्रव नहीं करेगा।"

चाणक्यके इन मर्मभेदी वचनोंको सुनकर ... समान चञ्चल राज्य-लक्ष्मीको धिकारते हुए, नन्दराज अपनी दोनों रानियों एवं एक पुत्रीको साथ ले. उत्तमोत्तम रत्नोंसे परिपूर्ण रथ तैयार किया और . विषकन्याको शत्रुसे बदला चुकानेके लिए ... न छोड़कर शेष सभी सार वस्तुओं सहित वह चल दिया; किन्तु जिस समय नन्दराजाका रथ जा रहा था;

उसी समय उसकी प्रिय पुत्री चन्द्रगुप्तको देखकर मुग्ध होगई। वह आतुर नेत्रोंसे उसकी ओर देखने लगी। अतः नन्दराजाने उसे रथपरसे उतार कर चन्द्रगुप्तके पास भेज दिया और वह वहाँसे चला गया।

किन्तु नन्दपुत्री पिताके रथसे उतर कर जैसे ही चन्द्रगुप्तके रथपर चढ़ने लगी कि, उसी समय चन्द्रगुप्तके पहियेके नौ आरे टूट गये। इसे अपशकुन समझकर चन्द्रगुप्त राजकन्याको रोकने लगा; किन्तु उसी समय चाणक्यने कहा :—"वत्स! यह तो शुभ शकुन है। इसे रोकना ठीक नहीं।"

चन्द्रगुप्तने आश्चर्यपूर्वक पूछा :—"इसे शुभ शकुन कैसे समझा जाय?"

तब चाणक्यने कहा कि "तुझसे लेकर नौ पीढ़ीतक तेरा राज्य शत्रु रहित एवं निष्कण्टक चलता रहेगा।" अतएव नन्दपुत्रीको रथमें बैठाकर चन्द्रगुप्तने नगरमें प्रवेश किया।

नवाँ परिच्छेद

चन्द्रगुप्त

—:o:—

चन्द्रगुप्त और पर्वतक दोनों नन्दराजाके ० पहुँचे। दवयोगसे वहाँ जाते ही पर्वतक ५१। विषकन्याको देखकर मुग्ध हो गया; किन्तु ७ स्पर्शमात्रसे जहर चढ़नेके कारण पर्वतककी मृत्यु हे और उसका राज्य भी चन्द्रगुप्तके हाथमें आगया। २ प्रकार चन्द्रगुप्त एक बड़े राज्यका स्वामी बन ५। शुभ मुहूर्तमें चाणक्यने चन्द्रगुप्तका राज्याभिषेक और अपनी प्रतिज्ञापूर्ण हो जानेसे उसने अपनी हुई शिखा फिरसे बाँधी। वीर-निर्वाणके बाद १५ वर्ष व्यतीत होनेपर चन्द्रगुप्त मगधका सम्राट् और च चाणक्य उसका महामन्त्री बना।

इसप्रकार मयूर पोषकोंके नायककी मुरा पुत्रीसे उत्पन्न होनेके कारण चन्द्रगुप्तका वंश कहलाया। इसके बाद चाणक्यने राज्यप्रबन्धकी ओ ध्यान दिया। उधर नन्दराजाके कई अनुभवी विषम प्रदेशमें रह कर राज्यमें चोरी करके

त्रस्त करने लगे। अतएव नगरकी रक्षाके लिए सब प्रकार समर्थ ऐसे कोलिक नामके एक कूट बुद्धिको उसने 'कोटवाल' बनाया ; किन्तु धीरे-धीरे मेल-जोल बढ़ाकर भोजनादिके सत्कारके बहाने चोर बने हुए नन्दराजाके मनुष्योंको कोटवालने मार डाला। इस प्रकार चाणक्यकी बुद्धिमानीसे चन्द्रगुप्तका राज्य पूर्ण-तया निष्कण्टक होगया।

इसके बाद चाणक्यने अपनी स्त्री एवं पारिवारिक जनोंको पाटलीपुत्र बुलाकर सब प्रकारसे सुखपूर्वक रखा। चाणक्यकी स्त्री अपने पतिका राजाके समान वैभव देखकर प्रसन्न हुई।

पहले एकबार गरीबीकी दशामें चाणक्यके श्वसुरने उसकी स्त्रीका अपमान किया था। उसीने अब चाणक्यको राजाका महामन्त्री बना देखकर उससे अपने अपराधके लिए क्षमा-याचना की। उसने कहा :—"हे जामाता ! पहले मैंने अपने पुत्रके विवाहके समय तुम्हारी स्त्री (मेरी पुत्री) को एक निर्धन स्त्री कह कर उसका जरा भी सम्मान नहीं किया था। इसलिए आप हमारे उस अपराधको कृपा-करके अब क्षमा कर दीजिये।" अपने श्वसुरके इसप्रकार पश्चात्तापपूर्वक विचार सुनकर वह प्रसन्न होगया। महान् पुरुष नम्रता प्रकट

करने वालोंपर हमेशा प्रसन्न ही होते हैं। ... समयको पहचाननेवाले चाणक्यने अपने श्वसुर एवं ... स्वजनोंको उनकी योग्यतानुसार ग्रामादि देकर सुखी सन्तुष्ट किया। भला, जगतमें उदय होनेवाले सूर्यको कौन नमस्कार नहीं करता ?

चन्द्रगुप्तका राज्यभण्डार खाली देखकर च... युक्ति-प्रयुक्तिसे उसे भर दिया।

उधर चन्द्रगुप्त राज्य शासनमें प्रवृत्त हुआ। ... ही मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंके शास्त्रादि सुनकर उनमें ... अनुराग हो चला। अतएव इस बातको ... चाणक्यने एकदिन एकान्तमें उससे कहा :—"वत्स तुम्हें ऐसे धर्मका पालन करना चाहिए, जिससे ... डूबी हुई आत्मा भी भवसागरसे पार होनेके लिए समर्थ बन सके! बाकी तो पाखण्डी लोगों और ... व्यक्तियोंने अपनी आजीविका चलानेके लिए ही ... प्रपञ्च रच दिये हैं; अतएव तुम्हें उनसे सदैव दूर ही रहना चाहिए।"

तब चन्द्रगुप्तने चाणक्यसे पूछा कि "आप मुझे किस धर्मकी आराधनाके लिए कहते हैं?"

"मैं तो जैनधर्मका अनन्य भक्त हूँ। अन्य सभी धर्मवालोंकी अपेक्षा मुझे तो इस धर्ममें कुछ अधिक

महत्त्व प्रतीत होता है। साथही मेरी कुल-परम्परामें भी यह जैनधर्म ही चला आ रहा है।"

"मेरा मन भी इस प्रकारके अच्छे धर्मका पालन करनेके लिए आतुर हो रहा है ; किन्तु किसी प्रकारसे थोड़ी परीक्षा करलेनेके बाद ही इसपर विश्वास करना ठीक होगा।"

"तुम्हारा कथन ठीक है ; क्योंकि अज्ञानरूप अन्धकारमें फँसे हुए कितने ही गुरु अनजान मल्लाहकी तरह स्वयं भी डूबते हैं और अपने भक्तोंको भी संसार सागरमें डूबा देते हैं।"

"हे पूज्य ! आपका कथन सत्य हो सकता है ; किन्तु उनलोगोंका ऐसा दुराचार युक्त आचरण आपने कभी प्रत्यक्ष भी देखा है, या केवल सुनी हुई बातों परसे ऐसा कहते हैं ?"

"उनके दुराचरणको मैं अच्छी तरह जानता हूँ ; किन्तु तुम्हें मैं वह प्रत्यक्ष भी दिखलाऊँगा।"

इसके बाद एकदिन चाणक्य महामन्त्रीने प्रत्येक पाखण्डी धर्मवालोंको अपने-अपने धर्मका परिचय देनेके लिए बुलवाया ; और उन सबको राजाके अन्तःपुरके निकट एकान्तमें बैठा दिया। साथही अन्तःपुरके आस-पास बुद्धिमान चाणक्यने पहले ही से बारीक चूना

बिछवा दिया था। अतः वे पाखण्डी एवं धर्मध्वजी, जब-तक चन्द्रगुप्त नहीं आया; तब-उठकर खिड़कियोंकी जालियों एवं झरोखोंमेंसे की स्त्रियोंको ही ताकते रहे। राजाके आने पर वे बगुलेकी तरह सरल मुद्रा बनाकर चुप-चाप बैठ गये। अपने-अपने धर्मका स्वरूप वर्णन करके वापस चले गये।

महान् बुद्धिशाली चाणक्यने राजाको उस धूलपर बने हुए पदचिह्न बताकर कहा कि :—"वत्स ये देखो, उन लोगोंके पैरोंके चिह्न! जबतक तुम नहीं आये थे; तबतक ये सब लम्पट धर्मध्वजी अन्तःपुरकी नारियोंको ही ताकते रहे। फलतः उनलोगोंकी यह दुराचारवृत्ति देखकर एकदम विरक्त होगया।

दूसरे दिन चाणक्यने उसी चूनेकी धूलको करवा कर श्वेताम्बर जैन मुनियोंको बुलवाया; उनको राजाके निजी भवनमें बैठाया। अतः राजाके आने तक उन महामुनियोंने अपने समयका स्वाध्याय आवश्यक क्रियाओंमें लीन होकर सदुपयोग किया और जितेन्द्रिय होकर मूर्तिवत् बैठे रहे। इसके बाद राजाके आनेपर उसे अपना धर्मोपदेश सुनाकर वे सब जैनमुनि इरियासमितिमें एकचित्त होकर अपने वासस्थान-

उपाश्रयमें चलेगये। उनके चले जानेके बाद चतुर चाणक्यने अन्तःपुरके गवाक्षके नीचेकी रेतीको ज्योंकीत्यों बिना किसी पदचिह्नके बतला कर चन्द्रगुप्तसे कहा कि :—"राजन्! ये मुनिलोग उन पाखण्डियोंकी तरह यहाँ नहीं आये थे; इसलिए उनके पदचिह्न रेतीपर कहीं भी नहीं दिखाई देतेथे। शिववधुकी उत्कण्ठा-वाले ये महामुनि ऐसी स्त्रियोंको तृणके समान समझते हैं।" इसप्रकार चाणक्यके द्वारा प्रत्यक्ष परीक्षा करवा देनेसे राजा जैनधर्मका अनुरागी बनकर पञ्चमहाव्रत पालनेवालोंको गुरु मानने लगा और पाखण्डियोंसे वह विरक्त होगया।

एकदिन चाणक्यने विचार किया कि, 'कोई अञ्जन सिद्ध पुरुष अदृश्य रहकर राजाको विष देकर समाप्त न करदे, इसलिए चन्द्रगुप्तको धीरे-धीरे जहर खिलानेकी साधना कराई जाय, जिससे कि वह जहर इसके लिए रसायन जैसा सिद्ध हो सके और जहरके विकारका उस-पर कोई प्रभाव न होने पावे।' इसी निश्चयके अनुसार चाणक्यने राजाको प्रतिदिन अधिकाधिक परिमाणमें जहर खिलाना आरम्भ किया।

इन्हीं दिनोंमें चन्द्रगुप्तकी धारिणी नामक पटरानी गर्भवती हुई और उसने राजाके साथ बैठकर भोजन

करनेकी अभिलाषा की ; किन्तु उसका यह मनोरथ सिद्ध न होनेसे चन्द्रमाकी कलाके समान वह दिनोंदिन क्षीण होनेलगी। अतएव एकदिन राजाने उससे पूछा :—"हे प्रिये ! किस दुःखके कारण तुम प्रतिदिन कृष्णपक्षके चन्द्रमाकी तरह क्षीण होती जा रही हो ?"

"स्वामिन् ! मेरी दुर्बलताका कारण एक 'दोहद' पूर्ण न हो पाना ही है !"

"वह दोहद क्या है ?"

"आपके साथ बैठकर एकही थालीमें भोजन करना!"

यह कौन बड़ी बात है ! मैं कलही तुम्हारी इस इच्छाको पूर्ण कर दूँगा !"

जब चाणक्यको इस बातका पता चला ; तो उसने राजासे कह दिया कि "तुम अपना भोजन, रानीको भूलकर भी मत देना ; क्योंकि उसमें जहर मिला रहता है।"

किन्तु रानीके बारम्बार भोजन माँगनेपर एकदिन राजाने चाणक्यके आनेके पहलेही अपने भोजनमेंसे एक निवाला उसे देदिया और ज्योंही वह उसे खाने लगी कि त्योंही चाणक्य वहाँ आ गया। उसे वह निवाला मुहमें रखते देख उसने कहा ; "अरे ! अपनी आत्माकी वैरिणी, तूने यह क्या अनर्थ कर दिया ?'

और वत्स चन्द्रगुप्त ! तुमने भी मेरी बातपर ध्यान नहीं दिया !"

किन्तु जब सर्वनाश होनेका समय आता है, तब बुद्धिमान पुरुष आधेका नाश होते देखकर शेष आधेको बचा लेते हैं। अतएव चाणक्यने विचार किया कि, इस जहरसे रानी और गर्भ दोनोंही नष्ट हो जायँगे ; अतएव इन दोनोंमेंसे किसी एकको तो अवश्य बचाना चाहिए ! यह सोचते हुए तुरन्त ही उसने तीक्ष्ण शस्त्रसे रानीका पेट चीरकर उसमेंसे पुत्ररत्नको इसप्रकार निकाल लिया, जिसप्रकार कि रोहणाचलकी भूमिमेंसे रत्न निकाले जाते हैं। इसके बाद उस गर्भरूप पुत्रको घृत आदिमें रखकर उसके शेष दिन पूरे किये ; किन्तु बेचारी धारिणी तो इस संसारसे चल बसी।

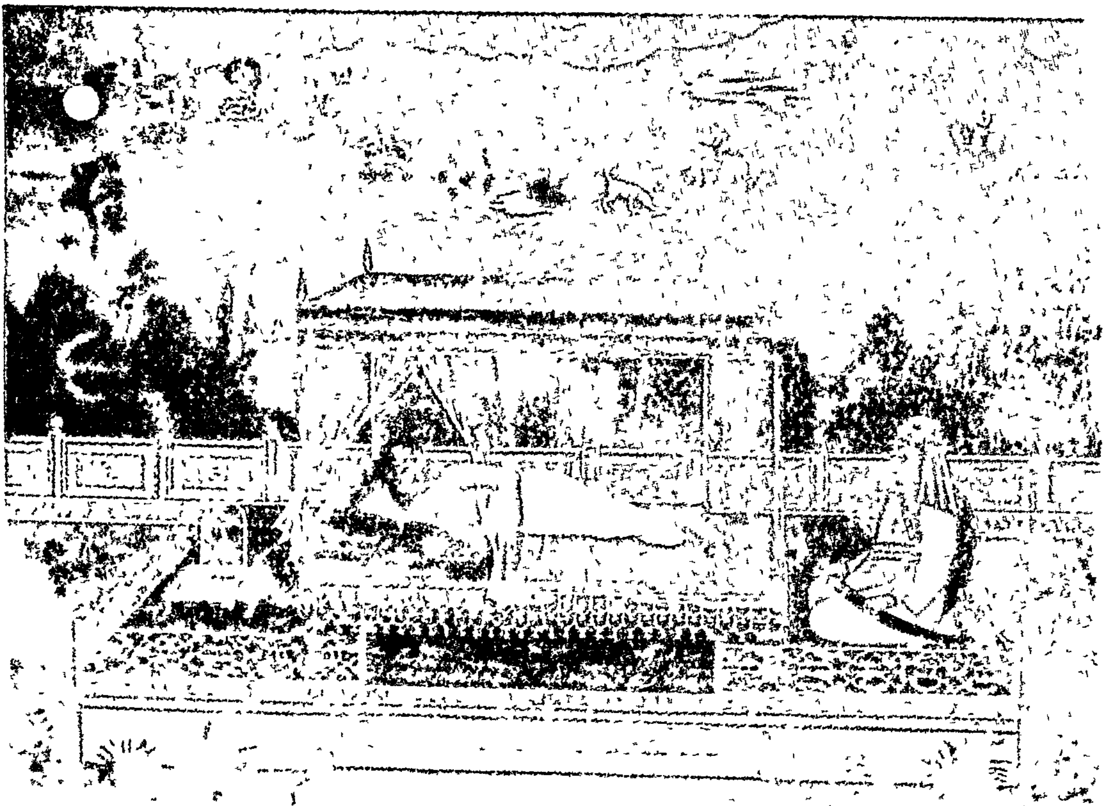
फिर भी दैवयोगसे जब वह विषमिश्रित भोजनकर रही थी ; तब उस विषकी एक बून्द बालकके मस्तकपर टपक पड़ी थी। इससे जिस प्रकार ऊसर भूमिमें घास या अन्न नहीं उत्पन्न होता, उसी प्रकार उस बालकके मस्तकपर उतने भागमें बाल नहीं उगने पाये और इसीसे उसका नाम 'बिन्दुसार' रखा गया। अन्ततः धाय माताके द्वारा लालन-पालन होकर बिन्दुसार बड़ा होने लगा।

इन सब घटनाओंसे बहुत पहले नन्दराजाके ''
ग्रीसदेशके महान् सिकन्दरने ईस्वी सन् ३२७ वर्ष
भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी। उस समय उसने
पौरस राजाको पराजित कर दिया था। इसके
वह वहींसे वापस लौट गया। अतः ईस्वी सन् पूर्व ३२५
जब सिकन्दरकी मृत्यु हुई तो उसका सेनापति
सीरियाका राजा बना और उसने ईस्वी सन् पूर्व ३१२
२८० तक राज्य किया। इतिहासकी गणनाके अनुस
चन्द्रगुप्त ईस्वी सन् पूर्व ३१६ में गद्दीपर बैठा और २६
तक उसने राज्य किया।

लगभग ईस्वी सन् पूर्व ३१२में सिल्यूकसने
पर चढ़ाई की और दोनोंके बीच भयङ्कर युद्ध हुआ
उसमें सिल्यूकसके पराजित होजानेसे चन्द्रगुप्तने पञ्जाब,
सिन्ध और वर्तमान अफगानिस्तान एवं
तकका प्रदेश हस्तगत कर उसके साथ सन्धि करली।
साथही सिल्यूकसने अपनी पुत्री को चन्द्रगुप्तके स
ब्याह दी। इसप्रकार चन्द्रगुप्तके साथ हुए अनुभवसे
सावधान होकर यवनोंने उस समय भारतपर आक्रमण
करनेका विचार त्याग दिया।

इसप्रकार चन्द्रगुप्तका राज्य हिन्दुकुश, हिमालय,
ब्रह्मपुत्र और विन्ध्यपर्वततक फैल गया था। गुजरात और

राजा सम्प्रति



सोरठपर भी उसीकी सत्ता चल रही थी। जूनागढ़का 'सुदर्शन' सरोवर भी उसीके समयमें बनवाया गया था। इतने बड़े राज्य की रक्षा करनेके लिए उसके पास सेना भी बहुत बड़ी थी। छहलाख पैदल, तीस हजार घुड़सवार और नौ हजार गज-हाथीदल आदिके रूपमें उसकी चतुरंगिनी सेना थी। महापद्म नन्दके समयमें तो आठ हजार रथ भी थे। सम्भवतः चन्द्रगुप्तके समयमें भी वे रहे हों। उसके समयमें तक्षशिला, अयोध्या श्रावस्ती, वैशाली, पाटलीपुत्र, नालन्दा, गया, राजगृह, ताम्रलिप्ति, उज्जयिनी, कौसाम्बी, और वाराणसी आदि नगर विद्या एवं व्यापार-व्यवसायके लिए प्रसिद्ध थे।

जैनधर्मके पालन करनेमें जागृत चन्द्रगुप्त राजा पाक्षिक चतुर्दशीके दिन रातके समय पौषध लेकर ज्ञान-ध्यानमें लीन था। उसी बीच तीसरी पोरीसीमें सोते-सोते राजाने सोलह स्वप्न देखे। अतः जागृत होनेपर राजा स्वप्नके सम्बन्धमें विचार करने लगा और सूर्योदय होनेपर राजाने पौषध पारण किया।

उसी समय युगप्रधान श्रीयशोभद्रसूरिके पट्टधर और संभूतिविजयसूरिके अनुजबन्धु-गुरुभाई चौदहपूर्वके ज्ञाता श्रुतधर भद्रबाहुस्वामी पाँचसौ शिष्योंके परिवार सहित विचरण करते हुए पाटलीपुत्र नगरके उद्यानमें पधारे।

भद्रबाहुस्वामीका क्षितिप्रतिष्ठान पुरमें श्रीमहावीर संवत् ९४ में जन्म हुआ और संवत् १३९ में उन्होंने दीक्षा ली। संवत् १५६ में संभूतिविजयसूरिके स्वर्गवासके पश्चात् ये युगप्रधान पट्टधर हुए।

मगधराज चन्द्रगुप्त चाणक्यके साथ बड़ेही आडम्बरपूर्वक कोणिक अजातशत्रुकी तरह भद्रबाहुस्वामीको वन्दना करनेके लिए पहुँचा और पाँच अभिगमका उपयोग रखते हुए राजा सूरीश्वरको वन्दन कर देशना सुननेके लिए बैठा। देशनाके अन्तमें समस्त संघके समक्ष राजाने अपने देखे हुए सोलह स्वप्नोंका वर्णन कर उनका रहस्य जाननेकी इच्छा प्रकट की, और पूछा कि "हे भगवन्! इन स्वप्नोंका क्या फल होगा?"

राजाके वचन सुनकर श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामीने संघके समक्ष उन स्वप्नोंका आशय इसप्रकार कह सुनाया "हे राजन्! तुम्हें प्रथमतः कल्पवृक्षकी शाखा टूटनेका स्वप्न दिखाई दिया, इसका फल यह है कि आजसे अब कोई भी राजा चारित्र ग्रहण नहीं करेगा। दूसरे स्वप्नमें तुमने सूर्यको अस्त होते हुए देखा है, इसका फल यह है कि अब केवलज्ञान (श्रुत-केवल चौदह पूर्व) विच्छेद होजायगा। तीसरे स्वप्नमें चन्द्रमामें छिद्र दिखाई देनेके फल स्वरूप अब महावीर स्वामीके द्वारा प्ररूपित

धर्ममेंसे अनेक शाखाएँ निकलेंगी। चौथे स्वप्नमें जो भूतोंको नाचते हुए देखा है, उसका फल अन्य दर्शनवाले कुमति-पुरुष भूतोंकी तरह नाचेंगे, और अपने मतकी वृद्धि करनेमें सफल होंगे। पाँचवे स्वप्नमें तुमने बारह फनवाला जो कृष्णसर्प देखा है, उसके फल स्वरूप बारह वर्षका दुर्भिक्ष-अकाल पड़ेगा। (उनके समयमें वह १२ वर्षका दुर्भिक्ष पड़ा भी था।) छठे स्वप्नमें आता हुआ विमान वापस लौट जानेका फल यह है कि अब चारण लब्धिवन्त मुनि भरतक्षेत्र और ऐरवतक्षेत्रमें नहीं आवेंगे। सातवें स्वप्नमें कमलको कूड़ेके ढेरपर खिला हुआ देखनेके फल स्वरूप अब जैनधर्म वैश्यके हाथमें चला जायगा, और इससे इसका महत्त्व घट जायगा। आठवें स्वप्नमें खद्योत्-जुगनूको प्रकाश करते देखनेका फल यह होगा कि, अबसे आगे चलकर राजधर्मरूपी जैनधर्मका प्रभाव कम हो जायगा और खद्योतके समान पाखण्डी धर्मोंका उदय होगा। नवम स्वप्नमें तुमने जो बिना जलके सूखा हुआ विशाल सरोवर देखा है और उसके दक्षिण भागमें जो थोड़ासा जल भरा हुआ दिखाई दिया है; इसका फल यह है कि जहाँ महावीर स्वामीके पञ्चकल्याणक हुए हैं; वहाँ धर्मकी हानि होगी, किन्तु दक्षिण दिशामें धर्मकी प्रवृत्ति होगी। दसवें स्वप्नमें जो सोनेकी थालीमें

कुत्तेको क्षीरका भोजन करते देखा है ; उसके ... उत्तम जनोंकी सम्पत्ति नीचकुलमें चली जायगी, औ वे पूर्वावस्थावाले दयाधर्मको छोड़कर हिंसामय ... माननेवाले बन जायँगे। ग्यारहमें स्वप्नमें हाथीके वन्दरको बैठे हुए देखनेका फल यह होगा कि ... एवं राजालोग प्रजा-पीड़क बन जायँगे और हीनकुलके लोग ही राजा बनेंगे। इक्ष्वाकु या ... वंश अब कोई राजा उत्पन्न नहीं होगा। बारहवें ... समुद्रको मर्यादा छोड़ते हुए देखा है, इसके ... राजालोग उलटे-मार्गसे चलनेवाले और क्षत्रिय ... घाती होंगे। तेरहवें स्वप्नमें बड़े रथमें छोटासा ... जुता हुआ देखनेका फल यह होगा कि प्रायः कोई वैराग्यभावसे दीक्षा ग्रहण नहीं करेगा। चौदहवें ... बहुमूल्य रत्नको तेजहीन देखनेका आशय यह है कि ... और ऐरवत क्षेत्रमें साधुलोग कलहकारी एवं मायावी तथ दूसरोंको दुःख देनेवाले और अविवेकी होंगे। पन्द्रह स्वप्नमें राजकुमारको बैलपर बैठा हुआ देखनेके ... अब राजकुमार राज्यभ्रष्ट होंगे। सोलहवें ... काले रङ्गके दो हाथियोंको युद्ध करते देखा है, इसका ... यह होगा कि अब मेघ-बादल कम होंगे। पुत्र-पिताकी सेवा नहीं करेंगे। शिष्य लोग अविनयी बनकर गुरुकी

हितशिक्षाको नहीं सुनगे। भाई-भाई परस्पर लड़नेवाले होंगे।" इस प्रकार सोलह स्वप्नोंका फल भद्रबाहु स्वामीने कह सुनाया। सभाजन भावीपरिस्थिति सुनकर आश्चर्य चकित होगये। अन्तमें राजा यह विचार करता हुआ कि-"जिनेश्वरका वचन अन्यथा नहीं हो सकता। यह विषम 'आरा' जगत्‌के लिए दुःखदायी है।" गुरुकी वन्दना कर नगरकी ओर चल दिया। पर्षदा भी अपने-अपने स्थानमें चली गई। इसके बाद भद्रबाहु स्वामी भी अन्यत्र विहार कर गये। अन्तमें वीर संवत् १७०में स्थूलिभद्रको अपने पाटपर स्थापित कर भद्रबाहु स्वामी स्वर्गवासी होगये।

दसवाँ परिच्छेद

भूलका परिणाम

—:०:—

चन्द्रगुप्तको भारतका साम्राज्य भोगते हुए अनेक वर्ष व्यतीत हो गये। इस बीच उसके महा आमात्य चाणक्यने सुबन्धु नामके ब्राह्मणको उसकी कार्य-कुशलता एवं बुद्धिमत्ता (दाक्षिण्य) देखकर चन्द्रगुप्तका प्रधान

मन्त्री बनाया, क्योंकि चाणक्य भी राज्य-
उपभोग करते हुए वृद्ध होगया था। अब उसका
आत्म-कल्याणकी ओर प्रेरित हो चला था। अ
उसने सुबन्धुको महामन्त्री बनाया; किन्तु सु
मन्त्री-पद पातेही चाणक्यके विरुद्ध षड़यन्त्र आरम्भ
दिया। अर्थात् स्वतन्त्र मन्त्रीपद पानेके लिए
चाणक्यके प्रति ईर्षा रखते हुए उसके छिद्र ढूँढ़ने ल
साथही सम्राट् चन्द्रगुप्तको भी वह कृतघ्न ब्राह्मण
सीधी बातें समझाने लगा; किन्तु चन्द्रगुप्तने
एक भी बातपर ध्यान नहीं दिया। अतएव वह
प्रतीक्षा करता हुआ कालक्षेप करने लगा।

चन्द्रगुप्तके शासनकालमें ही मध्य एशियाके
सेल्युकसके साथ सन्धि होनेके पश्चात् उसकी
मेगस्थनीज नामका एक एलची-राजदूत
दरबारमें रहने लगा। इस राजदूतका समय ई.
सन् पूर्व ३०६ से २९८ तकका था अर्थात् वह आठ
तक चन्द्रगुप्तके दरबारमें रहा।

चन्द्रगुप्तके समयमें पटना नगरकी लम्बाई नौ
थी और चौड़ाई डेढ़ मील; तथा नगरके चारों
लकड़ीकी मजबूत दीवार बनी हुई थी। उस दीवा
चारों ओर स्थान-स्थानपर तीर चलानेके लिए छिद्र

हुए थे। साथही नगरकी रक्षाके लिए दीवारके नीचे चारों ओर खाईमें पानी भरा रहता था।

इतिहासके हिसाबसे चन्द्रगुप्तने ईस्वी सन् पूर्व ३१६ में पाटलीपुत्रमें राजगद्दी स्थापित की और ईस्वी सन् पूर्व २९२ तक शासन किया।

इसके बाद चन्द्रगुप्त वैराग्यवृत्तिसे चारित्र ग्रहण कर यथासमय स्वर्गलोकमें गया। उसके बाद उसीका पुत्र बिन्दुसार गद्दीपर बैठा। यह भी चाणक्यको अपने पिताके समान ही मानता था। उस समय भी सुबन्धुने चाणक्यके विरुद्ध प्रपञ्च रचते हुए एकदिन एकान्तमें बिन्दुसारसे कहा कि :—"स्वामिन्! यद्यपि आपने मुझे मन्त्रीपद पर नियुक्त नहीं किया है, फिर भी आपके हित-चिन्तनकी भावना सदा मेरे मनमें रहती ही है; क्योंकि कुलवान पुरुषोंकी यही रीति है कि अपने स्वामीके लिए सदैव कल्याण कामना करते रहें। अतः आप सदैव सावधानीके साथ यह स्मरण रखें कि चाणक्य महामन्त्रीश्वर अत्यन्त घातकी और अविश्वसनीय है।"

सुबन्धुके इन शब्दोंको सुनतेही राजा चौंक पड़ा और बोला "चुप-चुप! मूर्ख! तू यह क्या कह रहा है?"

"मैं पहले ही जानता था कि मेरे वचन पर आपको

विश्वास नहीं होगा ! किन्तु महाराज ! कुछ ठहरें । मैं आपको इस बातका पूरा विश्वास करा दूँ । निमकहराम सुबन्धुने अपना कपटजाल बिछाते कहा । आज संसारमें उपकारका बदला चुकानेवालोंकी कमी नहीं है ।"

"तू किसप्रकार विश्वास करा सकता है !" सारने तिरस्कारयुक्त शब्दोंमें पूछा ।

"इस पापी चाणक्यने छुरी मारकर आपकी की हत्या की है । इसीलिए आप भी व अपनी रक्षा करते रहें ।"

"मेरी माताको मार डालनेका प्रमाण क्या है राजाने सन्देहपूर्वक पूछा ।

"यह तो आप अपनी धायमातासे ही पूछ ज उस अधम सुबन्धुने राजाके कानमें विष-डालनेमें कोर-कसर नहीं रक्खी ।"

बिन्दुसारने तुरन्तही धायमाताको बुलवाकर तो उसने भी इस बातका समर्थन किया । अतः सार एकदम चाणक्यके प्रति क्रुद्ध हो उठा ।

दूसरे दिन सवेरे जब चाणक्य राज-सभामें तो राजाने उसकी ओरसे मुँह मोड़ लिया । तत्काल समझ लिया कि 'अवश्य ही किसी दुष्टने राज

कान भर दिये हैं।' वह तुरन्त ही उठकर अपने घर चला गया। वहाँ जानेपर पता लगा कि 'यह सब दुष्ट 'सुबन्धु' की ही करतूत है।' अतएव उसी समय उसके मनमें वैराग्यभावना उत्पन्न हुई। वह सोचने लगा कि "अहो! इस सुबन्धुने ही बाल-राजाको भरमाया है! अरे, इसीको मैंने पहले प्रधान मन्त्री-पद पर नियुक्त कराया था, किन्तु मेरे इस उपकारका बदला इसने अपनी जातिके अनुरूपही चुकाया है। संसारमें कोई किसीका नहीं। मैं भी अब राजचिन्ता करते-करते वृद्ध हो गया हूँ, और अब मुझे जीना ही कितने दिन है? अतएव अब तो मुझे आत्मकल्याणके लिए कुछ परलोककी ओर तैयारी करनी चाहिये।" जन्मकालसे उत्तम जैनधर्म प्राप्त हो जानेपर भी, राज्य व्यवसायमें फँसे रहनेके कारण मैंने इसका भली-भाँति पालन नहीं किया। इसीलिए विधाताने मुझे इस संकेत-द्वारा सावधान किया है। अतएव इस बालराजाको अपनी हितैषिताका विश्वास कराते हुए मुझे कार्यसे मुक्त हो जानाही उचित है। अब संसारमें मेरी ऐसी कौनसी इच्छा अधूरी है, जिसके लिए मैं ऐसा अपूर्व अवसर पाकर भी उसे व्यर्थ गवाँ दूँ? यदि मैं इसे योंही चला जाने दूँ, तो मुझ जैसा मूर्ख और कौन हो सकता है? अतएव इस समय

तो मुझे जगाकर सुबन्धुने मित्रकाही काम किया। फिर भी अपनी बुद्धिके अनुसार मैं इसका प्रतिकार अवश्य करूँगा। मैं ऐसा उपाय करूँगा कि जगत्में जीवित रहते हुए भी अपना कल्याण कर और मन्त्री-पद्से भी मुक्त हो जाय।"

इस प्रकार विचार करके महान् उग्रबुद्धिवाले चाणक्यने मन्त्रादिकसे मन्त्रित कर भोजपत्र पर यन्त्र लिखा और उसे एक सुन्दर डिबियामें रखकर लाखसे भलीभाँति बन्द करनेके बाद एक सन्दूकमें दिया। साथही उस सन्दूक पर सौ ताले लगाते 'सर्वस्व' के रूपमें मानकर अपने निवास-स्थानके भ रखवा दिया।

इसके बाद उस त्यागव्रती मनस्वी चाणक्यने अ धन सातों क्षेत्रमें व्यय करना आरम्भ किया। एवं सम्बन्धी जनों पर उनकी योग्यताके अनुसार उप किये। निराश्रित दीन और दरिद्रियोंको दया दान देकर तथा पारिवारिक जनोंकी भी उचित व्य कर देनेके पश्चात् उस महाविरागी चाणक्यने नगर बाहर एक सूखे गोवरके ढेरके पास आकर वहीं और बैठते हुए जीवनके कर्त्तव्यका प्रतिक्रमण आरम्भ किया। किये हुए पापोंके लिये पश्चात्ताप

उसने सभी पापस्थानकोंको विस्मृत कर दिया। चार शरण अङ्गिकार करते हुए चौरासी लाख जीवायोंनीके साथ खमतखामणा करके कायाके विसर्ज्जनके लिए अनशन आरम्भ कर दिया।

चाणक्यका यह समाचार सुनते ही धायमाताने दौड़कर राजाको सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा भी वह सब सुनकर विचार में पड़ गया। उसे सावधान करते हुए धायमाताने कहा :—"वत्स! तुमने जीवन-दान देनेवाले और राज्य दिलानेवाले उस महामन्त्री चाणक्यका अपमान कैसे कर दिया?"

"केवल तेरे कहनेसे ही! क्योंकि तूने कहा था कि मेरी माताको इसने मार डाला है।"

"अरे भोले राजा! तूने अर्थका अनर्थ कर डाला! उसने तो तुझे मरनेसे बचाया है; क्योंकि तेरी माताने जब कि तू गर्भमें था; तब एक ऐसा अकार्य किया था; जिससे तुम दोनोंकी ही मृत्यु हो जाती; किन्तु चतुर चाणक्यकी कार्य दक्षतासे तू बचगया और तेरी माता मर गई।" इस प्रकार धायमाताने सच्चा विवरण कह सुनाया।

राजा इस यथार्थ घटनाको जानकर बहुत पछताया। साथ ही अपनेको दुर्बुद्धि-प्रदान करनेवाले सुबन्धु पर

अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। इसपर, धायमाताने पुनः कि—"वत्स! उसने तो उलटा तुझे राज्य ... और तेरे हितके लिए ही वह संसारमें रहा भी। ... उसे तेरे राज्यसे प्रयोजन ही क्या था? तेरे ... उसीने राज्य दिलाया था। फिर भला उसे तेरे ... तृष्णा ही कैसे हो सकती है?" धायके इन ...चन सुनकर राजा एकदम दौड़कर चाणक्यके पास पहुँचा। साथही उसके अन्य सभी मन्त्री एवं अन्तः परिजन तथा नागरिक उसके दर्शनार्थ वहाँ पहुँचे। राजाने उसके पैरोंमें पड़कर अपने ... लिए क्षमा माँगते हुए कहा :—"हे तात! मैंने ... वश आपकी अवज्ञा की है, अतएव आप मेरा ... क्षमा कीजिये और महलमें चलकर अपना राज-... चलाइये। मुझे एकदम त्याग न दीजिये। बालक पिताकी गोदमें बैठकर विष्टा भी करदे; तो इससे उसे त्याग नहीं देता। अतएव आपकी तो ... कृपादृष्टि ही रहनी चाहिए। आप राज-भवनमें ... लौट चलिये। अब मैं आपका सदा ... चना रहूँगा।"

बालककी भाँति निर्दोष वचन बोलते हुए ... सारसे चाणक्यने कहा :—"हे वत्स! अब इस ...

लाभ नहीं ; क्योंकि अब मैं अपने शरीरके प्रति भी निर्मोही हो गया हूँ। ऐसी दशामें मुझे राज्यसे क्या प्रयोजन हो सकता है? मैंने तो अनशन आरम्भ कर दिया है।"

"छिः! मुझे धिक्कार है कि ऐसे महापुरुषके प्रति मैंने दुर्बुद्धिपूर्वक अवज्ञा की।" इसप्रकार कहते हुए राजाने बारम्बार चाणक्यसे क्षमा याचना की ; किन्तु जिस प्रकार समुद्र अपनी मर्यादासे विचलित नहीं होता, उसी प्रकार चाणक्यको भी अपनी प्रतिज्ञासे चलायमान न होते देखकर राजा बालकके समान रोता एवं पश्चात्ताप करता हुआ नगरको लौट गया। अन्य मन्त्रीगण एवं अन्तःपुरके लोग और नागरिक जन भी उस महापुरुषके दर्शनकर पाप-मलका क्षालन करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये।

राजाके कोपसे सुबन्धु निर्बल लताके समान काँपता हुआ उसके पैरोंमें गिरकर क्षमा याचना करने लगा। "हे देव! मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मैंने पूरा वृत्तान्त जाने बिना ही चाणक्यको दूषित बना दिया था। अतएव आप आज्ञा दें तो मैं उनसे भी क्षमा माँगू?"

इसप्रकार छल-प्रपञ्चपूर्वक राजासे आज्ञा लेकर सुबन्धु

चाणक्यके पास पहुँचा और मायाभावसे उससे क्ष माँगी ; किन्तु साथही मनमें यह विचार भी कि "यदि चाणक्य वापस राज-सभामें लौट आया सचमुच ही मेरा परिवार सहित समूल उच्छेद कर देगा अतएव मैं ही इस कण्टकको क्यों न नष्ट कर दूँ ?"

इस मलीन विचारके कारण उसने फिर राजा पास आकर आडम्बर सहित चाणक्यकी पूजा करने लिए आज्ञा माँगते हुए कहा :—"हे भगवन्! मैंने का अपराध किया है, अतः उसके प्रायश्चित्तके लिये उसकी पूजा करना चाहता हूँ।"

इसप्रकार राजासे दूसरीबार आज्ञा प्राप्तकर सुबन्धुने चाणक्यके पास आकर वाह्याडम्बर उसकी पूजा आरम्भ की। इसके बाद सायंकाल पूजा करनेके पश्चात् वह उस सूखे गोबरमें धूपका अङ्गा डाल कर चला गया।

वायुके जोरसे उस सूखे गोबरमें वह अङ्गारा धुंधु कर जल उठा। अतएव उस अग्निसे चाणक्य दग्ध हो लगा। फिर भी अपने जीवनरूपमें उसका शुद्धभाव अखण्डित ही रहा। उसकी शुभभावना वृद्धिपाने लगी "हे जीव! विष्ठा, मल-मूत्र एवं पसीने आदिसे भरे इस शरीरके प्रति तू मोह-ममता न कर! क्योंकि

शरीर तो चाहे जब एकबार अग्निमें जलने ही वाला है। यह कोई आत्माके साथ तो जानेवाला है नहीं, क्योंकि आत्माके साथ तो उसके किये हुए शुभाशुभ कर्म ही जाते हैं! अतएव पूर्वमें किये हुए दुष्कर्मोंको इसी समय भोगकर उनसे मुक्त हो जा और समभावमें रह! क्योंकि इस समय हिंसा, मृषावाद, चोरी, मैथुन और परिग्रह तथा चारों प्रकारके आहारका तूने तीनों प्रकारसे— मन, वचन और कायासे पच्चक्खाण किया है। कर्मोंका क्षय करवानेमें तो ये शत्रु ही मित्रके समान उपकारी सिद्ध होते हैं। इसलिए मैं उन सबसे क्षमा माँगता हूँ और वे भी मुझे क्षमा करें! सभी जीवोंके साथ मेरा मैत्रीभाव है और किसीसे मेरा वैर या शत्रुता नहीं। मेरे द्वारा हुई अनेक जीव-हिंसाओं तथा अपराधोंको केवलज्ञानी प्रभु ही जानते हैं। उन सब अथवा सब अपराधोंकी अरिहन्त प्रभुओंकी साक्षी-पूर्वक मैं आलोचना करता हूँ। इस अज्ञानी जीवके द्वारा इस भव अथवा परभवोंमें किये हुए समस्त अपराधोंको मैं मिथ्या-दुष्कृत् देता हूँ।" इस प्रकार अपने दुष्कृतोंकी निन्दा करता एवं किये हुए सुकृतोंका अनुमोदन करता हुआ, मोक्षपुरीके आधार-रूप अरिहन्त आदि चार शरणोंको वह वारम्बार अङ्गिकार करने लगा। पञ्चपर-

मेष्ठिमन्त्रका मनमें स्मरण करता हुआ चाणक्य सु
द्वारा लगाई हुई अग्निके उपसर्गसे दग्ध होकर स:
मृत्युको प्राप्त हुआ। इसके बाद वह स्वर्गलोकमें
मन्त्री-पदपर प्रतिष्ठित हुआ।

चाणक्यकी मृत्युसे राजा-प्रजामें शोक व्याप्त गया। कई दिनों तक राजा उसके गुणोंका स्मरण बालककी तरह नेत्रोंसे अश्रु बहाता रहा। केवल सुबन्धु ही इससे प्रसन्न हो रहा था; क्योंकि अब एक विशाल राज्यका महामन्त्री बन गया था। त
उसने चाणक्यके धन-सम्पत्तिकी आशासे उसका म
रहनेके लिए माँग लिया और राजाने भी स्वीकृति
अन्ततः जब वह उस सुनसान घरमें पहुँचा, तो
एक ही कोठरीको उसने मजबूतीसे बन्द देखा।

अतएव उसी कोठरीमें चाणक्यका द्रव्य रखा हु
समझ कर उसने ताला खोला; तो उसमें एक स
रखी हुई दिखाई दी। उस सौ तालेवाली पेटीको
कर उसने विचार किया कि 'अवश्य ही इस
अमूल्यरत्न होंगे।' इसके बाद उसने उन सौ तालों
तोड़कर जब सन्दूक खोली तो भीतर
वस्तुओंसे भरा हुआ एक डिब्बा देखा। उसने
"अवश्य ही इस डिब्बेमें रत्न रखे हुए हैं, अन्यथा

इतनी सार-सम्हाल क्यों की जाती ?' इसके बाद जैसे ही उसने श्रीफलके समान उस डिब्बेको फोड़ा तो उसमें लोकोत्तर दिव्यगन्धने उसे मुग्ध कर दिया और प्रिय मधुकरके समान उसने उस सुगन्धको सूंघा ; किन्तु उसे सूंघते ही वह आश्चर्य चकित हो मस्तक हिलाने लगा। इस प्रकार बारम्बार सूंघनेसे हर्षोन्मत्त होकर जब सुबन्धुकी दृष्टि उस भोजपत्रपर पड़ी ; तो उसे पढ़तेही उसके अधर-होट बन्द होगये। उस भोजपत्र पर उसने क्या पढ़ा कि जिससे उसका मन विषाद मग्न होगया ? वह जीवन्मृत जैसा होगया ? उसमें लिखा हुआ था कि "इस सुगन्धी पदाथको सूंघनेके बाद जो कोई बुद्धिमान् मनुष्य ठण्डा जल पियेगा, षट्रस भोजन करेगा, मनोहर गान सुनेगा, विलास युक्त स्त्रीसंगकी इच्छा करेगा अथवा पुरुषादिकी सुगन्ध ग्रहण करेगा, अथवा नाटक देखेगा ; अर्थात् इन पाँच विषयोंमेंसे एकका भी उपभोग करेगा, उसकी तुरन्त मृत्यु हो जायगी।" यह सब पढ़ते ही सुबन्धु अवाक् रह गया ! वह हा ! हा ! करके चिल्लाने लगा। उसे निश्चय हो गया कि 'बुद्धि-निधान चाणक्यका यह प्रयोग कभी वृथा नहीं हो सकता। उसने एक पुरुषको वह सुगन्ध सूंघाई और विषयोमें प्रवृत्त करतेही उसकी मृत्यु होगई !

उसने अनुभव किया कि वह अब जीवन्मृतके ही समा
है। मृत्युका दूत उसके सामने खड़ा रहकर चुनौती
रहा था। इसप्रकार वह महामन्त्री होते हुए भी
समय तो संसारमें एकदम निराधार हो गया था।
आज चाणक्यकी युक्ति सफल हो चुकी थी। उसने
जीतेजी ही मार डाला था। अतः उसके किये हुए पा
कर्मोंका फल यहीं मिल गया था। जिस
पदके लिए उसने चाणक्यरूप काँटेको दूर किया
वही काँटा उसके शरीरमें हमेशाके लिए चुभ गया था
थोड़ी ही देरमें वह मरने ही वाला था। इस
सदृश मधुर संसारमें वह अब थोड़ी ही देरका मेहमा
था। भला, ठण्डा पानी पिये बिना कैसे काम
सकता है? किन्तु पानी पीते ही उसका जीवन समा
हो जानेको था। अतएव वह चिल्लाने लगा "हाय
अब मैं क्या करूँ? चाणक्यने जीवित रहनेका भी
उपाय लिखा है या केवल मृत्युका ही सन्देश
गया है?" उसने भोजपत्र उठाकर आगे पढ़ना आरम्भ
किया तो उसमें लिखाथा कि "यदि वह मनुष्य जीवित
रहना ही चाहे; तो उसे मस्तक और डाढ़ी मुंडवाकर
भिक्षावृत्तिमें जो कुछ मिले, उसीसे सन्तोष करे एवं
साधुके वस्त्र पहनकर स्नान रहित रहते हुए मुनिके

आचरणसे रहना होगा। ऐसा करने परही वह जीवित रह सकेगा।" इन शब्दोंको पढ़कर इच्छा न रहते हुए भी केवल जीवितव्यकी लालसासे उसने यति-मुनि बननेका विचार किया। वह पश्चात्ताप करते हुए कहने लगा—"धिक्कार है मेरी बुद्धिको! वास्तवमें केवल चाणक्य ही एकमात्र बुद्धिमान था; जिसने कि मरते-मरते भी मुझे इसप्रकार जीवन्मृत बना दिया।" अनन्तर भाव-रहित नटके समान सुबन्धु, मुनि बनकर पृथ्वीपर विचरने लगा। वह अभवी पापिष्ट सुबन्धु अनन्तीबार संसारमें भटकता रहेगा।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

महान् अशोक

—:०:—

सम्राट् चन्द्रगुप्तका प्राप्त किया हुआ विशाल-राज्य बिन्दुसारने व्यवस्था पूर्वक सम्हालकर रक्खा। इसका शासनकाल शान्तिपूर्ण रहा। दीर्घकाल पर्यन्त चन्द्रगुप्तने जिस राज्यकी जड़ अच्छी तरह जमादी थी, उसका सुफल बिन्दुसारने भली-भाँति उपभोग किय

इतिहासकी दृष्टिसे ईस्वीसन् पूर्व २९२में बिन्दुसार
बैठा किन्तु जैन इतिहासकी दृष्टिसे वह श्रीमहावीरके
२३५ वर्षमें बिन्दुसार मगधेश्वर हुआ। ईस्वी सन् पूर्व २
तक भारतका साम्राज्य बिन्दुसारके हाथमें रहा। च
गुप्तके समयमें जिस प्रकार उसके पुत्र अन्य प्रान्तों
सूबा-शासक थे; उसी प्रकार बिन्दुसारके पुत्र भी ब
बड़े प्रान्तोंके सूबा नियुक्त किये गये थे। बिन्दु
अनेक पुत्र थे। उनमें अशोक नामका भी एक पुत्र था
अशोक कुरूप होते हुए भी वीरपुरुष था। बाल्यावस्थ
उपद्रवी होनेके कारण पिताको वह विशेष प्रिय
था। इसीलिए उसे सुदूर उज्जैन-मालवाकी सू
सौंपी गई थी। इसके बाद भी उसे उत्तरमें बहुत
तक्षशिला भी भेज दिया गया था; किन्तु उस वी
श्रेष्ठ अशोकने तक्षशिला जानेपर वहाँके उपद्र
दबाकर शान्ति स्थापित करते हुए अपने पराक्रमक
बहुत बढ़ालिया था; इसके बाद ईस्वीसन् पूर्व २७२
बिन्दुसार राजा परलोकवासी हुआ, उस समय अ
बहुत दूर होनेके कारण उसे राज्यप्राप्तिमें बहुत
कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। फिर भी
एकदम अपनी सेनाको साथ लेकर तक्षशिलासे सीध
पाटलीपुत्र आया और अनेक विघ्न-बाधाओंका

करनेके बाद उसने पाटलीपुत्रका सिंहासन अधिकृत् किया। इसके बाद वह ईस्वीसन् पूर्व २७२में मगधेश्वर रूपमें गद्दीपर बैठा।

सिंहासनपर बैठनेके बाद कई वर्ष अशोकको अपनी राज्य व्यवस्था जमानेमें लगे; किन्तु पिताके समयमें उसने मालवेमें उज्जैन तथा पञ्जाबमें तक्षशिलाकी सूबेदारी की थी; अतः राज्य व्यवस्थाके नियमोंसे वह भलीभाँति परिचित था। चाणक्य-द्वारा निर्मित राजनीतिसे भी शासन करते समय अशोकको कम सहायता नहीं मिली होगी। उसके राज्यका विस्तार हिन्दुकुशसे आसाम तक और काश्मीरसे कृष्णानदी महाराष्ट्र तक फैला हुआ था। केवल पूर्वतटवर्ती कलिङ्गदेशही अभिमानवश अपनी स्वतन्त्रता बनाये रख सका था। बङ्गालके उपसागरके तटवर्ती मही और गोदावरी नदीके बीचका प्रदेश ही कलिङ्गदेश कहलाता था; किन्तु अशोकने गद्दीपर बैठते ही उसकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगा दिया था।

अशोक बाल्यावस्थामें बड़ा ही उपद्रवी एवं क्रूर था। अतः गद्दीपर बैठते ही उसने पाटलीपुत्रमें एक "नरकागार" बनवाया था। उसने एक बहुत बड़े मैदानमें चारों ओर दीवार खड़ी करवाकर उसके भीतर

तेजधारवाले चक्र, दहकते हुए लोहेके स्तम्भ, उबलते हुए कड़ाह आदि रखवाये थे। साथही यातना भुगतानेवालोंके स्थानपर उसके सिपाही न हुए थे। इसप्रकार जब किसी अपराधीका कोई सिद्ध हो जाता तो वे यमदूत रूपी सिपाही उसे नरकागारमें ले आते; और विविध प्रकारकी यात देकर मार डालते थे। प्रारम्भमें तो यह केवल राधियोंके लिए ही नरकागार था; किन्तु बादमें कोई भी भूला भटका उधर आ निकलता, उसे भी यमदूत तत्काल पकड़कर उस नरकालयमें ले जाते बुरी तरह कष्ट देकर मार डालते थे।

एकबार किसी कारणवश कोई बौद्धभिक्षुक आ निकला। उसे भी पास आते ही उन जागते दूतोंने पकड़कर नरकालयमें ले जानेके बाद डालनेकी तैयारी की। तब उसने उन परमाधामि सिपाहीयोंसे कहा कि:—"मरनेसे पहले मुझे दो समय ईश्वरकी स्तुति-प्रार्थनाके लिए दो। उसके तुम्हारी जो इच्छा हो, वह कर सकते हो।"

उस दो घड़ीके समयके बीच दूसरा भी मनुष्य वहां आ फँसा और नरकालयके रखवालों उसे पकड़कर एक चक्रपर चढ़ाते हुए उसका सिर

दिया। उस भयङ्कर दृश्यको देखते ही भिक्षुकका हृदय विदीर्ण होगया। शरीरकी नाशमान स्थिति देखकर तथा नरकालयकी यन्त्रणाओंको अवलोकन कर उसके मनमें वैराग्य उत्पन्न होगया; किन्तु ईश्वरकी स्तुति करनेवाले साधुको दो घड़ीके पश्चात् उन लोगोंने उबलते हुए तैलके कड़ाहमें डाल दिया। तैल बहुत गर्म था और नीचे भट्ठीमें आँच भी बहुत तेज थी; किन्तु फिर भी आश्चर्यकी बात यह हुई कि भिक्षुकके तैलके कड़ाहमें पड़ते ही वह तैल एकदम ठण्डा होगया।

यह अद्भुत दृश्य देखकर सब लोग एक दूसरेकी ओर ताकने लगे। मन्त्र द्वारा स्तम्भित पुरुषके समान वे चित्रवत् रहगये। यह समाचार जब सम्राट् अशोकके पास पहुँचा, तो वह भी दौड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा और उसे भी वह दृश्य देखकर बड़ाही आश्चर्य हुआ।

अशोकने उस भिक्षुकको तैलके कड़ाहमेंसे बाहर निकलवाया और वह उसके चरणोंमें गिर पड़ा। यह देख भिक्षुकने राजासे कहा:—"राजन्! अनेक निर्दोष जीवोंका संहार करके आप किस स्वर्गको पानेकी आशा रखते हैं? किसी भी प्राणीकी हिंसा करनेके समान दूसरा पाप नहीं हो सकता। उसमें भी जब विना कारण ही एक मनुष्य दूसरे मनुष्यकी हिंसा करे तो

इसे अधमताकी चरम सीमाही कहा जा सकता
संसारमें अद्वितीय अहिंसाधर्मके द्वार सभीके लिए
हुए हैं। उसमें यदि आप प्रवेश करेंगे तो ।
कल्याण होगा।"

राजाके मनपर उसके उपदेशका अद्भुत
पड़ा। फिर भी उसने अपनी सफाई देते हुए कहा
"भगवन्! केवल अपराधियोंके लिए ही ये सारे
विधान बनाये गये हैं।"

"किन्तु इतनेपर भी अनेक निरपराध व्यक्ति अ
इस निर्दयतापूर्ण कृत्यके बलिदान हो चुके हैं
हो रहे हैं। अतएव यदि आप आत्मकल्याणकी इ
रखते हों तो इसी समय इस नरकालयको नष्ट करवा
चाहिए। अपराधियोंके लिए अन्य प्रकारके
कहाँ कमी है कि जिसके बदले आपको ऐसी नि
पूर्ण कठोर योजनाएँ करनी पड़ी हैं?"

इस उपदेशके फलस्वरूप अशोक राजाने उसी स
उस नरकालयको नष्ट करवा दिया। इसप्रकार
चमत्कार दिखानेवाले बौद्धभिक्षुकका नाम उपगुप्त
उसी समयसे उपगुप्त राजा अशोकको उपदेश देकर
धीरे अपने धर्मकी ओर आकृष्ट करने लगा एवं
परिणाम-स्वरूप उसे बौद्धधर्मावलम्बी बनालिया।

अन्तमें ऐसा भी एकदिन आ पहुँचा कि अशोकके नेतृत्वमें उसकी विशाल सेनाने कलिङ्गदेशकी ओर प्रस्थान किया।

कलिङ्ग-वासियोंको ललकारती हुई अशोककी सेना आ पहुँची; किन्तु वहाँ भी उसका सत्कार करनेके लिए एक-एक स्वदेशाभिमानी कलिङ्गवासी नर आतुर था। दोनोंके आयुधोंकी टङ्कारसे रणक्षेत्र गूँज उठा। अशोककी बलवान् सेनाके सन्मुख उस मुट्ठी भर जनताने वीरताके साथ अपना बचाव करना आरम्भ किया। स्वतन्त्रताकी प्रज्वलित वेदीपर हजारों मनुष्योंकी बली चढ़ातेहुए भी वह वीर जनता अचल पर्वतकी तरह अशोकके सामने जमी रही। दिनके बाद दिन और महिनोंके बाद महिने ज़ल-प्रवाहकी तरह बहते चले गये; किन्तु फिर भी कलिङ्ग-वासियोंका धैर्य डिग न सका।

देशाभिमानके रक्तसे रङ्गा हुआ एक भी नर-बच्चा विद्यमान् रहने तक बराबर युद्धमें लड़ते रहनेका कलिङ्ग-वासियोंका निश्चय था। अशोककी तलवारने कई पुरुषोंकी बलि लेली; और कईको स्वतन्त्रताकी वेदीपर सदैवके लिए शान्त निद्रामें सुला दिया था; किन्तु फिर भी अगले दिन नये कलिङ्गवासी अपनी

स्वाधीनताके लिए अशोककी तलवारके वार ... बाहर निकल पड़ते थे।

कलिङ्ग-वासियोंके साथ युद्ध करते हुए तीन-वर्षोंकी लम्बी अवधि व्यतीत होगई ; फिर भी शो की तलवारके सम्मुख कलिङ्ग वासी नरवीरोंका अडिग ही रहा। कलिङ्गदेशके प्रत्येक देशाभिमानी सदैवके लिए माताकी गोदमें सोगये थे ; ... पराधीनताकी अपेक्षा मरजाना उनके लिए विशेष होनेसे रण-संग्राममें आकर शत्रुके सैनिकोंको मारते स्वयं मरजानेमें वे विशेष गौरव अनुभव करते किन्तु तीन वर्षके अन्तमें जब कोई भी वीर पुरुष शेष रहा ; तब उस प्रदेशकी वीर जनताका धैर्य समाप्त चला। अन्तमें केसरिया वस्त्र धारण करके अ... सामूहिक बल प्रदर्शित करनेके लिए वहाँकी ... निश्चय किया और इसी निश्चयके अनुसार एकदिन वीर जनता अशोककी तलवारको चुनौती देती हुई ... पर टूट पड़ी। दोनोंके बीच तुमुल युद्ध हुआ ; ... अशोककी विशाल सेनाके सन्मुख वह मुट्ठीभर ... किस गिनतीमें थी ? अन्ततः अपनी वीरताका परि... देकर कलिङ्गदेशके अगणित वीर योद्धा सदैवके लि... मीठी निद्रामें सोगये, और इसप्रकार युद्धका अन्त हुआ।

विजयी अशोकने सेना सहित कलिङ्गकी राजधानीमें प्रवेश किया, किन्तु वहाँ उसने क्या देखा? नगरकी सड़कोंपर लाखों मुर्दे पड़े हुए थे। लाखों मनुष्य बिना अन्न-जलके तड़पकर मर गये थे और लगभग एक लाख तो उसने युद्धभूमिमें ही मार गिराये थे। साथही डेढ़ लाख कलिङ्ग-वासी उसकी छावनीमें बन्दी बनाकर रखे गये थे। देश भरके प्रत्येक घरमें घोर हाहाकार मचा हुआ था। अतएव नर-हत्याकाण्डके उस कोलाहलने अशोकके वज्र समान हृदयको भी हिला दिया। उसने देखा कि सम्पूर्ण कलिङ्गदेश भीषण रुदन एवं चीत्कारसे गूँज रहा है। किसीका भाई, तो किसीका पुत्र और किसीका अन्य स्वजन युद्धाग्निमें भस्म हो चुका था। उस गर्म राखपर युद्ध समाप्त होनेके पश्चात् घर-घर ऊष्ण अश्रुधारा बहाते हुए अशोकने अपनी आँखोंसे देखा। उसको ग्लानि अनुभव हुई कि :—"अरे! मैंने किस सुखके लिए कलिङ्गदेशकी स्वाधीनताको नष्ट कर दिया! लाखों कलिङ्ग-वासियोंका जीवन नष्ट करनेका अपराधी मैं ही हूँ। इस हिंसामयी राज्यलक्ष्मीको धिक्कार है और ऐसे पराक्रमको भी बारम्बार धिक्कार है। जिसने कि आत्माको अज्ञानके मार्गमें खींचकर अनेक प्रकारके पापकर्म कराते हुए नर्कगामी होनेका मार्ग खोल

दिया है। इतना भीषण हत्याकाण्ड करके मुझे न किस दुर्गतिमें जाना था? अजातशत्रुने तो खण्डका राज्य प्राप्तकर आधे भारतवर्षके अधीन बना लिया था; किन्तु फिर भी यह उनकी नहीं हुई! ग्रीक सरदार सिकन्दरने विजय प्राप्त करके महान् साम्राज्य स्थापित किन्तु यह पृथ्वी उसके साथ भी नहीं गई। तब मेरे साथ भी यह क्या आनेवाली है? सचमुच ही कलिङ्गकी शोभा नष्ट कर कोई अच्छा काम नहीं है।" इसप्रकार उसे घोर पश्चात्ताप हुआ और अन्तिम विजय यात्राके पश्चात् उसने सदैवके लिए तलवारको म्यानमें रखते हुए युद्धको नमस्कार लिया और शिकारके साथही मांस भी छोड़ दि साथही इस बातके लिये भी प्रतिज्ञा की कि,–' यदि बाहर भी निकलूँगा तो केवल जनताके समाधानके लिये ही! इसके बाद कलिङ्ग भली-भाँति व्यवस्था करके अपनी ओरसे वहाँ अधिकारी नियुक्त कर वह अपनी सेना सहित पुत्र लौट गया। वहाँ जाकर इच्छा अनिच्छापूर्वक अपनी विजयका महोत्सव भी मनाया।

उसके समयमें पाटलीपुत्रकी वैभव सम्पन्नता

थी। उस नगरका विस्तार नौ मीलका था और उसमें चौसठ द्वार बने हुए थे। इसीप्रकार ५७० बुर्जवाले कोट—चार दिवारीसे यह सम्पूर्ण नगर सुरक्षित था। उसके आसपास चारों ओर ६०० फीट चौड़ी और बहुत गहरी खाई भी बनी हुई थी। चन्द्रगुप्तके समय कोटकी दीवाल लकड़ीकी बनी हुई थी; और अनेक भवन भी लकड़ीसे ही निर्मित थे; किन्तु सम्राट् अशोकने उस दीवारको तुड़वाकर पत्थरकी बनवा दी। साथ ही उसके समयमें अनेक स्तूप एवं विहार—मठ भी निर्माण हुए। इसप्रकार चन्द्रगुप्तकी अपेक्षा अशोक महान् प्रतापी सम्राट् सिद्ध हुआ।

भद्रबाहुस्वामी वीर संवत् १७०में स्थूलिभद्रको पट-धर स्थापित कर स्वर्गलोकमें गये। उन स्थूलिभद्रका जन्म वीर संवत् ११६ में हुआ था। युवावस्थामें बारह वर्ष पर्यन्त वेश्याके घर रहकर संवत् १४६ में उन्होंने संभूतिसूरिसे व्रत ग्रहणकिया और संवत् १७० में पटधर हुए।

स्थूलिभद्र अन्तिम चौदहपूर्वी श्रीमहावीरसे सातवें पाट पर हुए हैं। इनके दो शिष्य आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ति नामके थे; जिन्हें इन्होंने दीक्षा दी और उनके बाद ही ये पट्टधर हुए हैं। वीरसंवत् १७०में

आर्य महागिरिको दीक्षा दी गई और संवत् २२२ आर्य सुहस्तिस्वामीको दीक्षा देकर स्थू . . . वीरसंवत् २१९ में स्वर्गवासी हुए। इसी कारण . सुहस्ति स्वामीको स्थूलिभद्रके नामसे संवत् २२२ आर्य महागिरिने दीक्षा दी थी और संवत् २१९में . महागिरि पटधर एवं युगप्रधान हुए। इसके बाद . २४६ में आर्यसुहस्ति सूरीपदपर प्रतिष्ठित हुए।

महान् अशोकके समयमें आर्यसुहस्ति एवं अ . महागिरि गच्छनायक थे। इनमें भी . . . . तो महावीर स्वामीकी तीसरी शताब्दिके अन्त . विद्यमान थे।

उस समय तेईस उदयोंमेंसे प्रथम उदय चल . था। प्रथम उदयमें बीस युगप्रधान हुए हैं। . सुधर्मास्वामी और जम्बूस्वामी ही मोक्षको प्राप्त हुए शेष अठारह युगप्रधानोंको एकावतारी जानना चाहिए आर्य महागिरिस्वामी आर्यसुहस्तिस्वामीको . . भार सौंपकर जिनकल्पका आचार विच्छेद होजानेपर . स्वयं एकाकी भावसे विचरण कर जिनकल्पकी . . करते थे। इन दोनोंकी एकही पाटपर अर्थात् . स्वामीके आठवें पाटपर गणना की गई है।

बारहवाँ परिच्छेद

भवितव्यता

—:०:—

स्त्रियोंका हृदय और पुरुषोंका भवितव्य जाननेका सामर्थ्य संसारमें किसमें हो सकता है ? मनुष्य प्राणी संसारमें सुखकी आशासे संसार-रूपी जीवनयात्रामें आगे बढ़ता ही चला जाता है। सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास एवं दुःखादिक अनेक प्रकारके परिसह सहने पर भी उसे आवश्यकतासे प्रायः कमही फल प्राप्त होता है ; अथवा कभी-कभी उलटाही परिणाम होता है। साथही किसी-को अल्प प्रयाससे ही विशेष लाभ हो जाता है। औंधे पासे भी उसका भाग्य सीधा कर देते हैं, क्योंकि मनुष्य प्रकृति विभिन्न प्रकारकी होती है और उनके कर्मोंकी रचनाभी भिन्नरूपकी ही होती है। इसीलिए भविष्यके पर्देकी आड़में छिपकर चुनौती देनेवाली कर्म रचनाएँ कब क्या करेंगी, यह तो केवली भगवान ही जान सकते हैं।

अवन्तीमें आज उत्सवका दिवस होनेसे सर्वत्र आनन्द ही आनन्दका वातावरण छा रहा था। अनेक छोटे-बड़े नागरिक अपने-अपने वैभवके अनुसार वस्त्राभूषण धारण-

कर आनन्दोत्सवमें निमग्न दिखाई दे रहे थे। युवराज कुणालका जन्मदिवस-जयन्ती होनेके राजपरिवारसे लेकर सामान्य प्रजाजन तक प्रत्येक इस समारोहमें अपनी प्रसन्नता व्यक्त की थी। जनता धनाढ्य होनेके साथही शान्तिका साम्राज्य कारण व्यापार-व्यवसायकी दृष्टिसे भी अवन्तिका उन्नतिके शिखर पर आसीन थी।

मध्याह्नके पश्चात् आज राज-दरबारमें सभी नागरिक आमन्त्रित किये गये थे। जहाँ कि सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर राज-कर्मचा एवं धनाढ्य नागरिकोंका अभिवादन स्वीकार लिए सिंहासन पर विराजमान था। उस बाल निकट अवन्तीके अधिकारी तथा उनके पीछे बैठे हुए थे। राज्यके छोटे-बड़े अधिकारी सम्मुख भेट की जानेवाली विविध वस्तुएँ रखकर अ आसन ग्रहण कर रहे थे। नगरसेठ एवं अन्य धनी सज्जन भी विविध प्रकारकी भेट-सामग्री अर्पण कर प्रति अपना सम्मान प्रकट कर रहे थे।

राज्यकी ओरसे ही आज आनन्दका दिवस होने कारण नगरमें अनेक स्थानोंपर नाच-तमाशोंकी की गई थी। कहीं संगीतके मधुर गानके स्वर्गीय

गूंज रहे थे ; तो कहीं विदूषक लोग अनेक प्रकारके हास्य-विनोद द्वारा दर्शकोंका मनोरञ्जन कर रहे थे। इसप्रकार समृद्धिमें बढ़ी-चढ़ी अवन्ती आज आनन्दमें मस्त बनकर स्वर्गीय शोभासे स्पर्धा कर रही थी।

दक्षिणाके लोभी ब्राह्मणोंको राज्यकी ओरसे अनेक प्रकारके दानादि दिये गये थे। गरीब, लूले-लँगड़े, अपंग, अन्धे एवं अन्य सब प्रकारसे निराश्रितजनोंको मन चाहा भोजन कराकर सन्तुष्ट किया गया था। इस प्रकार युवराजके कल्याणके निमित्त भली-भाँति यशदान-कीर्तिदान और उचित दानादि किये गये थे। अहिंसा-प्रधान शासन होनेसे सर्वत्र ढोल-नगाड़े द्वारा अहिंसाकी दुहाई प्रवर्तित कर समस्त जीवोंको अभयदान दिया गया था। साथ ही विवेकीजन सुपात्रकी भक्ति करना भी नहीं भूले थे। इसीलिए सर्वत्र ही राजासे लेकर रंक तक सब आनन्दमें निमग्न हो रहे थे।

युवराज कुणालके प्रति सम्राट्का असाधारण प्रेम ही प्रजाके लिए इस उत्सवका कारण बन गया था। बाल्यावस्थामें ही युवराज पद पाकर वह साम्राज्यका उत्तराधिकारी सिद्ध हो चुका था। अतएव जो कुमार भविष्यमें अपना स्वामी-सिरताज बननेवाला था, उसके प्रति प्रजाजन एवं उनके नायक या नेता यदि अपना सम्मानभाव

प्रकट करें, तो यह स्वाभाविक ही था। उस
उत्साहपूर्ण समारोहमें कुमार युवराजका हृदय भी
के कारण प्रसन्न हो रहा था।

जब राजसभा नागरिकोंसे पूर्ण हो गई; तो अधिकारियोंने युवराज कुणालको मधुर शब्दोंमें प्रजाजनसे परिचय कराया गया। सम्राट् अश वर्धनकी राजनीतिकी सराहना की गई और सम्राट्के विषयमें भी दो शब्द कहे गये। इसके राजसभामें संगीतका आयोजन किया गया। की सर्वोच्च गणिकाओंने अपनी नृत्यकला एवं कुशलताके द्वारा समस्त सभाजनोंका यथेष्ट किया। इसीप्रकार सभामें पानीकी तरह इत्रके छूट रहे थे। उन वारांगनाओंके हाव-भाव एवं नाद और गान-तानमें राजसभा निमग्न हो रही दुःख क्लेश या विपत्ति क्या वस्तु है; इसकी झलक उस समय कहीं दिखाई नहीं देती थी।

इतनेहोमें अचानक प्रतिहारीने आकर युवराज अवन्तिपतिको नमन करते हुए निवेदन किया। "स्वामिन्! पाटलीपुत्रसे हमारा दूत लौट आया और सम्राट्की ओरसे कोई शुभ समाचार लाया है।"

द्वारपालके इन शब्दोंको सुनते ही युवराज

अवन्तिपति सहसा प्रसन्न होकर बोले : "अहो, मङ्गलमें भी मङ्गल हो रहा है। अवश्य ही सम्राट्ने युवराजके लिए कोई शुभ समाचार भेजा होगा। उससे आजके आनन्दमें निश्चित ही वृद्धि होगी।" सामन्त माधवसिंहने अवन्तीके अधिकारीसे कहा कि वह दूतको राजसभामें उपस्थित होने की आज्ञा दे। प्रतिहारी प्रणाम करके चला गया। थोड़ी ही देरमें दूत मन्दगतिसे चलता हुआ युवराजके सिंहासनके निकट आ खड़ा हुआ और पञ्चाङ्ग प्रणिपात करते हुए उसने सम्राट् अशोकका सील-मुहर किया हुआ पत्र युवराजके हाथमें दिया। पिताकी ओरसे अपने लिए आया हुआ वह शुभ सन्देश युवराजने मस्तकपर चढ़ाकर माधवसिंहको दिया और उन्होंने धड़कते हृदयसे उसे खोलकर भीतरसे महाराज अशोकके हाथका लिखा हुआ पत्र निकाला और मन्त्रीश्वरके हाथमें देते हुए उसे पढ़नेको कहा।

आनन्दमें मस्त बनीहुई प्रजा उस समय शान्त थी। नृत्य एवं सङ्गीतकी कला प्रदर्शित करके थकी हुई वाराङ्गनाएँ भी उस समय क्षण भर विश्राम ले रही थीं। उत्सुक हृदयसे समस्त सभाजन उस पत्रमें लिखे शुभ समाचारको जाननेके लिए आतुर हो रहे थे। "अहा! सम्राट्का प्राणाधिक पुत्र! जिसे स्वयं सम्राट्ने अपने

हाथोंसे पत्र लिखा है! उसमें भला कौनसा समाचार होगा?"

हजारों उत्सुक हृदयोंकी जिज्ञासा बढ़ाते हुए वह पत्र मन-ही-मन पढ़ लिया और उसकी एकदम मलीन होगई! चतुर माधवसिंह एवं मन्त्री भी समझ गये कि "अवश्य दालमें कुछ क समाचार अच्छे नहीं जान पड़ते।" फिर भी व हुए हृदयसे बड़ी कठिनाईके साथ माधवसिंहने "प्रधान जी! कहिये, पत्रमें क्या समाचार हैं?"

प्रधानके मुखसे निकलनेवाले शब्दोंको सुननेके सैकड़ों हृदय आतुर हो उठे और उनकी ओर हुए। सभाकी सैकड़ों आँखें उनपर लग रही किन्तु प्रधान क्या कहे? आजके इस मङ्गलमय पर पापमय-अन्धकारमय शब्द उच्चारण करते हुए उ जिह्वा जकड़ गई थी। वह मुँहसे एक शब्द भी न कर सका। बावलेकी तरह वह युवराज और म सिंहकी ओर देखने लगा। "आह! भवितव्यता कि प्रबल है, जो क्षणभरमें राजाको रंक और रंकको र बना देती है!"

प्रश्नका उत्तर न मिलनेसे सबकी शङ्का बढ़ और सभीलोग भ्रममें पड़ गये। माधवसिंहने फिर

किन्तु प्रधानमन्त्री कुछ भी न कह सका। वह लताकी तरह थर-थर काँपने लगा। उसकी ऐसी दशा देखकर सबके हृदयमें धक्का पड़ गया और उनके आतुर-हृदय और भी उत्सुक हो उठे।

मगधसे लौटा हुआ दूत तो यह दृश्य देखकर अवाक् ही रह गया! क्योंकि वह पाटलीपुत्रमें समस्त राज-परिवारको आनन्द-मङ्गलमें देखकर चला आ रहा था। पत्रमें भी युवराजके कुशल-क्षेमके ही समाचार पुछवाये हैं; और यहाँके शुभ समाचारोंको जानकर उन्होंने भी अपनी प्रसन्नता ही व्यक्त की होगी। ये सब बातें वह निस्सन्देह-भावसे सोच रहा था। फिर भी एकदम इसप्रकारका परिवर्त्तन हुआ देखकर उसे तो अत्यधिक आश्चर्य-सा हुआ। अतएव उसने सविनय निवेदन किया कि:—"मन्त्रीश्वर! आप पत्रको सुनानेसे क्यों रुक गये हैं? महाराज आदि समस्त पारिवारिकजन वहाँ कुशल पूर्वक हैं। पत्र-द्वारा उन्होंने अपने यहाँके कुशल-क्षेम सूचित करते हुए यहाँके आनन्द-मङ्गलकेही समाचार मँगवाये हैं। इसके सिवाय पत्रमें ऐसी क्या बात हो सकती है, जिसे सुनाते हुए आप इसप्रकार संकोच एवं दुविधामें पड़ गये हैं?"

फिर भी प्रधान चुपही रहा और वह पत्र माधव-

सिंहकी ओर बढ़ा दिया। माधवसिंहका हृदय विचलित होही रहा था। उसने समझ लिया कि "चतुर प्रधान मुँहसे बोल नहीं रहा है ; अतएव अवश्य ही कोई अशुभ समाचार होना ।हि काँपते हाथोंसे उसने प्रधानके हाथोंसे पत्र लेकर पढ़ा और पढ़तेही जोरोंसे चीखते हुए कहा :-"" यह क्या !" उसने पत्रको दूर फैंक दिया। उ तेजयुक्त गौर वदन ग्लानिसे एकदम म्लान होगया।

सभाके बीचमें पड़ा हुआ यमके बन्धुके समान भयङ्कर विषधर सर्प की भाँति वह पत्र मन्द-मन्द हिल रहा था ; किन्तु विष-सञ्चारके भयसे किसी व्यक्ति की उसे छूनेकी हिम्मत नहीं हो रही थी। जनोंने प्रधान पर उस विषका प्रभाव होते देखा माधवसिंहको भी उस विषसे ग्रसित देखकर सभीके उस निर्जीव कागजके टुकड़ेको देखकर काँप रहे मालवाके शूरवीरोंमें श्रेष्ठ एवं अवन्तीके शृंगाररूप सरदार एवं योद्धा सभामें उपस्थित थे, किन्तु उनके भयङ्कर वज्रके समान दृढ़ एवं अभेद्य हृदय उस को देखकर काँपने लगे।

युवराज भी सिंहासनपर बैठा हुआ राजस यह दशा प्रत्यक्ष देख रहा था। अतः उसने भी

तुर होकर पूछा :-चाचाजी! पत्रमें पिताजीने क्या लिखा है कि जिसे पढ़कर आप भी दिग्मूढ़की तरह होगये हैं?" किन्तु युवराजके इस प्रश्नके उत्तरमें सामन्त मौन रहकर उसकी ओर टगर-टगर देखने लगा! उसने मन-ही-मन कहा :—"महाराजने क्या सोचकर ऐसी कठोर आज्ञा दी होगी? कहीं उस समय लिखनेमें तो कोई भूल नहीं होगई?"

माधवसिंहको मौन रहते देखकर हाथीके बच्चेकी तरह वह बाल युवराज सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ और उस पत्रको लेनेके लिए नीचे झुका; किन्तु उसे इस-प्रकार पत्र उठाते देखकर माधवसिंह चौंका और एकदम लपककर वह युवराजके पास आकर निवेदन करने लगा, "ओह युवराज! कृपा करके आप इस पत्रको हाथ न लगाइये! इस विषपूर्ण पत्रको यहीं दबा देने दीजिये! महाराजको हम दूसरा पत्र भेजकर सत्यासत्यका निर्णय कर लेना चाहते हैं कि यथार्थ बात क्या है?"

किन्तु माधवसिंहका इसप्रकारका व्यवहार देखकर युवराज भी सहसा चौंक पड़ा। सभी सभासदोंके हृदय काँप उठे कि अवश्य ही पत्रमें कोई अशुभ समाचार लिखा गया है!

पासही पर्देमें बैठी हुई सुन्दरियोंके चन्द्रवदन भी

उदास हो गये। युवराजकी धायमाताएँ तथा ·।
की प्रियतमा एवं नागरिक रमणियाँ, सखियाँ, ८
भी खिन्न होगईं।

उन सबके मुखचन्द्रपर क्षणभर पहले जो ज्योति चमक रही थी, वह लुप्त होकर उनके हृदयमें धक्का पड़ गया। धात्रियाँ युवराजका मङ्गल। करती हुईं अला-बलाय दूर करनेके लिए आतुर हो क्योंकि मरनेसे पहले एक धात्रीसे महारानीने वि से अनुरोध किया था, अतः वह प्रतिक्षण लिए चिन्तापूर्वक देख-रेख किया करती थी; वह महारानीकी प्राणप्रिय सखीके समान ही यही कारण था कि वह इस अवसर पर कारण रुदन करने लगी। उसे प्रतिक्षण शङ्का होने लगी।

"चाचाजी! ठहरिये! चाहे जैसा भी हो, यह पिताजीका पत्र है। अतः उनके पत्रका करके आप ठीक नहीं कर रहे हैं।" युवराज यों कहते हुए पत्र उठा लिया। यमराजके समान उस पत्रको पढ़ते हुए सभी शुभ। अन्तमें पढ़ा कि "कुमारो अंधीयऊ" और तत्काल उसका आशय समझ गया। सम्राट्का अनन्यभक्त

आठ वर्षका कुमार युवराज माधवसिंह और मन्त्रियोंको सम्बोधन करके बोला :-"चाचाजी ! सम्राट् चन्द्रगुप्तके वंशमें पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाला अब तक कोई भी नहीं हुआ। अतः यदि मैंही अग्रसर होते हुए सम्राट्की आज्ञाका पालन नहीं करूँगा ; तो मेरा अनुकरण और लोग भी करेंगे। अतएव आपलोग शीघ्रतासे सम्राट्की आज्ञाका पालन कर इस अभागे कुणालको अन्धा कर दीजिये।

राजसभा चित्रवत् स्तब्ध रह गई ! सब लोग एक दूसरेकी ओर देखने लगे। जहाँ हर्ष और आनन्द की धारा बह रही थी, एकदम यह महान् क्लेशकारी स्रोत न जाने कहाँसे फूट पड़ा।

"युवराज ! जरा ठहरिये ! हमें सन्देह हो रहा है। इसमें अवश्य कुछ षड़यन्त्रकी गन्ध प्रतीत होती है।" एक चतुर मन्त्रीने कहा।

"बिल्कुल ठीक है ! इस विषयमें हमें फिरसे सम्राट्से पूछना चाहिए। माधवसिंहने मन्त्रीके कथनका समर्थन किया।"

किन्तु युवराजने फिर दृढ़तापूर्वक कहा :-"नहीं, बिल्कुल नहीं ! पत्रके लिफाफे पर स्वयं सम्राट्की मुहर-छाप स्पष्टरूपसे लगी हुई है। अक्षर और लिखावट भी

उन्हींके हाथकी है। अतएव आपलोग ·
उनकी आज्ञाका पालन कीजिये।"

यह सुनतेही सभामें एकदम कोलाहल मच
सबकी समझमें आ गया कि 'सम्राट्‌ने युवराजको
बना देनेकी आज्ञा दी है!'

उसी समय पर्देमेंसे कुमारकी धायमाता
वहाँ आकर बावलीकी तरह कुमारसे लिपट गई।
"हाय-हाय! क्या महाराजकी ऐसी आज्ञा है

"माताजी! इसमें दुःख मनाने जैसी क्या
पिताकी आज्ञा प्रभुकी आज्ञाके समान होती है
आज्ञाका उल्लङ्घन किसी प्रकार भी नहीं हो सक

"किन्तु पुत्र! इतने उतावले क्यों हो
यह सब राजकाजके प्रपञ्चकी बातें हैं। इसलिए
फिर महाराजसे पूछना ही होगा! इस तरह
बिना सोचे समझे आँखें फोड़ी जा सकती हैं?
हाय! मैं तुम्हारी माताजीके सामने क्या उत्तर दू
स्वर्गमें उनकी आत्मा मुझे कितना कोसेगी?
दुःखी होगी?"

"माता! पिताकी आज्ञाकी अवहेलना
प्रकार भी नहीं हो सकती। जैसा भी भावी है,
होगा! चाचाजी! आप गर्म लोहेके सरिये-छड़

कर मेरी आँखोंको फोड़ दीजिये।" उस छोटेसे युवराजका धैर्य असीम था। बालक होते हुए भी वह सिंहके बच्चेके समान था। सिंहनीके दूधसे पले हुए छोटे बच्चे भी विपत्तिको देखकर जरा नहीं डरते! अरे, वे तो भयका नाम तक नहीं जानते। युवराजको बहुत कुछ समझाया गया; किन्तु ऐसा कौन अभागा होगा जो गर्मशलाकाओंसे उस सुकुमार युवराजकी निर्दोष आँखोंको फोड़नेके लिए तैयार होगा?

"क्षमाकरो, युवराज! हमसे ऐसा क्रूर-कृत्य नहीं हो सकता।" माधवसिंह और मन्त्रियोंने अपनी असमर्थता प्रकट कर दी! भला, कौन अभागा उस पापकार्यमें भाग लेता?"

"ओह! महाराजकी आज्ञाका आप सब अपमान कर रहे हैं? चाचाजी! इस आज्ञाका अपमान करने पर आपको पीछेसे पछताना पड़ेगा!"

"उतावले मत होओ, युवराज! मैं इसी समय दूतसे महाराजके पाससे लाये हुए सच्चे वृत्तान्त पूछता हूँ! क्यों भाई! महाराजने मौखिक-जबानी भी कुछ समाचार कहे हैं?" माधवसिंहने मगधसे लौटे हुए दूतसे पूछा।

किन्तु उस अद्भुत घटनाके सुनते ही दूत दिग्मूढ़ होगया! उसकी समझमें ही नहीं आरहा था कि यह

सब क्या हो रहा है ? उसे मौन देखकर ... फिर पूछा ; "बोलता क्यों नहीं ? अभागे ! तू यह अशुभ समाचार लाया है ? झटपट बतला, इसमें भेद है ? सचसच बतलाना, नहीं तो अभी ... कुत्ते छोड़कर तुझे मरवा दिया जायगा !"

"महाराज ! मैं इस विषयमें कुछ भी नहीं ... कि अन्धता क्या है और कैसे यह सब हुआ है ! समझसे तो सम्राट्ने युवराजके कुशल समाचार ही हैं ! और उन्होंने यह इच्छा प्रकट की है कि अब ...राजको अध्ययन कराना चाहिए ! मैं समझता हूँ ...राजके हाथों अवश्य पत्र लिखते समय कोई भूल है ! अतः यदि आप आज्ञा दें तो मैं शीघ्रतासे पाटलीपुत्र जाकर इस विषयका खुलासा कर ... युवराजके लिए तो महाराज अत्यन्त चिन्तातुर विह्वल हो रहे थे। तब यह सङ्कट बीचमें ... टूटपड़ा ?" इसप्रकार काँपते हुए उस दूतने ... समाचार कह सुनाये ।

यह सुनते ही धायमाताने कहा ; "तो पुत्र ! अव... ही महाराजके हाथसे लिखनेमें भूल हुई है । ... पहले सब बातोंका पता लगानेकी आवश्यकता है ऐसी दशामें दूसरा आदेश आने तक ठहरना उचित है !"



गर्म लोहेके सरिये लेकर अपनी आँखोंमें भर लिये !

(पृष्ठ १३७)

"नहीं! तुम सब राजाकी आज्ञाका अपमान करने पर तुले हुए हो! किन्तु पिताके वचनको सत्य सिद्धकर दिखानेपर ही मैं उनका पुत्र कहला सकता हूँ। तुम्हीने तो कहा था कि पिताके वचनका पालन करनेके लिए राम-लक्ष्मणने चौदह वर्ष वनवास किया था! इसलिए शीघ्रतासे जलते हुए सरिये लाकर मेरी आँखोंमें भरदो!"

किन्तु जब किसीने भी उसकी बातपर ध्यान नहीं दिया; तब उसने स्वतः ही धधकते हुए गर्म लोहेके सरिये लेकर अपनी आँखोमें भर लिये! उनके लगते ही दोनों नेत्र बाहर निकल पड़े। वह बाल युवराज, पिताकी आज्ञाका पालन कर अन्धा होगया!

सबने भरसक प्रयत्न किया; किन्तु युवराजने किसीकी बात न मानकर पिताके वचनका पालन कर दिखाया! राजसभामें करुणरस छा गया। सबके नेत्रोंसे आँसू टपक पड़े। नाच-गान सब बन्द होगये। इसप्रकार घड़ीभर पहले आनन्दमें मस्त बनीहुई अवन्ती नगरी एकदम अगाध शोक-सागरमें निमग्न होगई।

युवराजके अन्धेपनकी खबर सारे शहरमें फैल गई। नृत्याङ्गनाएँ नीचासिर किये चुप-चाप चली गईं और अश्रु-भरेनेत्रोंसे माधवसिंहने राजसभा विसर्जित की। उस

समय सभाभवनसे जाते हुए सभी सदस्योंके आँसू थे। धायमाताएँ और दासियाँ रो रही सुनन्दा नामकी धायमाता छाती पीटते हुए कुणालको हाथ पकड़कर अन्तःपुरमें ले गई! इः हर्षोन्मत्त अवन्तीकी राजसभाका करुणामय गया! आह्! कैसी विचित्र भवितव्यता है!

इस दुःखदायी समाचारको विस्तारपूर्वक सिंहने सम्राट् अशोकके पास तत्काल ही दूतके भेज दिया।

तेरहवाँ परिच्छेद

स्वार्थके मोहमें

—:o:—

वह कृष्णमुखी श्यामा जिस प्रकार तिष्यरक्षि प्रिय सखी बनरही थी, उसी प्रकार बौद्ध साधु न चार्यने भी उसे साथ रक्खा था। वही समय जाकर तिष्यरक्षिताके सब समाचार उन्हें बतलाती थी। साथही राजा और रानीपर देख-रेख र

भार भी साधुने उसीपर छोड़ रखा था। तिष्यरक्षिताने अवन्तिकाके पत्रमें जो गड़बड़ कर दी थी, उसका पता भी श्यामाको लग चुका था; अतएव उसने यह समाचार भी साधुको बतला दिया था। अतः तिष्यरक्षिताको दबानेके लिए यह एक अमूल्य साधन हाथ लगजानेसे उसे परम सन्तोष था।

उधर नन्दनाचार्य तिष्यरक्षिताके सौन्दर्यपर मुग्ध हो रहा था और इसप्रकार वह उस युगकी रूपगर्विता सम्राट् अशोककी पटरानीके यौवनका पुजारी बन गया था। वह उस उपद्रव-कारिणी एवं राजमदसे गर्वीली सुन्दरीको कैसे अपने शिकञ्जेमें फँसाया जाय, इसके लिए मौकेकी ताकमें था। अतएव श्यामाको साध लेनेसे अनायास ही उस गर्वीली युवतीका मान मर्दन करनेका यह एक मौका हाथ लग गया। वह केवल समयकी ही प्रतीक्षा कर रहा था कि, वह पत्र अवन्तीमें पहुँचनेके बाद क्या परिवर्तन होता है? किन्तु इतने पर भी उस परिवर्तनसे पूर्व तिष्यरक्षिताके कार्यसे अनजानकी तरह उस बौद्धगुरुने उससे मिलकर कुछ आत्मश्लाघा-पूर्वक अपनी प्रशंसा करवाने की इच्छा की! "लगा तो तीर, नहीं तो तुक्का है ही" वाली उक्तिके अनुसार वह इस अवसरको व्यर्थ नहीं जाने देना चाहता था। इस-

लिए एकदिन मौका पाकर उसने श्यामाके द्वारा रक्षिताको दर्शनके लिए बुलवाया।

तिष्यरक्षिता भी प्रसन्न थी और वह भी पत्रका अवन्तीका पहुँचने पर क्या परिणाम होता इसीकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसके इस उसकी सखी श्यामाके सिवाय कोई नहीं जानता और श्यामाको भी उसने सख्त कह रखा था कि बातका भेद अपने दोनोंके सिवाय तीसरा जान सके।

अवसर पाकर फिर तिष्यरक्षिता, श्यामा सहेलियोंके साथ गुरुदर्शनके लिए निकल पड़ी। समय संसारमें श्रेष्ठ मानेजानेवाले नन्दनाचार्यके अनेक बौद्ध साधु रहते थे। उपगुप्तके लिए खास तौरपर यह भवन बनवा कर उसे अर्पण कि था। इसीकारण उसका वैभव एवं ठाठ-बाट आकर्षक प्रतीत होता था। उन महात्यागी स्थानपर इस समय नन्दनाचार्य बौद्ध अधिष्ठित किन्तु वह प्रपञ्ची और विलासप्रिय था। साधु पर भी उसकी वासनाएँ अभी ताजीही बनी हुई थीं इसीलिए वह बौद्धधर्मके पर्देकी आड़में सम्राट्को फँसा कर उचित लाभ उठानेके लिए समयकी प्रतीक्षा कर

था। वह मध्याह्नके पश्चात् बनठन कर अपने शिष्योंको अध्ययन करा रहा था कि इतनेही में एक शिष्यने दौड़ते हुए आकर खबर दी :—"पटरानी तिष्यरक्षिता आप श्रीमानके दर्शनार्थ आरही है।"

तिष्यरक्षिताका नाम सुनतेही नन्दनाचार्यके कान खड़े हो गये। उसने चलता हुआ पाठ दूसरे विद्वान शिष्यको सौंपकर कहा कि मेरे वापस आने तक इसे चलाते रहो। इसके बाद वह एक बड़े और सुन्दर कमरेमें जाकर इस प्रकार बैठ गया मानों किसी गहन शास्त्रका अध्ययन कर रहा हो! साथ ही जब वह चित्तवृत्तिका निरोध करता ; तब ऐसी आकृति बना लेता था मानों वह दर्शकके रूपमें ही अवस्थान कर रहा है। इस प्रकार नन्दन संसारके बाहरी आनन्द में ही मस्त बना रहता था। उसके बाहरी दम्भकी कोई सीमा ही नहीं थी।

तिष्यरक्षिता रथमेंसे उतरकर श्यामाके साथ नन्दनाचार्यके पास आई, और इधर अन्य सखियाँ मठकी शोभा अवलोकन करने लगीं। इसप्रकार उसे नन्दनाचार्यसे बातचीत करनेके लिये अच्छा मौका मिल गया। नन्दन-साधु समाधिमेंसे जागनेकासा ढङ्ग बनाकर बोला ;-"आइये, आइये! महारानीजी! पधारिये।"

"गुरुजी ! आप प्रसन्न तो हैं न ?"
मुसकुराते हुए पूछा ।

"हाँ, आपको देखकर तो विशेष रूपसे !"
मिठासके साथ उत्तर दिया !

"गुरुवर ! आज आप कुछ विशेष प्रसन्न
देते हैं ?"

"हाँ, आपका अनुमान ठीक है !"

"है कोई नवीन समाचार ?"

"आपहीके लाभ की बात है,
आपका कार्य मैंने सिद्ध करदिया है ! बुद्ध
कृपासे थोड़ेही दिनोंमें आप उसका परिणाम
लेंगी ! जबतक उस प्रयत्नका परिणाम ज्ञात नहीं
तबतक मैं उसी प्रयत्नमें लगा हुआ हूँ ।" नन्दन
डींग हाँकना शुरू किया ।

"अहा ! आप मेरे कार्यकी इतनी अधिक
रखते हैं कि रातदिन उसीके लिए प्रयत्नमें लगे
हैं !" रानीने प्रसन्न होते हुए कहा ।

"इसमें आश्चर्य जैसी बात ही क्या है ? आप
कार्य तो मुझे करना ही चाहिए ! क्या आप मुझे
से भिन्न समझती हैं ? भलेही आपके मनमें चाहे
हो ; किन्तु हम पहले तो किसीका कन्धा पकड़ते नहीं

और यदि पकड़ते भी हैं तो उसे संसार-सागरसे पार उतारनेके लिए ही। तब, भला ऐसी छोटीसी बातकी तो हमारे लिए गिनतीही क्या हो सकती है?"

"सत्य है! आप जैसे समर्थ पुरुषके प्रभावसे मेरा कार्य अवश्य सिद्ध होगा! मेरा महेन्द्र भारतका सम्राट् बनेगा! मेरी तो एकमात्र यही कामना है!" रानीने सन्तोष प्रकट करते हुए कहा।

"इसमें सन्देह जैसी बात ही क्या है! मेरे प्रभावसे आपका काम हुआ ही समझिये! मुझे तो यही जान पड़ता है कि थोड़े ही दिनोंमें आप अपने लाभका नवीन समाचार सुनलेंगी!" साधुने कहा।

"तब तो आपके मुँहमें घी-शक्कर गुरुदेव।" महारानीने मधुर मुसकानके साथ कहा!

"बस; तो केवल घी-शक्कर दिखाकर ही आप प्रसन्न करना चाहती हैं?" यों कहते हुए साधु भी मधुर हास्यके साथ मुसकुराया।

"तो मैं भला, आपको और क्या दे सकती हूँ? फिर भी मुझसे जो कुछ हो सकेगा, वह अवश्य आपकी सेवामें प्रस्तुत करूँगी। कहिये और कुछ?"

"ठीक है। आप जो न देसकें, ऐसी किसी वस्तुकी याचना मैं नहीं करता कि, आकाशमेंसे मुझे चाँद ला

दीजिये अथवा अजरामर बननेके लिये अमृतका ले आइये ! मैं जो कुछ माँगूँगा उसे आप तो सुगमतासे दे सकेंगी महारानी साहिबा !" गोलमाल बात कही !

"निःसन्देह मैं आपकी इच्छा अवश्य पूर्ण कर एकबार आप मेरे लाभका ही शुभ समाचार सुना जिससे कि मेरे हृदयको शान्ति प्राप्त हो सके।"

"अवश्य ! आप कुछ ही दिनोंमें वह स लेंगी, रानीजी ! मुझे तो समाधिमें ऐसा प्रतीत है कि कार्यका आरम्भ भी आपसे किसीके चुका है।" उसने ठण्डे दिलसे कहा।

किन्तु नन्दनके वचन सुनकर तिष्यरक्षिता "ओह ! प्रभु ! आप तो त्रिकालज्ञानी हैं !"

"चुप ! चुप ! जरा धीरेसे बोलिये ! कान होते हैं। स्मरण रखिये कि वह बात गुप्त का है। आपकी श्यामासे भी मत कहिये।" भि धीमे शब्दोंमें कहा।

"आपकी बात मेरे ध्यानमें है ! किन्तु समाधिमें यह सब दिखाई देता है ?"

"हाँ ; इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ऐसी तो वस्तुएँ आत्म साक्षात्कार हो जानेपर

बिजलीकी चमकके समान प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं और यह तो हमारा नित्यका ही साधारण अभ्यास है। यही नहीं, हम तो इससे भी आगे बढ़ गये हैं। ये समाधि-योगका बातें हैं। इन्हें आप नहीं समझ सकेंगी। इसी-लिए आगेकी बातें विशेषरूपसें कैसे कही जायें।"

तिष्यरक्षिताने मनमें विचार किया कि 'यदि यह साधु तुरन्त ही नाराज हो जाय या बिगड़ जाय तो निश्चित ही जड़-मूलसे मिटा सकता है! अतएव इसे तो जैसे भी हो लालचमें फँसाकर वशीभूत कर लेनाही उचित है। यह मुआ तो तीनों कालकी बातें जानता है!"

"रानीजी! आप किस विचारमें पड़ गईं। सेवकसे कोई अपराध तो नहीं हुआ? यों कहते हुए साधु हँसा।

"अरे भगवन्! आप तो युगके साक्षात् सर्वज्ञ हैं! आपके अपराधकी तो मेरे मनमें कल्पना ही कैसे हो सकती है? आपकी सर्वज्ञताने मुझे मुग्ध कर लिया है। प्रभु, मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ?"

"घबराइये मत, रानीजी! भक्ति अनेक प्रकारसे हो सकती है। आपकी इच्छा होगी तो उस भक्तिको स्वीकार कर प्रथम लाभ मैं आपहीको दे सकूँगा! कहिये, और क्या चाहती हैं?"

"तब तो आपकी महान् कृपा ही होगी। प्रभु!

हम जैसे संसारी जीवोंपर तो आपकी कृपादृष्टि ह
चाहिये। आप हमें सदैव ही स्नेहभरी दृष्टिसे
यही प्रार्थना है।"

"यह तो ठीक है रानीजी! आप ही
क्या इस प्रकारकी भक्ति सदैव ही हमारे प्र
सकेंगी? तन-मन और धनसे आप हमारी
सकेंगी? काम बन जानेके बाद तो यही होता
गरजसरी और वैद्य वैरी हुआ।"

"नहीं, भगवन् मैं ऐसी विश्वास घातिनी न
प्रभु! मेरे मनकी बात कैसे कहूँ? मैं तो आ
महाराजसे भी अधिक पूजनीय समझती हूँ।
अधिक क्या कह सकती हूँ?"

"आपके ये शब्द सत्यतापूर्ण हैं या बाहरी अ
से भरे हुए हैं? किसी दिन मैं इसकी परीक्षा
इसलिये जरा सोच समझकर ही बोलिये।" सा न
हँसीके साथ कहा।

"अवश्य! मैं खुशीसे इसकी परीक्षा दूँगी
यदि अब आप हमारे यहाँ आहार लेने पधारें तो
कृपा होगी। मैं श्यामाको बुलानेके लिए भे
आपकी चरणरजसे हमारा घर पवित्र होगा।
जन्म सफल हो जायगा।"

"किन्तु आपको भी निरन्तर दर्शनके लिए आते ही रहना चाहिए। रानीजी ! गुरुकी भक्ति करनेसे स्त्रियाँ भव-सागरसे पार हो सकती हैं ; किन्तु उन्हें तन, मन, धन आदि अपना सर्वस्व गुरुको अर्पण कर देना पड़ता है। तभी आपकी मोक्ष हो सकती है।" इस प्रकार व्यंग-ही-व्यंगमें साधुने रानीको सब कुछ कह दिया। उसकी वृत्तियाँ तो उस समय इसप्रकार उछल रही थीं कि इसी क्षण वह अपने कार्यका मङ्गलाचरण कर दे, किन्तु शीघ्रतामें किया कराया सब नष्ट हो जानेका भय था। इसीलिए उसने सोचा कि "उतावला सो बावला, धीरासो गम्भीर।"

"आपका यह उपदेश यथार्थ है भगवन् ! आपकी कृपासे हमें सद्बुद्धि प्राप्त होती रहे, और आपके प्रति हमारी भक्ति अचल बनी रहे। ऐसी कृपा कीजिये !"

"तथास्तु" कहकर साधुने वरदान दिया।

समय पूरा हो जानेसे आस-पास मठके अवलोकनार्थ गई हुई सखियाँ आ पहुँची और असल बातकी चर्चा वहीं रुक गई। सभी महिलाऐं थोड़ी देर वहाँ बैठकर गुरुका उपदेशामृत श्रवण कर जैसे आई थीं, वैसे ही वापस लौट गईं।

चौदहवाँ परिच्छेद

एक ही भूल

—:o:—

"हाय ! हाय ! सत्यानाश !! यह
हो गया ? मेरे जरासे प्रमादसे कितना भयङ्कर अनर्थ हो गया। हा, प्रभु ! हे विधाता ! ...
अत्याचार है ? धिक्कार है मेरे प्रमाद ...
चपलताको, कि मैंने फिरसे उस पत्रको ...
देखा। हाय ! दुर्दैवने कैसा धोखा दिया ? ...
प्राणप्यारे पुत्रका मैंने पिता होकर भी शिर ...
कार्य कर लिया। उसके उन्नत जीवनका ...
दिया। उसकी नवीन आशाओंका सर्वनाश कर
यह मेरे किस जन्मका पाप फलीभूत हुआ ?
माताने मरते-मरते मुझसे कितनी बातोंका ...
किया था ? किन्तु आज वे सब व्यर्थ होगईं।
आत्मा स्वर्गसे मुझपर कितने शापोंको वर्षा रही
मुझे कितनी कोस रही होगी ? हाय ! यह तो
अनर्थ होगया, किन्तु अब क्या उपाय हो ...
साराही राजपाट दे डालने पर भी उसे खोयी हुई
कौन वापस दिला सकता है ? बेटा कुणाल !

पिता होकर भी तेरेलिए किसप्रकार शत्रुका काम किया ? कलिङ्गदेशके हत्याकाण्डरूपी पापका फल मुझे यहीं तत्काल मिल गया। अथवा उस नरकालयमें बुरी तरह मारे गये अगणित जीवोंकी हत्याका पाप मेरे लिए यहीं प्रकट हो गया। हा ! विधाता ! मेरी समस्त आशाओं को तूने यहीं नष्ट कर दिया। अब मेरा प्रियपुत्र कुणाल, इस राज्यका उपभोग करनेके लिए अनधिकारी होगया। अरे, अब तो वह एक माण्डलिक राज्यके योग्य भी नहीं रह गया। जिसकी मेरे प्रति इतनी भक्ति थी, उसीकी मेरे द्वारा ऐसी दुर्दशा होगई। हा हन्त।"

"उसके युवराज पद भोगकर राजा बनने विषयक मनोरथपर पानी फिर गया। धन्य है उसके साहसको ! जिसने मेरी अधम आज्ञाका तत्काल पालन कर पितृभक्ति की परिसीमा दिखला दी। यदि माताएँ ऐसे पितृभक्त पुत्रोंको ही जन्म देती रहें तो, संसारके अधिकांश क्लेश एवं संकट दूर हो सकते हैं ; किन्तु पिताके रूपमें तो मैं सर्वदा अधम ही सिद्ध हुआ हूँ। अपने हाथों बोये हुए वृक्षका मैंनेही उन्मूलन कर दिया। हाय, दुर्दैव ! तू मनुष्यको प्रमादी बनाकर कैसे-कैसे दुष्कर्म करा देता है ? न करने योग्य कर्म भी अनायास उसके हाथोंसे हो जाते हैं।"

इसप्रकारके दुःखपूर्ण उद्गार उस युगके .
प्रभावशाली एवं पराक्रमी पुरुषके थे। संस
जैसा समर्थ पुरुष भूल करही डालता है,
भूलका परिणाम भी उतना ही भयंकर
महाराज अशोकवर्धनने कुणालके लिए जो
था, उसे भेजते समय फिरसे पढ़े बिनाही
करके भेज दिया और उसका परिणाम कितना
हुआ ? उसी भूलके परिणाम-स्वरूप अब
वार शोकमें डूब रहा था।

सम्राट् सवेरे थोड़ा दिन चढ़ जानेपर जब
बैठा हुआ राज्यके आवश्यक कागज-पत्रोंको
था कि इतनेहीमें प्रतिहारीने आकर प्रणाम
समाचार सुनाया कि "अवन्तीसे दूत आया है
कोई आवश्यक समाचार लाया है।"

अचानक ही अवन्तीका दूत इतनी शीघ्रतासे
देखकर सम्राट्को प्रसन्नता हुई और उसे तुरन्त
आनेके लिए आज्ञा दे दी। इतनेहीमें अवन्तीसे
हुआ दूत घबराया हुआ भीतर आ पहुँचा और
तैसे महाराजके प्रति विनय प्रकट करते हुए
रक्तरञ्जित लिफाफा भालेकी नोंक पर खोंसकर
राजके सम्मुख रख दिया। यद्यपि दूतके इस

सम्राट् एकदम क्रुद्ध हो उठे ; किन्तु उस रक्तरञ्जित पत्रको देखकर वे एकदम चौंक पड़े। उनका वज्रके समान दृढ़ हृदय धड़कने लगा। फिर भी उन्होंने दूतकी ओर क्रूर दृष्टिसे देखते हुए कहा :—"रे असभ्य गुलाम ! तेरा इतना अशिष्ट व्यवहार ! कोई है यहाँ हाजिर।"

"महाराज ! सर्वनाश होगया ! आपके पत्रने सत्यानाश कर दिया ! आपकी भूलका कितना भयङ्कर परिणाम हुआ ; उसे पत्रमें पढ़नेके बाद मुझे जो दण्ड देना हो, वह दीजिये !"

दूतके वचन सुनते ही सम्राट्के हृदयमें धक्का पड़ गया ! उन्होंने पूछा "क्या अनर्थ हुआ ?"

"वह मैं अपनी जिह्वासे नहीं कह सकता। आप स्वयं पत्र पढ़ लीजिये ! हे भगवन् ! यह पत्र देकर आपको दुःखी करनेके पहले मेरी मृत्यु क्यों नहीं आ गई ? हाय ! धिक्कार है मुझे कि, जो ऐसा पत्र लेकर आपके सामने उपस्थित हो रहा हूँ !"

महाराज धड़कते हुए हृदयसे एकदम उठ खड़े हुए और उसीक्षण प्रतिहारीने भालेमेंसे पत्र निकालकर महाराजके सम्मुख रख दिया। भूख, प्यास और यात्राके श्रमसे अर्धमृत बना हुआ, किन्तु क्षोभके आवेशमें यहाँतक आकर अपना कार्य समाप्त होते ही एकदम

बेहोश-सा होकर जमीनपर गिरपड़ा। तत्क ..
राजका भ्रू सङ्केत पाकर अन्य सेवक उसे उठा
इसके बाद धड़कते हृदयसे अनिष्टकी आशङ्का
राजाने लिफाफा खोलकर पत्रको पढ़ना आरम्भ।
और जैसे-जैसे वह पढ़ता गया, उसकी आँ
अन्धेरा छाने लगा, और खासकर अपने पुत्रसे
रखनेवाला दुःखद समाचार पढ़ते ही वह
चीख मारकर अचेत होकर पृथ्वीपर गिर
उसकी चीख सुनतेही अन्तःपुरकी सभी रानियाँ
वहाँ आ पहुँची। दूसरी ओर सभी दास
इकट्ठे होगये। तत्कालही मन्त्रियोंको बु
दूसरी ओर वैद्योंको भी तत्काल उपस्थित करनेके
सेवक दौड़ाये गये। सब रानियाँ महाराजको
करनेके उपायमें जुटगईं। उनमें तिष्यरक्षिता
प्रयत्नशील दिखाई दी!

थोड़ी ही देरमें मन्त्रीगण एवं वैद्य उपस्थित
अतएव रानियाँ दूर हट गईं और वैद्यलोग मूर्छा
करनेके उपाय करनेके लगे। प्रधानमन्त्री आदि
राजाके पास बैठे हुए थे, किन्तु एकदम महाराज
कैसे होगये? इसे कोई भी न समझ सका।
वैद्योंके प्रयत्नसे महाराज सचेत हुए और आँखें

चारों ओर देखने लगे। इसके बाद रानियाँ एवं दास-दासियोंको वहाँसे चले जानेके लिए आज्ञा दीगई और राजाकी आज्ञा पाकर वैद्यलोग भी चलेगये।

तत्पश्चात् महाराजने वह यमदूत जैसा पत्र मन्त्रीके सामने फैंकते हुए ऊपर लिखे अनुसार विलाप करके अपने हृदयके दुःखोद्गार प्रकट करना आरम्भ किये! मन्त्री भी पत्र पढ़ते ही हताश होगया। ऐसी स्थितिमें महाराजको क्या कहा जाय; इसे वह न समझ सका। उसने देखा कि महाराजके नेत्रोंसे पश्चात्तापकी अविराम अश्रुधारा बह रही है!

फिर भी मन्त्रीने धीमेस्वरसें महाराजको धैर्य बँधाते हुए कहा:—"महारज! अब पश्चात्ताप करनेसे क्या हो सकता है? जो कुछ विधिका विधान होता है, वह होकर ही रहता है। आपने तो बहुत ही सावधानीसे पत्र लिखा होगा। फिर भी दैवकी इच्छासे ही ऐसी घटना घटित हो गयी।"

"हा प्रधान जी! वह मेरा प्राणप्यारा पुत्र सदैवके लिए नेत्रहीन होगया। मेरी आशाका भवन आज एकदम भूमिसात् होगया।"

"विधाताके घटनाचक्रके सम्मुख मनुष्यका क्या वश चल सकता है?"

"उस पत्रको मैंने फिरसे नहीं पढ़ा। यही भयङ्कर भूल हुई। साथही पत्र लिखते समय २स। भूल क्यों हुई ; यही आश्चर्यकी बात है ?"

"महाराज! आपने पत्र लिखकर तुरन्त ही ७ करदिया था, अथवा उसे किसीको पढ़नेके लिए द॰ क्या पत्र लिखते समय आपके पास और भी कोई

प्रधानका यह प्रश्न सुनतेही सम्राट् चौंककर आप ऐसा प्रश्न क्यों पूछ रहे हैं ? क्या इसमें किसी षड़यन्त्रकी गन्ध आती है ? मुझे तो इसमें ही भूल जान पड़ती है।"

"महाराज! मुझे तो ऐसा ही प्रतीत हो। क्योंकि आपके हाथोंसे ऐसी भूल कदापि नह सकती। युवराज कुणालको राज्यका उत्तराधिकारी दिया जानेके कारण उसकी अन्य माताओंमेंसे यह कृत्य हो सकता है।" मन्त्रीने कहा।

"तुम्हारा कथन सत्य है। इसीलिए तो मैंने यहाँसे अवन्तीमें भेज दिया था ; किन्तु इतनी दूर हुए भी दुष्ट विधाताने उसकी अन्य माताओंका न सफल कर ही दिया।"

"तो क्या आपको यह सन्देह है कि लिखनेमें ही कोई भूल हुई है ?"

"अवश्य ही। अन्यथा ऐसी घटना क्यों कर हो सकती है ?"

"हो सकती है, महाराज! आपकी या मेरी इच्छासे जो बात नहीं हो सकती, वही विधाताकी इच्छासे अनायास हो जाती है।"

"जो भी हो; अबतो पुत्रके जीवनके लिए मैं ही उत्तरदायी हूँ। इस गम्भीर भूलके लिए मैं ही दोषी हूँ।"

"तथापि जो सत्य होगा वह किसी दिन प्रकट हुए बिना नहीं रहेगा। कृपया यह तो बतलाइये कि पत्र लिखनेके बाद उसे पढ़नेके लिए किसीको दिया था ?"

"नहीं, किसीने उसे नहीं पढ़ा। केवल पटरानी तिष्यरक्षिता मेरे पत्र लिखनेके समय अवश्य वहाँ आई थी; किन्तु उसने भी पत्र तो नहीं पढ़ा। उसके आते ही मैंने पत्र समाप्त कर उसे एक ओर रख दिया था।"

"उसके पश्चात् ?"

"फिर हम दोनों भोजनार्थ चलेगये।"

"उस समय वह पत्र कहाँ था ?"

"पत्र! स्मरणकरके ठीक है। उसे तो मैं वहीं भूल गया था, किन्तु इसपरसे भी किसीके प्रति सन्देह करनेके लिए कोई कारण नहीं रह जाता।"

"क्यों नहीं रह जाता, महाराज !"

"भोजन करके तत्काल ही मैं यहाँ लौट और उसी समय दूतके आ जानेसे मैंने पत्रको बन्द करके मुहर-सिक्का लगानेके बाद उसे देदिया।

"क्या आप भोजनके लिए पधारे; तब ५८ आपके साथ ही थीं, और क्या वे आपके भोजन करके वापस आने तक भी साथ ही रहीं।"

प्रधानका यह प्रश्न सुनकर राजा विचारमें ५६ उसे उस सुन्दर स्त्रीपर सन्देह हुआ ; किन्तु वह दूर भी होगया। "नहीं ; वह शौचनिवृत्तिके अवश्य गई थी ; किन्तु मेरे भोजन करते रहनेके ही शीघ्रतासे वापस आगई थी।" राजाने कहा।

मन्त्रीने विचार किया :—"अवश्य ही ऊपरसे दिखाई देनेवाली किन्तु अन्तरमें हलाहल-विषसे भरी तिष्यरक्षिताने शौच जानेके बहाने यह क्रूर कर्म कर है।" वह मनही मन समझ गया, किन्तु इसी उस बातको प्रकट करनेसे राजाके क्रुद्ध हो जाने कोई नया प्रपञ्च खड़ा होजानेके भयसे वह उस मौन ही रहा। क्योंकि जो घटना हो चुकी थी ; अघटित कर सकनेकी शक्ति संसारके किसी भी नहीं थी। भवितव्यताका ऐसा ही विधान था।

"मन्त्रीजी ! क्या आपको तिष्यरक्षितापर सन्देह होता है कि उसने शौचके बहाने यहाँ आकर उस पत्रमें कुछ उलटफेर कर दिया होगा।"

"इस विषयमें निश्चित मत कैसे प्रकट किया जा सकता है। देव ! आपको क्या प्रतीत होता है ? उनके द्वारा ऐसा हो सकता है।"

"किन्तु मैंने युवराजके लिए पत्र लिखा है, इसका तो उसे बिल्कुलही पता नहीं था। तब उसके द्वारा ऐसा किया जानेका सन्देह कैसे हो सकता है ?"

"नहीं किया जा सकता महाराज ! आपका अनुमान यथार्थ है। यदि कदाचित् आपसे ही वह भूल हुई हो तो भी अब क्या उपाय हो सकता है ? फिर भी यदि किसी षड़यन्त्रके रूपमें यह कार्य हुआ होगा ; तो मैं उसकी जाँच कराऊँगा।"

"अवश्य पता लगाइये, मन्त्रीजी ! यदि ईर्षावश किसीने अपनी इच्छापूर्ण करनेके बहाने मुझे अपना शस्त्र बनाया होगा तो मैं जीतेजी उसकी चमड़ी उतरवा लूँगा। उसके पाप कर्मका सूद-व्याज सहित बदला चुकाऊँगा।"

"देव ! यह तो जब अपराधी हाथ लगे तबकी बात है, किन्तु अब हमें युवराजके लिए क्या करना

होगा। राज्यके लिये तो उनका अधिकार अब रह गया है।"

"हाय! हुआ तो ऐसाही है। कुछ दिन उसे एक समृद्धिशाली ग्राम दे देना होगा। जिससे वह सुख शान्तिपूर्वक अपना काल निर्गमन कर सके

"तो फिर अवन्तीके लिए क्या प्रवन्ध जाय। वहाँ अभी और किसीको भेजा जाय या नह

"इस विषयमें विचार करना होगा, किन्तु राज्यका अधिकार महेन्द्रको ही प्राप्त होगा। उ माताकी इच्छा होगी तो अवन्ती महेन्द्रको जायगी।"

'इसमें इच्छाका प्रश्नही क्या है? वह तो समयकी प्रतीक्षा ही कर रही होंगी। उसीके द्वारा परिस्थिति उत्पन्न की गई है। फिर भी उसका मान रखना होगा। संसारमें आवश्यकताके समय एक भी महँगा हो जाता है। प्रधान मन-ही-मन बड़ाया।'

इसके बाद और भी इधर-उधरकी उलटी बातें करके मन्त्री चला गया, किन्तु रानी राजाके पास आकर उसकी सेवा-सुश्रूषा करते समय अवन्तीसे आया हुआ पत्र देख गई थी। इसप्रकार

रानियोंके साथ ही अन्य किसीको पता न लगने देकर वह असली रहस्यको भी जान चुकी थी। फिर भी वह सर्वथा अनजानकी तरह अन्य रानियोंके साथ अन्तः-पुरमें चली गई थी, और वहाँ बैठकर महाराजका शुभ चिन्तन करती हुई उनके सचेत होनेकी राह देख रही थी; किन्तु भीतर ही भीतर उसके हृदयमें उथल-पुथल मच रही थी अर्थात् प्रधानमन्त्री और राजाके बीच क्या बातचीत हो रही है, उसे जाननेकी चटपटी लग रही थी। उसने नेत्रोंके सङ्केत-द्वारा श्यामाकी ओर देखते हुए उस दिशाकी ओर मुँह किया और तत्काल ही श्यामा कामके बहाने वहाँसे चली गई। इसके बाद कोई न जान सके, इसप्रकार पीछे की ओर खड़ी होकर उसने सम्राट् और मन्त्रीकी निजी बातचीत सुननेका भरसक प्रयत्न किया और प्रधानके उठकर जानेसे पहले ही वह चुपचाप वहाँसे हठ गई। थोड़ीही देरमें महाराजाके स्वस्थ होनेका समाचार मिला और युवराज कुणालके अन्धे हो जानेकी बात भी अन्तःपुरमें सबको विदित होगई। सभी रानियोंने इसपर अत्यन्त दुःख प्रकट किया। पटरानी तिष्यरक्षिता भी इस समाचारको सुनकर अपार दुःखके साथ हृदय-विदारक रुदन करती हुई महाराजके पास शीघ्रतासे आ पहुँची

और उसने पेटभर रुदनकर अपना शोक प्रकट।
बातही बातमें कुणालके अन्धत्वका समाचार सारे
फैल गया।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

परिवर्तन

—:o:—

समय अपना काम किये जाता है। वह
लिए रुकना नहीं जानता। आज घटित होनेवाली
जैसी हृदय-विदारक घटना भी दिन बीतने पर
उस घावको सुखा देती है, और इसप्रकार क्रमशः
ताजी घटना स्मृतिपट परसे लुप्त हो जाती है। अवन्ति
काकी घटनाके पश्चात् कुछ समय बीत गया। इस
और भी अनेक घटनाएँ घटित होगईं। युवराज कुणाल
अब युवराज नहीं था। उसका अवन्तीका वह वैभव-
विलास एवं आनन्दमय जीवन अब वैसाही नहीं रह
गया था। आज तो वह अन्धा कुणाल राज्यकी ओरसे
मिले हुए अपने ग्राममें रहकर जीवन बिता रहा था।

जगत्की स्वार्थपरायणता तो देखिये ! स्वार्थान्ध दुनिया उदय होनेवालेको ही पूजती है ; अस्त होनेवालेको नहीं । जिस युवराजका किसी समय दिन दूना सम्मान हो रहा था, वही अब उन सबसे वञ्चित हो रहा है। वह अन्धा कुणाल कहाँ पड़ा है ? इसका भी किसीको पता नहीं है। जिस पिताको वह प्राणाधिक प्रिय प्रतीत होता था, उसके हृदयमें से भी वह स्नेहभाव धीरे-धीरे कम होने लगा। समयकी यही विचित्रता है। फिर भी कुणालके मनमें इसके लिए कोई हर्ष या शोक नहीं था। पिताके दिये हुए ग्राममें रह कर अत्यन्त सादगीसे प्रभु-भजनमें वह अपना समय व्यतीत कर रहा था। उसके साथ पुत्रवत् स्नेहवाली धायमाता सुनन्दा एवं अन्य दो-चार दास-दासियाँ रहती थीं। पूर्ण शान्तिमय जीवन व्यतीत करनेवाले कुणालका समय प्रभु-भक्तिमें ही व्यतीत होता था। फिर भी उसकी धायमाताको उसकी दशापर बहुत दुःख होता था। इसी पश्चात्तापके मारे वह सूखकर आधी रह गई थी, किन्तु अब तो अन्य कोई उपाय ही नहीं था। अवन्तिका छोड़ते समय तो उसके दुःखकी परिसीमाही हो गई थी, किन्तु दैव गतिके सम्मुख वह लाचार थी।

'महाराजके पत्रसे इतना तो स्पष्ट होगया था कि,

उन्होंने कुमारको अन्धा करनेके लिए ।ज्ञ
दी थी ; वरन् वे चाहते थे कि अब कुणाल
करें-पढ़ें ; क्योंकि वही उनकी समस्त ।
आधार रूप था, किन्तु 'अधीयऊ'के बदले अ
उनके हाथसे कैसे लिखा गया, यह समझमें नहीं
था। फिर भी उसने पिताकी इस आज्ञाका
उन्हें जीवित ही मार दिया और मेरी उस ...
फेरदिया।' इस प्रकार सम्राट्-अत्यन्त दुःखी
उन्होंने रुदन करते हुए हृदयसे कुणालको एक
वाला ग्राम प्रदान कर सुख-शान्तिपूर्वक जीवन
करनेका प्रबन्ध कर दिया। किन्तु धायमाता ...
इस बातपर दुःख हो रहा था कि,—'युवराजने
न रखकर जल्दीसे पत्रमें लिखी बातका
दिखाया! अन्यथा दुबारा पाटलीपुत्रसे
मँगवाया होता तो सब बातोंका खुलासा हो
साथ ही उस पत्रमें उसे सौतेली माताके
गन्ध आ रही थी। चाहे जिस रानीने
चनाकर यह कार्य साधा है। आज उसका ...
होगया है, किन्तु मेरे और कुणालकी स्वर्गीया
मनोरथ पर पानी फेर दिया है।' इन्हीं सब
वह दुःखित होकर रो पड़ी। यह रुदन तो ...

अब सदैवका हो गया था ; क्योंकि दुःखके समय स्त्रीके लिए रोनाही एक सबसे बड़ी शक्ति है। अरे! 'स्त्रियोंकी तो बात ही क्या, किन्तु दुःखके समय क्या समर्थ पुरुष भी बालककी तरह नहीं रोने लगजाते ?'

साठ हजार पुत्रोंके भस्म कर दिये जानेके समाचार जब दूसरे सगर-चक्रवर्तीने सुने :—तब उनका हृदय विदीर्ण होने लगा, किन्तु उस समय किसीको रोना नहीं आता था ; इसलिए शक्रेन्द्रने देखा कि सगरका हृदय फट जायगा ; अतः उसने ढाड़ मारकर रोना आरम्भ कर दिया। उसका अनुकरण कर दूसरा चक्री भी पुत्रोंके दुःखसे ढाड़ मारकर रोने लगा ; और इस प्रकार उसने अपने हृदयका आवेग हल्का किया।

बेचारी सुनन्दा रो-रोकर आधी होगई थी। एक दिन उसे रोती हुई देखकर कुणालने कहा :—"माता! तू क्यों रुदन करती है? इसप्रकार रो-रोकर तू दूसरों को भी दुःखी करती है!"

"अरे बेटा! तूने तो हमें जीतेजी ही मार डाला। तेरी स्वर्गीया माताके मनोरथ और मेरे मनोरथको तूने व्यर्थ करके अपनी सौतेली माताका मनोरथ पूर्णकर दिया। हाय! यह सब मैं कैसे देख सकूँगी?" इस प्रकार सिसकती हुई सुनन्दाने कहा।

"किन्तु अब क्या हो सकता है? हो ०। टल नहीं सकती। जो होनेवाला है, वह तो ही रहता है। अपना सोचा हुआ कैसे घटित हो है?" कुणालने समझाया।

"हाय! आज मेरे हाथ नीचे होगये। ... तुम्हारी अवन्ती नगरी और जिस महलमें तुम ... बालक्रीड़ा करते थे; तथा जिस समृद्धि-वैभवका करते थे, उसे आज महेन्द्र भोग रहा है। वह कि. आनन्द और सुखपूर्वक जीवन बिता रहा है!"

"इससे क्या हुआ? महेन्द्र भी आखिर मे ही तो है? अवन्ती किसी शत्रुके तो ० चली गई नँ; कि जिससे तू दुःखित हो रही है दोनों एकही पिताके पुत्र हैं। उसे सुखी ... सुखी हो सकूँगा।"

"बेटा! राजाकी जरासी भूलका कितना परिणाम होगया! और फिर तुमने तो जरा भी रखा! नहीं तो ऐसा भयङ्कर परिणाम कभी न ०

"किन्तु जैसा मेरे भाग्यमें था, वही हुआ! उनका क्या दोष? पुत्रके रूपमें मेरा यही कि पिताकी आज्ञा कैसी भी क्यों न हो; उसका करना ही मेरे लिये उचित ही था!"

"यह तो ठीक है! किन्तु मुझे तो केवल इसी बातका दुःख है कि पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए तू सौतेली माताके षड़यन्त्रका शिकार हो गया!"

"इसमें षड़यन्त्र क्या हो सकता है? तुम स्त्रियोंको तो हर बातमें सन्देह हो जाता है।"

"पुत्र! तू इस रहस्यको नहीं समझ सकता। वह सबतो मैं पता लगाऊँगी कि यह काला कर्म किस शंखिनीका है? तभी तू जान सकेगा कि तेरी सौतेली माताने कैसा भयङ्कर पाप-कार्य किया है?"

"माता, तू तो व्यर्थकी शङ्का करती है! क्या मैं अपनी सौतेली माँका शत्रु था कि, जिसके कारण उसे ऐसा कर्म करना पड़ा? यह तो पिताजीके हाथों प्रमाद-वश भूल हुई है! किन्तु अब उससे प्रयोजन ही क्या है? कितना ही क्यों न करें, फिर भी नयी आँखें तो अब नहीं आ सकतीं!"

"पुत्र! तुझे अवन्तीमें रखनेका कारण ज्ञात है? तेरी माताकी मृत्युके पश्चात् महाराजने तुरन्त ही तुझे युवराज-पद प्रदानकर बाल्यावस्थासे ही अवन्ती क्यों भेज दिया था?"

"मुझे किसलिए अवन्ती भेज दिया था; इसे तो तू ही बतला सकती है!" कुणालने कहा।

"तेरी सौतेली माताएँ नहीं चाहती
राज्यका उत्तराधिकारी बने। उनमें भी ति
तेरे प्रति विशेष निर्दयी थी; क्योंकि तेरे
पदके कारण उसके महेन्द्रका साम्राज्याधिपति
अधिकार छिन गया था। भला, ऐसी क
होगी जो कि अपने पुत्रका भला न चाहती ?

"तो उस सौतेली माताके सङ्कटसे बचानेके
पिताने मुझे अवन्ती भेज दिया था; यही बात
सुनन्दाके कथनकी पूर्ति करते हुए कुणालने कहा

"हाँ, उन विषमयी नागिनोंका विष तुझे
कर सके और तू सुरक्षित एवं सुखपूर्वक
इसीलिए विश्वस्त व्यक्तियोंके साथ तुझे अवन्तीमें
गया था, किन्तु दूर रहते हुए भी तेरी अपर
तो अपना मनोरथ सफल कर ही लिया!"

"किन्तु इस प्रकार सन्देह करके किसी पर
रोपण नहीं किया जाता, माँ!"

"इसलिए तो मैं सत्य वस्तुका पता लगाकर
मनोरथको विफल करनेका प्रयत्न करूँगी!"

"अरी! तू क्यों व्यर्थ इस प्रकारकी उलटी
कर रही है? भला, तू उनका मनोरथ कैसे
सकती है? क्या तू फिरसे मुझे नयी आँखें प्राप्त

सकती है ?" इसप्रकार मुसकुराते हुए कुणालने सुनन्दाको शान्त करनेका प्रयत्न किया !

"पुत्र ! यह तो मनुष्यकी शक्तिसे बाहरकी बात है ! इस समय तो मैं जीते हुए भी मृतकके समान हूँ, किन्तु यह कृत्य किसका है ; इस बातका तो पता अवश्य लगाऊँगी !"

"जो तुझे ठीक जान पड़े, सो करते रहना, किन्तु व्यर्थके लिए रोती क्यों है ?"

कुणालने यद्यपि सुनन्दाको बहुत कुछ आश्वासन दिया ; फिर भी स्त्रियोंका हृदय तो माया-ममतासे परिपूर्ण होता ही है। विशेषकर स्त्रियोंको ही संसारके माया-मोह और वैभव अधिक प्रिय होते हैं। अतः जिस प्रकार उन्हें इनके समागमसे हर्ष होता है, उसी प्रकार, प्राप्त उच्चस्थितिसे एकदम नीचे गिर जानेपर विषादकी छाया भी उनपर पड़े बिना नहीं रहती, किन्तु कुणालके मनमें तो अवन्तीका राज्य-वैभव और आजकी स्थिति, दोनोंही समान थीं। इस समय उसमें धीरता, गम्भीरता और विवेक-भावकी ही प्रधानता हो रही थी ; कुमारावस्थाकी चञ्चलता नामको भी नहीं थी। उसे केवल जीवितही नहीं रहना था, वरन् पितृ-भक्तिही उसका जीवन था। जिस प्रकार हरिश्चन्द्रके

लिए 'सत्य' ही जीवन था। रामके लिए
जीवन था। अथवा भक्तके लिए प्रभुभक्ति
मन्त्र होता है। सती नारीके लिए पतिभक्ति
होता है। दयाके सागरके लिए अहिंसाही
होता है। तपस्वियोंके लिए उनका व्रत
रूप होता है और जिसका यह जीवन
वही संसारमें जीवित है। अन्यथा यों तो
माता-पिता पुत्रोंको जन्म देते हैं; किन्तु उससे

किन्तु 'सुनन्दाके दुःखकी तो सीमाही
उसके मतानुसार तो यह सब परिवर्तन जिस
राजाको शस्त्र बनाकर करवाया था; उससे
शत्रुताका प्रतिशोध करना ही अभीष्ट था
लिए उसने निश्चय कर लिया था।

हम यह तो जानही चुके हैं कि
तिष्यरक्षिताने भी कुणालके लिए शोक प्रकट
बहाने पूरा प्रयत्न कर अपने हृदयका उभार
दिया था। थोड़े दिन बीत जानेपर
कुणालको एक बहुत अच्छा भरा-पूरा गाँव
देकर उसके लिए सब प्रकारसे उचित प्रबन्ध कर
कुणालके पश्चात् राज्यका उत्तराधिकारी महेन्द्र
अतएव उसे युवराज बनाकर अवन्ती प्रदान

विचार किया और इसके लिए उन्होंने तिष्यरक्षितासे सलाह माँगी।

यद्यपि तिष्यरक्षिताने पहले तो उदासीनता-सी बतलाई ; किन्तु बादमें प्रसन्न होते हुए भी ऐसा भाव प्रकट किया मानों अत्यन्त दुःखित होकर वह अनुमति दे रही है। इस प्रकार थोड़ेही दिनोंमें महेन्द्र राजकुमार न रहकर युवराज बनगया और इसके बाद वह राज्यके उत्तराधिकारीके रूपमें अपने मन्त्रियों तथा विश्वासी-जनोंके साथ मालव-प्रदेशकी ओर विदा होगया।

तिष्यरक्षिताके हृदयमें अब हर्ष की कोई सीमा नहीं रह गई थी। जो शूल बहुत समयसे उसके हृदयमें चुभ रहा था ; वह उसकी युक्तिसे निकल गया और उसका पुत्र युवराज-पद प्राप्त कर चुका था। वह भावी भारतके साम्राज्यका मुकुटधारी बन गया था। अवन्ती जाते समय उसने पुत्रको अनेक प्रकारसे सिखावन दी और हर्षाश्रुके साथ विदा किया। अपने विश्वस्त दास-दासियोंके साथ श्यामाको भी उसने महेन्द्रकी रक्षाके लिए साथमें अवन्ती भेजा। इस प्रकार कुणालके स्थान पर आज महेन्द्र अवन्तीमें मन-माना वैभव भोगता हुआ सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत कर रहा था। चपल लक्ष्मीकी चञ्चलता तो देखिये कि इस संसारमें वह किस

चालाकीसे राजाको रङ्क बना देती है। आश्चर्य तो यही है कि महान समर्थ आत्मा सत्य छोड़कर उसके पीछे पागल बनते हुए अनेक कष्ट भोगता है।

सोलहवाँ परिच्छेद

वह चन्दा कौन थी?

—:०:—

"बाई साहब! क्या आप मुझे अपनी सेवामें की कृपा करेंगी?" एक गरीब-सी दिखाई दे दिखनौटी वालाने अवन्तीके राजमहलमें पहुँच प्रभावशालिनी महिलासे पूछा।

उसने तिर्छी नजरसे उस गरीब स्त्रीकी ओर उसे प्रतीत हुआ कि यह तो पहले कहीं देखी मुखाकृति है; किन्तु कहाँ देखी थी, इसका नहीं हो रहा था। अतः उसने उसी ठसकके उससे पूछा :—"तू कौन है? कहाँसे आ मुझे ऐसा लगता है कि तुझे पहले भी कहीं देखा है

"मुझे देखा है! अवश्य देखा होगा;

मैं भी इसी नगरमें रहती हूँ। इसीसे सम्भव है कहीं मुझे आपने देखा भी हो। मैं हूँ भी राजपूत की पुत्री; किन्तु........!" वह एकदम बोलते-बोलते रुक गई।

"तो क्या? क्या तेरा कोई सगा-सम्बन्धी नहीं है!"

"न कोई सगा है न स्वजन ही! ऊपर आकाश और नीचे धरती, येही मेरे संग हैं, जो मुझे इस जगत्में पड़ी रहने दे रहे हैं! राजपूतकी बेटी होनेसे कोई काम धंदा तो कर नहीं सकती; तब निर्वाह कैसे हो सकता है? अतः आप यदि आश्रय दें, तो आपकी सेवा करके सन्तुष्ट करते हुए जीवन बिता सकूँगी।" उसने नम्रता-पूर्वक कहा।

"तू क्या काम करेगी? और तेरा नाम क्या है?"

"मुझे चन्दा कहते हैं! आप जोभी काम देंगी, वह सब करूँगी!"

"किन्तु चन्दा! तू एक अपरिचित लड़की है, और ऐसी अनजानी लड़कीको रखना बहुत बड़ी जोखिमदारीका काम है। उसमें भी फिर यह राज-काजका स्थान है, यह तो तू जानती ही है। राज्यमें अनेक प्रकारके प्रपञ्च चलते रहते हैं। ऐसी दशामें तल-वारकी धारपर रहना पड़ता है। इस बातका शायद तुझे पता नहीं होगा! तू अभी बच्ची भी है!"

"हाँ, मुझे आपकी राज-रीतिका अनुभव है ; किन्तु आपकी सेवामें रहते हुए मैं थोड़ेही सब जान लूँगी। जैसे भी होगा, मैं आपके सहायक ही सिद्ध हो सकूँगी।"

"अच्छी बात है! आजसे तू मेरी रहेगी। किन्तु याद रखना यदि तूने मेरा [illegible] कर लिया तो तू सुखी रहेगी और तेरी [illegible] किसी व्यक्तिसे तेरा विवाह भी करदिया [illegible] यह कहते हुए वह प्रौढ़ा मुसकुराई!

वह ठसकवाली स्त्री तिष्यरक्षिताकी [illegible] श्यामा ही थी। श्यामा राजकुमारकी पटरानीकी मनैती दासी होनेसे यहाँ अवन्तामें युवराजकी सार-संभालका काम स्त्रीवर्गमें उसीको सौंपा गया था। अतः श्यामा यहाँ ठाट-पाटसे रहती थी। अन्तःपुरकी सभी [illegible] श्यामा महारानीके समानही समझी जाती और शासन भी करती थी।

नौकरीकी आशासे आई हुई चन्दाने अपने नयमें इस प्रकार सफलता प्राप्त की और श्यामाके काजमें पूरा-पूरा हाथ बटाकर वह उसे प्रसन्न भी भरसक प्रयत्न करने लगी, किन्तु उसने [illegible]

श्यामाकी नौकरी करनेका नाटक किस उद्देश्यसे किया था ; इसे तो उसका हृदयही जान सकता है किन्तु फिर भी उत्साहपूर्वक सब प्रकारकी सेवा और काम-काज करके उसने अल्पकालमें ही श्यामाका विश्वास सम्पादन कर लिया। इतना ही नहीं, वरन् 'वचने का दरिद्रता'के अनुसार मधुर वचनों-द्वारा उसने समस्त दास-दासियोंको रिझाकर उनके मन भी जीत लिये।

इस बीच कितनाही समय व्यतीत होगया। एक-दिन श्यामा पलंगपर लेटी हुई थी और उसके सिरपर कोई दवा चुपड़कर मल रही थी। बिस्तर पर सोते हुए श्यामा किसी विचारमें निमग्न थी। उसका शरीर आज कुछ अस्वस्थ था। अतः उसकी सेवा-परिचर्यामें चन्दाने कोई कसर नहीं रहने दी। उसके सिरमें दर्द होनेसे जो बेचैनी बढ़ गई थी, वह चन्दाकी परिचर्यासे बहुत कुछ कम होगई!

"बाई साहब! महेन्द्रकुमारकी आप इतनी सावधानीके साथ पुत्रसे भी अधिक देख-रेख रखती हैं! तो क्या ये आपके ही पुत्र हैं? अथवा और कोई कारण है?" इसप्रकार चन्दाने सहजभावसे पूछा। सुखमें रहनेसे उस बालाका लावण्य विकसित हो रहा था।

"अहा! चन्दा! यह महेन्द्र मेरा पुत्र हो सके ;

ऐसा मेरा भाग्य कहाँ! फिर भी मैं इसे पुत्रसे चाहती हूँ; यह तेरा कहना ठीक है।" लगाती हुई शय्या पर लेटी हुई श्यामाने उत्तर यद्यपि अशान्तिके कारण उसकी वाणी कुछ धी

"मैं समझ गई! आप उन्हें पुत्रसे अधिक चाहती हैं?" चन्दाने हँसकर कहा।

"तू क्या समझी? चन्दा!" यों श्यामाने पूछा।

"महेन्द्र युवराज हैं, और भविष्यके भारत हैं, इसीलिए! ठीक है नँ?

श्यामाने कहा:—"यह भी ठीक है और दूस कारण है?" "और क्या कारण हो सकता है?" पूछा। जिसने अभी सोलह दीपावलियाँ भी नहीं थी, ऐसी वह बाला गम्भीर बन गई!

"युवराजकी मैं धायमाता हूँ। साथही पटरानीकी मैं मनौती सखी भी हूँ।"

"अच्छा! यह बात है! तभी आप यहाँ जैसा वैभव भोग रही हैं।" कोई नवीन बात आश्चर्य चकित होने जैसा भाव बताते हुए विनयपूर्वक कहा।

"अवश्य! चन्दा! संसारमें मनुष्य प्रयत्न

इच्छित वस्तु प्राप्त कर सकता है। मैं भी पहले तेरे जैसी स्थितिमें ही थी, किन्तु अपनी चतुराईसे मैं महारानीजीकी कृपापात्र सखी बनगई और युवराजकी धायमाता भी हो सकी।

"बाई साहब! आप सचमुचही भाग्यशालिनी हैं! संसारमें पुण्यवती हैं। इसीलिए आपके सभी मनोरथ-पूर्ण हो सके और आप इतनी आगे बढ़ गईं।" चन्दाने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा। हम दोनों ही नारी-जातिकी हैं; किन्तु कहाँ आप और कहाँ मैं?"

अपनी प्रशंसा सुनकर श्यामा मुसकुराते हुए बोली, "चन्दा! अवश्य तू भी मेरी सेवा चाकरी करेगी तो मैं तुझे निहाल कर दूँगी! अभी कोई बहुत देर नहीं हुई है। उदय होकर तू भी अभी तो सीधी-सादी बन रही है।"

"राम-राम! हम गरीबोंका भाग्य तो गरीबही हो सकता है, बाई साहब! चाहे जैसा होनेपर भी ध्रुवका तारा चन्द्रमाकी बराबरी थोड़ेही कर सकता है! भला, दीपक सूर्यसे स्पर्धा कैसे कर सकता है?" इसप्रकार चन्दाने श्यामापर अपनी मीठीवाणीका खासा जादू चलाते हुए फिर कहा:—"बाई साहब! हम जैसे मनुष्योंपर तो आपको दयादृष्टि रखकर अपना विश्वास

पात्र बनाना चाहिए। इससे आपका भी भला क्योंकि भला करनेवालेका भला ही होता है।"

"धीरज रख! कोई ऐसा अवसर आवेगा उसमें विशेषरूपसे भाग दिलाकर आगे अपनी प्रसन्नताका परिचय दूँगी!"

"गरीबोंका तो भाग्यही उलटा होता है भी आपकी दयादृष्टि है, यही हमारे लिए बात है? नहीं तो संसारमें घड़ी-घड़ी छाया रहती है। प्रत्यक्ष यहाँका ही उदाहरण जिस युवराज कुणाल पर महाराजकी पूर्ण उसाकी अन्तमें क्या दशा हुई!"

चन्दाकी वात सुनकर श्यामा मनमें हँसी। कहा—"सच है चन्दा! कुणाल महाराजका था, किन्तु........!" और वह वोलते-वोलते

"किन्तु फिर क्या हुआ, वाई साहव! जिन राजकी कृपादृष्टि थी वे ही अप्रसन्न होगये! नहीं, मैं भूली! पत्र लिखनेमें महाराजके हुई और उस वेचारेका भाग्य फूट गया। कितनी भूल हुई?" चन्दाने उसके प्रति दयाभाव प्रकट हुए कहा—फिर भी जो हुआ वह अच्छेहीके लिए नहीं तो आपके विना मेरी आज न जाने क्या

होती! अरे रे, बाई साहब! आप न होती तो मैं मर ही गई होती!" इस प्रकार उसने फिर बातकी चाबी मरोड़ दी। उसकी यह असल बातका पता लगानेकी अद्भुत युक्ति थी।

"अरी पगली! भला, जो सारी दुनियाका राज चलाता है, वह ऐसी भूल कभी कर सकता है?" धीरेसे श्यामाने अपनी प्रिय सखीके सम्मुख हृदयका गुप्त गुब्बार बाहर निकालना आरम्भ किया।

"मुझे भी ऐसा ही लगता है कि इस प्रकारकी भूल नहीं होनी चाहिए! इसमें कोई रहस्य भी हो सकता है; किन्तु उसे आप जितना जान सकती हैं, उसका पावभाग भी हमें कैसे ज्ञात हो सकता है? बड़े-बड़े राजा-रजवाड़ोंमें तो ऐसा होता ही आया है। यह कोई नयी बात थोड़े ही है?"

"तो बस, समझले कि ऐसे ही किसी प्रपञ्चका यह परिणाम है! भला, हमारा महेन्द्र बिना राजपाटके पराधीन बनकर अपना जीवन व्यतीत करे और वह बिना माँका लड़का राजाका प्रिय पुत्र बनकर राजपाट भोगे; इसे मैं और महेन्द्रकी माता कैसे सहन कर सकती थी? भले ही महाराजने उसे अपना कृपापात्र बना लिया; किन्तु उससे क्या हो सकता है?"

"आप सत्य कह रही हैं, बाई साहब ! ...
उन्नति कौन माता नहीं चाहेगी ? उस ...
मार्गमें यदि कोई बाधा डालता हो तो उसे ...
लिए तो माता अवश्य ही प्रयत्न करेगी !"
श्यामाकी 'हाँ में हाँ' मिलाकर सखी बात ...
प्रयत्न किया।

"अवश्य करेगी ! इसीलिए वह महारा...
प्रिय होनेपर भी मेरी प्रिय सखी ...
काँटकी तरह जान पड़ता था। अतएव ...
प्रकार युवराज पदसे हटानेके लिए हम ...
अवसरकी प्रतीक्षा कर रहीं थीं और चन्द्र...
कहूँ तो यह सब मेरी ही सिखावनका ...
यदि मैंने महारानीको न समझाया होता ...
हिम्मत न बढ़ाई होती तो आज हमें यह ...
नसीब होता ?" श्यामाके मुखसे इस प्रकार
शब्द बड़ी ठसकके साथ निकल रहा था। ...
पर विश्वास भी था। फिर बातके आगे
विषयमें भी अब उसे कोई पर्वाह न थी।
लोगोंको दबानेकी उसमें अद्भुत शक्ति थी।
होनेपर किसीको मरवा देना या उसकी खाल
देना ; उसके लिए बच्चोंके खेलकी तरह था

कारण उसमें इतनी निर्भयता और बेपर्वाहीकी भावना आगई थी।

"धन्य है, बाई साहब ! आपकी चतुराई पर तो मैं निछावर हो जाती हूँ ! आपने भी खूब चालचली ! भला, यह तो कहिये कि आपकी कौनसी युक्ति सफल हुई कि जिससे लक्ष्मी स्वयं आकर आपकी दासी बनगई ?" अपनी प्रशंसा सुनकर श्यामाका हृदय बाँसो उछलने लगा और उसका सिर दर्द न जाने कहाँ लुप्त होगया। चन्दाके मुख-कमलसे निकलते हुए शब्द स्वयं नारी होते हुए भी उसे बड़े ही मधुर जान पड़े।

"बस, केवल एक ही युक्ति ! एक ही चाल ऐसी चली कि चन्दा ! बेड़ा पार होगया। सखी तिष्या हमेशा किसी अनुकूल समयकी राह देख रही थी ; वह मौका एकदिन मिलगया।"

"अच्छा ! तब तो महारानी साहब भी बड़ी भाग्य-वान हैं। वास्तवमें ही एकबार मुझे ऐसी महा समर्थ राजरानीके दर्शन अवश्य करने चाहिए। जिससे कि मुझ जैसी अनगढ़ छोकरीमें भी थोड़ी बहुत बुद्धिका संस्कार पड़ सके।"

"यदि तेरी इच्छा होगी तो मैं तुझे किसी अनुकूल समय महारानीजीके पास भी भेज दूँगी, अरी !

उनकी तो मैं बात ही क्या कहूँ ? यदि
तो सर्वस्व दे डालने जितनी उदार हैं।
उनका हृदय है !"

किन्तु इस प्रकार विशेषरूपसे ठीक
बातका ढङ्ग बदल जानेसे चन्दाने फिर कहा
साहब ! आपकी बातें तो ऐसी अनोखी हैं
सुननेसे हम जैसी मूर्खाओंमें बुद्धि आ
आपके एक-एक शब्दकी मिठासका तो मैं
कर सकती। उसके लिए भला, मैं किसकी
आपकी बातोंमें मुझे इतना रस आता है
पाससे उठने तककी इच्छा नहीं होती।
आप पुरुष होतीं......" बोलते-बोलते चन्दा
उसका गौर-वदन खिल उठा।

"मैं पुरुष होती तो तू क्या करती ?
आसक्त हो जाता ?" श्यामाको भी इस
रस आ रहा था, अतएव वह भी हँसपड़ी।
होने लगा, मानों मैं पुरुष हूँ और यह चन्दा
बैठी हुई प्रियतमाके समान है।

"अवश्य ही बाई साहब ! भला, ऐस
समान चतुर एवं मृदुभाषी और सुन्दर पति
भाग्यशालीको ही मिल सकता है।" इस प्रकार

श्यामाके साथ मीठी-सी चुटकी लेते हुए बोलनेमें तो हद ही करदी। उसने फिर प्रसङ्ग चलाकर पूछा, "हाँ, तो आपकी किस चतुराई भरी युक्तिने भाग्यके पर्दे खोला दिये?"

"बस, केवल एकही मनचाहा मौका मिलगया! एकदिन महाराज कुणालके नाम पत्र लिख रहे थे। जैसे ही पत्र समाप्त हुआ कि इतनेहीमें मेरी सखी तिष्या वहाँ जा पहुँची। महाराजने पत्र लिखकर एक ओर रख दिया और फिर दोनोंका तो तू सब जानती ही है।" श्यामा कहते-कहते फिर हँसपड़ी। उसने प्रेमातुर होकर चन्दाके गलेमें अपने दोनों हाथ डाल दिये!

"क्या?" अनजान-सी बनकर चन्दाने पूछा!

"क्या? और क्या होगा? तू बड़ी बातूनी है। मुझसे सब भेद जानलेना चाहती है। बस, समझले कि मैं इस समय यदि पुरुष होती तो तू क्या करती? और मैं तेरे साथ क्या करती?"

"ओह; तब तो मैं आपकी चतुराईपर मुग्ध हो जाती और अपने प्रेमरससे आपको सराबोर कर देती। वरमाला भी मैं आपहीके कण्ठमें पहनाती!" चन्दा भी कहते-कहते हँसपड़ी और श्यामासे लिपट गई!

"तो इसप्रकार महारानी तिष्याने राजाको प्रेम-

रसके हिंडोलेमें झुलाते हुए पत्रकी बात भुलादी
वे दोनों भोजन करने गये; और पत्रकी
हृदयमेंसे एकदम निकल गई; किन्तु चाणक्य
तिष्या उसे भूली नहीं थी। अतः राजाको
छोड़कर वह किसी बहाने वहाँसे खिसक गई
कमरेमें जाकर शीघ्रतासे पत्र पढ़ लिया और
सलाईसे 'अ'-कार पर एक बिन्दुमात्र लगा दिय
उतनेहीसे बेड़ा पार होगया!"

"यह सब आपने अपनी आँखोंसे देखा या महारानीजीके कहने परसे कह रही हैं!" च
पक्की करनेके लिए फिर पूछा।

"लेकिन मैं भी कुछ कम थोड़े ही थी! महारानीका यह कार्य मैं छुपे हुए देख रही थी
ही नहीं वरन् उस पत्रमें एक बिन्दी बढ़ाकर
बाहर निकली कि तुरन्त मैं उसके सामने जा
इसलिए तत्काल उसने जो कुछ किया, वह सब
दिया और उसके बाद मैं वहाँसे चलदी। उधर
महाराजके पास भोजनालयमें जा पहुँची।
अवसरके साधनेका जो परिणाम हुआ वह
बात है। ऐसा न होता तो मैं आज अवन्तीके
बदले पाटलीपुत्रके एक कोनेमें पड़ी सड़ती

"धन्य है आपको ! अच्छी युक्तिसे काम लिया ! आपकी गोली तो ठीक जमालगोटेकी तरह रामबाण सिद्ध हुई। तो क्या फिर महाराजको इस बातका पता नहीं लग सका।" चन्दाने विशेष रूपसे पूछना आरम्भ किया।

"भला, उन्हें कैसे पता लगता ? हमारी चालाकीके सामने सब पानी भरते हैं। स्त्रियोंकी चालाकीके सामने भी कहीं पुरुष टिक सके हैं ? राजाने एकदम वह पत्र अवन्ती भेज दिया ; किन्तु जब उसके परिणामका राजाको पता लगा ; तब भी किसी पर उनको सन्देह नहीं हुआ। उन्होंने समझ लिया कि मेरे ही प्रमाद से यह भूल हुई है, किन्तु हाँ......... !"

"क्या किसी तरह यह गुप्त बात प्रकट होगई ?" चन्दाने उसके रुकनेपर से शङ्का की।

"प्रकट तो कैसे हो सकती है ! किन्तु राजाका एक डेढ़ अकलवाला मन्त्री है। वह महाराजको अनेक प्रकारसे उलटा सीधा समझाना चाहता था। परन्तु महारानी तिष्यरक्षिताने उसे एकान्तमें इस तरह मौतकी धमकी दी कि वह एकदम सीधी सड़क ही बन गया। जब उससे इस बातकी कठोर प्रतिज्ञा करवाली कि इस विषयकी कहीं भनक भी न सुनाई देगी, तब जाकर वह जीवित रह सका। नहीं तो उसी समय उसकी मौत

उसे पुकार रही थी, समझी !" इसप्रकार उत्साह बढ़ाया जानेपर बातों-हीं बातोंमें ॰। घटना सत्य-सत्य बतला दी, और इससे ७. भी कुछ हल्का होगया।

अपने पर उसे कहीं सन्देह न हो, इसलिए फिर विनोद-पूर्वक कहा :—"हे परम कृपालु प्रिय बाई साहब ! यदि आपको श्यामाके श्यामलाल बनादें तो कैसा अच्छा हो !"

"तब तो फिर मैं राजा और तू रानी बन क्यों ठीक है नँ ?" श्यामाने जोरोंसे उसे टाते हुए कहा ! उस बातचीतमें उसे इतना रहा था कि उसका वह दर्द ही न जाने कहाँ च॰

"मैं निश्चित ही कहती हूँ कि यदि आप तो अवश्य आप राजा बनतीं। मैं समझती हूँ इस चतुराईकी आगे चलकर अवश्य ही महाराज चद्ध न कदर-कीमत भी करते !"

इतनेहीमें महेन्द्रके वहाँ आजानेसे उनकी २स रंगकी बातचीतमें विघ्न पड़ गया और भी दासियाँ दौड़ती हुईं आकर महेन्द्रकी परिचर्या गईं। चन्दाने भी एकदम सुखकी साँस ली अपने काम-काजमें लग गई।

सत्रहवाँ परिच्छेद

कुणालकी प्रभु-भक्ति

—:o:—

आशाओंके पाशमें फँसा हुआ मनुष्य समय वीतता जाने पर भी अपनेको अजर-अमर मानकर निरङ्कुशता-पूर्वक संसार चक्रमें आगे-ही-आगे वहता चला जाता है। सुखी मनुष्यको चाहे जितना समय व्यतीत होजाने पर भी उसका भान नहीं होता। उसी प्रकार दुखिया मनुष्यका भी एक-एक क्षण युगके समान वीतने पर भी उसका जीवन स्वप्नके समान पूरा हो जाता है। कालका जैसे कहीं आदि नहीं है, उसी प्रकार कहीं अन्त भी नहीं है। वह तो प्राणिरूप पात्रोंको संसारचक्रमें कर्मके निमित्तसे अनेक प्रकारके नाच नचाकर निर्भयतापूर्वक आगे वढ़ता ही चला जाता है। युवराज कुणालको भी अन्धा वने आज दस वर्षोंसे अधिक समय व्यतीत हो चुका था। वह आठ वर्षका कुमार न रहकर आज वीस-वाईस वर्षका युवा वन चुका था। जो लोग युवा-वस्थामें थे उनकी जवानी वदल कर प्रौढ़ावस्थाके चिह्न दिखाई देते थे। वे प्रौढ़ावस्थाके दुःखोंको अनुभव कर रहे थे। पुद्गल-समूहसे वना हुआ यह शरीर अनेक

प्रकारके परिवर्तनोंको धारण करता हुआ अ
रूपमें बदलता जा रहा था।

इस बीच कितनी ही घटनाएँ घटित ह
संसारकी रंगभूमिपर घटित न हो सके ऐसा
नहीं है। अन्ध कुणाल प्रभु-भक्तिमें बहुत आगे
था। उसके भजनोंकी धुन, सितारके म
उसके कण्ठकी मधुरता सभी अपूर्व थे। उसमें
उसके हृदयमेंसे निकलता हुआ वह भावपूर्ण म
तो कुछ निराला ही था। उसकी प्रवीणताकी
भी बहुत ऊँची थी। सुननेवाले उसकी
तानमें डूब-से जाते थे। खाना-पीना तक भूल
भक्तोंकी मण्डली एकत्र करके कुणाल अपने
इसप्रकार प्रभु-भक्तिमें पूर्णतया प्रवृत्त कर
भक्तिरस प्रधान गीतोंमें उसकी ख्याति
बढ़ गई थी कि दूर-दूरसे लोग आकर उसके मधु
निकलते हुए भक्तिरसका पानकर तृप्त हो जाते

किन्तु इतना समय व्यतीत होजानेपर भी
हृदय उसी प्रकार शोकपूर्ण ही बना हुआ था।
प्रार्थना करती कि :—"हे प्रभु! क्या मुझे
इसीप्रकार समय व्यतीत करना होगा? हे नि
अवलम्बन! अनाथोंके नाथ! हमारी

यही परिणाम होना चाहिए था ? क्या आप दुर्जनोंके ही मनोरथ सफल करते रहेंगे ? संसारमें लोग कहते हैं कि सत्यकी विजय होती है, किन्तु हमें तो उससे उलटाही अनुभव हो रहा है। हा ! दैव !! यदि आपमें कुछ शक्ति है तो हमें ऊपर ले जाइये ! और जिन्होंने अपनी दुर्जनतासे वर्षों पूर्व अपना मनोरथ सफल कर लिया है, उन्हें निष्फल कर दीजिये !" किन्तु वर्षों बीत जानेपर भी अभी तक उसकी प्रार्थना सफल नहीं हो सकी थी। फिर भी सुनन्दामें धैर्यकी अटूटमात्रा भरी हुई थी। उसे प्रभुपर दृढ़-विश्वास था। प्रतिदिन प्रार्थना करके भक्तिपूर्वक हृदयकी एकाग्र वृत्तिसे वह शक्तिमानके प्रति विनम्र होकर शुभ पुद्गलोंका वातावरण सञ्चित करती थी। उन पुण्यमय पुद्गलोंसे पापोंका नाश होता था। शेष-सञ्चित पाप भुगत लिये जानेसे छूटते जा रहे थे। इस-प्रकार वह शोकमग्ना अपना समय व्यतीत कर रही थी।

सुनन्दाकी प्रार्थनापर महाराज अशोकने वयस्क अवस्थामें आजानेसे एक राजकन्याके साथ अन्ध कुणाल-का विवाह करादिया था ; किन्तु राजकाजमें तल्लीन रहनेवाले अशोकके स्मृतिपटसे कुणाल प्रायः विस्मृत-सा हो चुका था ; किन्तु सुनन्दाकी ओरसे जब कभी प्रसंगोपात्त समाचार पहुँचते, उस समय अवश्य महा-

राजको उसकी स्मृति हो जाती थी, ... प्रकारकी एक स्मृतिके अनुसार अशोकने ... विवाह कर दिया था !

सुनन्दा कुछ विचारक तो थी ही, साथही दर्शी भी थी। महाराज अशोक द्वारा कुणालका करानेमें भी उसका विशेष उद्देश्य था। ...घ उद्देश्यका साध्य होना तो दैवाधीन बात थी; भी मनुष्यको प्रयत्न तो करना ही चाहिये। दैवाधीन इस प्रकारकी प्रवृत्तियोंको न होने योग्य मानकर मनुष्य प्रयत्न करना छोड़दें तो उसे कोई भी ...म हो सकता। इसीलिए कैसा भी सङ्कट क्यों मनुष्यको हिम्मत न हारते हुए सत्कर्म, प्रभु पुण्यमय जीवन आदिके द्वारा पवित्र वातावरण। कर अन्तरायोंको दूर हटाना ही चाहिए। ... किसी अपूर्व भावी सुखकी आशासे कुणालकी ... होते हुए भी चाहे जिस प्रकार समझाकर ... अशोक-द्वारा उसका विवाह सम्पन्न करवा दिया था

बाला शरतश्रीकी अवस्था इस समय अठारह थी। राजकन्या होते हुए भी उसमें उद्दण्डता छिछोरापन नामको भी न था। कुमारी अवस्थामें ... चाहे जैसे विचार क्यों न रहे हों, किन्तु इस समय

सादगीमें ही उसने अपनी महत्ता समझ ली थी। अन्धपतिकी भक्ति ही इस समय उसका सर्वस्व था। सुनन्दाका भी वह सासके समान आदर करती हुई उसके प्रति उतनी ही विनयशीलता प्रकट करती थी। सेवाको ही उसने अपना परमधर्म मान लिया था। जिस प्रकार गान्धारी धृतराष्ट्रके प्रति अनन्य श्रद्धा रखती थी और सुकन्याने जिस प्रकार च्यवनऋषिकी सेवा करके प्रभुमय जीवन बिताया था, उसी प्रकार वर्तमानकालमें शरत-श्रीका जीवन क्रम भी दूसरी गान्धारी या सुकन्याके समान ही व्यतीत हो रहा था।

उसकी जो चार दासियाँ थी, उनमें उसीके समान सत्यमार्गपर चलनेवाली और कुणालके प्रति सच्ची भक्ति रखनेवाली तथा उसके सुख में सुखी एवं दुःखमें दुःख अनुभव करनेवाली चन्दा नामकी दासी भी थी। जिसके नाम और कामका परिचय पाठकोंको मिल ही चुका है? चन्दाकी यद्यपि युवावस्था ही थी; फिर भी वह चौकस—सावधान और बुद्धिमती थी। बात ही बातमें दूसरेका मन जीत लेने और उसे वशमें कर लेने तथा उसके हृदयकी गुप्तसे गुप्तबात निकाल लेनेकी कुशलता उसमें बड़ी ही अपूर्व थी। चन्दा वास्तवमें चन्दा ही थी। कुणालके अन्धत्वके लिए भी उस युवती

ञालाके हृदयमें शूल-सा चुभता रहता था। इ
उसे विश्वस्त मानकर सुनन्दाने सत्य-घटनाकी
लिए अवन्ती भेजा था। अवन्तीमें आकर चन्दा
किया ? यह हम पिछले परिच्छेदमें जान ही
कि श्यामाके हृदयमें पैठकर उसने किस ... से
अन्तरकी बातका पता लगा लिया!

अपना कार्य समाप्त होते ही चन्दा एकदम
राजप्रासादसे गुम होगई थी। जब उसे अपने
इच्छा हुई, तब उसने ऐसा संयोग उपस्थित
जिससे उसके गुम होजानेके विषयमें सब लोग
प्रकारकी कल्पना करने लगे। कोई कहता था
कुएमें डूबकर मर गई और कोई कहता कि युवा
वह किसीको साथ लेकर भाग गई। संसारमें
स्त्रियोंका हरण करते सुनेगये हैं; किन्तु चन्दाने
हरणका एक नयाही उदाहरण लोगोंके सामने
जो जिसके जीमें आवे वह भले ही वैसा कहता
दुनियाके मुँहपर ताला थोड़े ही लगाया जा सकता

किन्तु चन्दा जैसे ही अवन्तीके राज-भवनसे
हुई कि तत्काल श्यामाके मनमें अनेक प्रकारकी
होने लगीं। "कहीं वह मेरा भेद लेने तो नहीं
थी ? और मैं भी राँड कितनी भोली हूँ कि

मिथ्या मोह जालमें फँसकर अपने हृदयकी गुप्तबात उसके सामने प्रकट कर बैठी। अथवा उसके जैसी एक अपरिचित स्त्रीको मैंने अपनी अधीनतामें रक्खा, यही बड़ी भूल हुई! और रखलेने पर भी उसके सामने अपने हृयकी बात प्रकटकर देना दूसरी भयङ्कर भूल हुई। अस्तु। जो कुछ हुआ सो सही! उसके जैसी एक कङ्गाल छोकरी मेरा क्या बिगाड़ सकती है? यदि यह भी मानलिया जाय कि वह मेरी बातका असल रहस्य ही लेने आई हो, तब भी क्या हुआ? यदि मेरे पैरकी जूति फट भी जाय तो उसमें कौन बड़ी हानि हो जाती है! जिससे मैं उस तुच्छ छोकरीके लिए इतना अधिक विचार करूँ? मेरी सत्ता, मेरे वैभव और सारे ठाटपाटके सामने उसकी क्या बिसात हो सकती है?

चन्दाने सुनन्दाके पास आकर सब बातें कह सुनाईं। उसने तिष्यरक्षिताके नाटकका अभिनय और श्यामाको फुसलाकर उसके मनकी बात निकालनेके लिए कियेगये प्रयत्नकी सब बातें विस्तारपूर्वक कह सुनाईं। कुणाल सूरदास और शरतश्रीको भी अपर सौतेली माताके नीच कर्मका पता लगा। उस तिष्यरक्षिताके कुटिल कर्मके कारण ही अपनी आँखें खोकर अन्धा बनजानेका रहस्य कुणालको ज्ञात होगया; क्योंकि इस उपायके

द्वारा ही उसने अपने पुत्र महेन्द्रको
राज्यका उत्तराधिकारी सिद्ध किया था ;
को उस राजपाट एवं स्वार्थपूर्ण षड़यन्त्रके
घृणा होगई । उसने मन-ही-मन कहा—"
राजमुकुटको, जिसके मोहके कारण ऐसे-ऐसे
किये जाते हैं ! राजाको अन्तमें नरकवास
बात शास्त्रकारोंने लिखी है, वह मिथ्या
है । अपने तुच्छ स्वार्थके लिये मनुष्य किस
नीच कर्म करते हुए भी नहीं हिचकता । ओह !
पत्रमें केवल 'अ'कारपर बिन्दी लगाकर
अनर्थ कर डाला ! तिष्यरक्षिता तूने पूर्वजन्मका
वैर-बदला चुका लिया !" किन्तु इस प्रकारके
खिन्न हुए मनको वह प्रभु-भक्तिमें प्रवृत्त कर
कुछ होना था, वह तो हो ही गया । उसे
की शक्ति अब किसीमें भी नहीं थी । इस
मनोरथ सफल हो जानेकी बात तो वह
जानता था ; किन्तु इसे भी वह अपने
कर्मोंका दोष मानकर वह कुणाल सच्चा प्रभुभक्त
लिए सतत प्रयत्न कर रहा था ।

एकदिन युग-प्रधान आर्य सुहस्ति स्वामी
शिष्य अपने शिष्य समुदायके साथ गुरुकी

कुणालके ग्राममें चातुर्मास ठहरे और उनके दर्शनार्थ कुणाल और शरतश्री तथा उनके परिवारके मनुष्य आदि भी आये। फलतः चार-मासके सतत उपदेशके फलस्वरूप-कुणाल एवं शरतश्री भी प्रभुभक्ति रूप सुवर्णमें कुन्दनके समान शोभित जैनतत्त्वके रङ्गमें-रङ्गकर केवल शुद्ध उच्च भावनामय बनगये। मुनिने अपनी विद्वत्तासे अनेक शङ्काओंका समाधान करके कुणालको जैनधर्ममें स्थिर किया। यद्यपि उस वैरागी कुणालका मन साधुव्रत पालन करनेके लिए बहुत ही लालायित हुआ; किन्तु मुनिने उसे यह समझाकर शान्त किया कि :—"तुम्हें गृहस्थाश्रममें रहते हुए ही, जहाँ तक भी हो सके धर्माराधन करना चाहिए। आँखें न होनेसे जीवदयाका कार्य नहीं हो सकता और इसके विरुद्ध चारित्रकी आराधना करनेपर विराधना होनेके ही संयोग उपस्थित हो सकते हैं। इसलिए गृहस्थ-अवस्थामें ही जैनधर्मकी आराधना करते रहो। धर्मके प्रभावसे सब कुछ भला ही होगा।"

"प्रभु! अब मेरे लिए क्या अच्छा और क्या बुरा? जीवनमें मेरे लिए कुछ भी आशा शेष नहीं रहगई है। कोई लालसा भी नहीं है। मेरा समय आत्मकल्याणमें ही व्यतीत हो, यही केवल मेरेलिए अब शेष-कर्त्तव्य है!" कुणालने निवेदन किया।

"आत्मकल्याण करना ही मानव-जीवनकी
है। अनेक प्रपञ्चोंसे परिपूर्ण चक्रवर्ती जसोंके
जो शान्ति दुर्लभ है, उस शान्तिका
आत्मतत्त्वके सच्चे अभ्यासी, त्यागी पुरुष ही
हैं। धर्मके अभ्यासी पुरुषको मृत्युका भी
होता। सुख या दुःखमें अपना किया
बन्धुके समान उसकी सहायता करता है।
सदैव धर्मका ही आराधन करते रहो।"

अन्ध कुणाल गुरुका वचन अङ्गीकार करके
एवं व्रत-पालन करते हुए अपनी कायाका
लगा और मुनिगण भी चातुर्मास पूर्ण होजाने
परिवार सहित वहाँसे अन्यत्र विहार कर गये।

अठारहवाँ परिच्छेद

एक भिखारी

—:o:—

"अररर! यमके सहोदरके समान
अकालको तो देखो! अरे रे; आज तो
देना भी नहीं समझता। दिन उगते ही अ

अन्नके बिना मर रहे हैं, किन्तु किसे किसकी पड़ी है कि उन्हें बचावे ? प्रभु ! प्रभु ! दो-दो तीन-तीन दिनमें भी एकबार खानेको नहीं मिलता ! भला, पानी पी-पी कर भी कहाँ तक जिया जा सकता है ? हाय ! मौत भी तो नहीं आती कि इस पापमय जीवनसे मुक्ति मिल सके। क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? और यह कष्ट-कथा भी किसे सुनाऊँ ?" वत्स देशकी राजधानी कौशाम्बी नगरीमें हजारों भिखारी अन्नके लिए भटकते-फिरते थे। उन्हींमेसे एक छप्पन जैसे भूखे-दुर्बल अकाल-ग्रस्तके ये उद्गार थे। वे गरीब रङ्क बेचारे रोटीके एक एक टुकड़ेके लिए घर-घर भटकते फिरते थे। धनवानोंके द्वारपर धरना देकर बैठने पर उनके नौकर लोग लकड़ियोंकी मारका स्वाद चखाकर उन गरीबोंको भगा देते थे। उन बेचारोंके लिए जब स्वप्नमें भी अन्न दुर्लभ हो रहा था तो फिर जागृत अवस्थाकी तो बात ही क्या ? वे पशुओंके समान वनस्पतियाँ खाकर भी अपना मानव-जीवन टिकाये रखनेका व्यर्थ प्रयत्न करते थे। अन्नके लिये हाथोंसे सिर भी पीटलेते थे, किन्तु फिर भी उनके भाग्यमें अन्न नहीं था ! इसप्रकार हजारों मानव बिना अन्नके भूखों मरते और पानीके बिना-मछलीकी तरह तड़पते थे। हजारों मानव मौतका

गोदमें बिना अन्नके सो रहे थे और ० ।र
खाऊँ करते हुए इस लोकको छोड़कर ‹लो
गमन कर रहे थे। कई भिखारी अन्नके ि
कर रहे थे, किन्तु वह रुदन ध्वनि किसी भी
कानों तक नहीं पहुँचपाती थी, कि जो
तरह बाहर आकर लाखों निराश मानवोंको
अवलम्बन दे सकते !

अन्नके लिए हाथ-पैर घिसता हुआ
भिखारी अपना भाग्य आजमानेके लिए न
माँगने निकल पड़ा। पिछले तीनदिनसे ‿
अन्नका एक दाना भी नहीं पड़ा था। ि।र
अभावके कारण उसका चेहरा मृतकके ‚
होगया था। उसकी चलनेकी शक्ति भी
थी। फिर भी उसका यह अन्तिम प्रयास
कौशाम्बीके सभी धनवानोंके द्वारपर पहुँचा
लकड़ीकी मार अथवा गालियोंकी बौछार
सिवाय उसे और कुछ नहीं मिला। अ
निराश होकर धनपाल नामक सेठके ‹ ‚ ‚
वहाँ बड़ी देरतक खड़ा हुआ वह रोटीके एक
लिए करुण याचना करता रहा, किन्तु ि
ध्यान नहीं दिया।"

इतनेहीमें आचार्य सुहस्ति स्वामीके दलके दो साधु गुरुकी आज्ञासे धनपाल सेठके घरमें भिक्षालेने जा पहुँचे। साधुओंको देखते ही धनपाल सार्थवाह एकदम उठ खड़ा हुआ; और अत्यन्त आदर पूर्वक दोनों हाथ जोड़े विनीत वचनों-द्वारा उनकी स्तुति करने लगा। उसने उनके साधु-धर्मका अनुमोदन करते हुए गद्गद् कण्ठसे भक्ति-पूर्वक बारम्बार वन्दना की।

इसकेबाद धनपालने अपनी पत्नी-द्वारा सिंह-केशरिया मोदक तथा अन्य कई प्रकारकी उत्तमोत्तम मिठाइयाँ मँगवाकर उन दोनों मुनियोंको भक्तिपूर्वक बहराया। इसप्रकार उन दम्पतिने भाव-पूर्वक मुनियोंको आहार प्रदान कर सेवा-भक्ति की। साथही बारम्बार अपनी चरण रजसे इसी प्रकार घरको पवित्र करते रहनेके लिए भी निवेदन किया। उसने अपना उद्धार करने-विषयक कृपा करनेकी भी अभिलाषा व्यक्त की और इस समग्र सेवा-भक्तिके बदलेमें 'धर्मलाभ' का अपूर्व आशीर्वाद देकर वे दोनों मुनि वहाँसे चलदिये।

"मुनियोंके प्रति की जानेवाली धनपाल सेठकी सेवा भक्तिको वह भिखारी बाहर खड़ा हुआ देख रहा था। अतः अपनेको लकड़ियोंकी मार और गालियोंका दान देनेवाले उस सेठकी मुनियोंको भक्तिपूर्वक दान देने

और मुनियों-द्वारा उससे स्वीकार करनेकी
आश्चर्य-चकित हुआ। "ओहो! संसारमें इन
धन्य है; जिन्हें ऐसे धनवान भी दे
वन्दन करते हैं। इसीसे इनका जीवन
है। इनकी यह भिक्षावृत्ति भी स्वर्गसे अधिक
है कि जिन्हें अमृतसे भी अधिक और मुझ जैसे
लिए स्वप्नमें भी दुर्लभ ऐसे 'सिंहकेशरिया'
भिक्षा मिल रही है! जब कि हम नारकी
समान करुण शब्दोंमें भिक्षाकी याचना करते
अत्यन्त दीनता दिखानेपर भी कहींसे अन्नका
तक नहीं पाते! समयकी कैसी विचित्रता है

ऐसी दशामें भी कभी कोई नाममात्रके
सा कुछ देता भी है तो वह कितने
और गालियोंकी बौछारके साथ कि हमारे
विप-मिश्रित या जहरके समान होजाता है।
इन दयारूपी धनवाले साधुओंसे मैं प्रार्थना
उस भिक्षामेंसे कुछ मुझे भी प्रदान करें।"
विचार करता हुआ वह भिखारी उनके
राह देखने लगा।

जब दोनों मुनि धनपालके घरसे
स्थानकी ओर चले तो भिखारी भी उनके

चल पड़ा ; और कुछ दूर जानेपर उनसे याचना करने लगा कि :-"हे भगवन्त ! दो-दो तीन-तीन दिन हुए मैं भूखके कारण कष्टसे मरा जा रहा हूँ। फिर भी कोई मुझे अन्नका एक दाना तक नहीं देता !—अतः आप यदि थोड़ासा अन्न देनेकी कृपा करें, तो आपको जीव-दयाका महान् पुण्य-लाभ होगा। एक जीव मरनेसे बच जायगा।"

"हे भद्र ! हम तो केवल यह भिक्षा ले जाने मात्रके अधिकारी हैं।" उनमेंसे एक मुनिने कहा।

"कैसे ! आप सरीखे साधु भी इस प्रकार असत्य भाषण करते हैं ? आश्चर्य है ! अहो-हो ! संसार कैसा होगया है ! कितना कठिन समय आगया है !" यह कहते हुए वह एकदम खिन्न एवं उदास होगया।

उसकी दया जनक स्थिति देखकर एक मुनिने कहा :-"हम सत्य ही कह रहे हैं कि हे भद्र ! हम तो केवल इस भिक्षाका अन्न उठानेवाले सेवकमात्र ही हैं।"

"तो यह सब आप किसके लिए ले जा रहे हैं ? किसके पास जा रहे हैं ?" भिक्षुकने पूछा।

"इसके स्वामी तो हमारे गुरु हैं। हम यह भिक्षा उन्हींके पास ले जा रहे हैं।"

"तब तो मैं भी आपके गुरुके पास चलता हूँ। वे

अवश्य मुझपर दया करेंगे !" भिक्षुकने अत्यन्त मुखाकृति बनाते हुए कहा।

"इस विषयमें हम कुछ भी नहीं कह स कह कर दोनों साधु चल दिये।

इधर वह अन्नका अर्थी भिखारी भी उनके पीछे-पीछे चलपड़ा, मानों वह भक्ति भ। महापुरुषकी सेवामें जा रहा है ! थोड़ीही ेर उनके साथ उपाश्रयमें जा पहुँचा।

दैवयोगसे उस जमानेके युगप्रधान, एवं जैनशासनके नायक आर्यसुहस्तिस्वामी उपाश्रयके बाहर चबूतरे पर खड़े हुए थे। आकर दोनों साधुओंने वन्दना की। यह उस भिखारीने भी उन्हें गुरु मानकर प्रणाम अन्न-भिक्षाके लिए उनसे याचना करने लगा इस अभूतपूर्व घटनाको देखकर आचार्य हा। आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने समझ लिया कि इस घटनामें दैवका कोई अज्ञात सङ्केत होना

गुरुको विचारमें पड़ते देखकर वे शिष्य-कहने लगे—"भगवन् ! अत्यन्त दयाकी ति इस भिखारीने मार्गमें हमसे भी अन्नकी याचना

अपने शिष्योंके वचन सुनकर उन

जो कि वर्तमान समयके युगप्रधान एवं दशपूर्वके ज्ञाता थे ; अपने श्रुतज्ञानके द्वारा उसके भावी जीवनका पता लगा लिया। वे मन-ही-मन अत्यन्त आश्चर्य-पूर्वक विचार करने लगे :—"ओहो ! इसका भविष्य कितना उज्ज्वल है ! यह आत्मा भविष्यमें जैन-शासनका आधार बनेगी—प्रभावक होगी ! इस प्रकार ज्ञानके द्वारा उसका उज्ज्वल भविष्य देखकर गुरुवरने कहा :—वत्स ! इस साधुके पात्रमें पड़ा हुआ भोजन तो हमसे किसीभी प्रकारसे किसीको दिया नहीं जा सकता।"

"किस कारण नहीं दिया जा सकता ? भगवन् ! आप तो दयामय जैनधर्मी कहे जाते हैं ! जीव-दयाके प्रतिपालक होकर भी यदि आप मुझपर दया नहीं करेंगे तो मैं मर जाऊँगा। अन्न-अन्न करता हुआ यह शरीर छोड़ दूँगा।"

"यदि तुझे हमारे पाससे भिक्षा पाना ही है तो एक काम करना होगा।"

"और वह काम...... ! कहिये, कहिये सूरीश्वर ! अपनी भूख मिटानेके लिए चाहे जैसा काम करनेको मैं तैयार हूँ।"

"मुनियोंके पात्रमें पड़ा हुआ भोजन केवल मुनि-लोग ही पा सकते हैं, कोई गृहस्थ नहीं। अतः यदि

तू हमसे दीक्षा लेना स्वीकार करे, तो यह तू पा सकता है! यही नहीं, वरन् इससे मनोवाञ्छित भोजन तुझे प्राप्त हो सकेगा।"

"हे भगवन्! यह तो बहुत ही अच्छी अपने कल्याणकी कौन इच्छा नहीं करेगा? भिखारी होनेके कारण मैं यह दुःख भोग इसकी अपेक्षा इस व्रतका कष्ट सहन करना क्या बुरा है? कम-से-कम इसमें अच्छा- तो मिल सकेगा!" इसप्रकार कहते हुए गुरुकी द्रुमकने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

इसके बाद सुहस्तिस्वामीने द्रुमकको मोदक खानेके लिए बिठाया, और गुरुने उसे थोड़ी आयुका जानकर उसकी भाव दूसरे एक साधुके साथ इस नये साधुको उपाश्रयमें भेज दिया। वहाँ आजके इस नव साधुकी धनवानोंकी रमणियों तथा पूर्वक वन्दना की। साध्वियोंने भी वन्दन किया। इससे वह नव-दीक्षित साधु मन विचार करने लगा कि:—"अहो! मैंने अपने कभी देखातक नहीं, ऐसा अपूर्व भोजन मिला, ऐसी उच्चकुलकी-धनाढ्योंकी पुत्रियाँ भी ...

पूर्वक मुझे वन्दन कर रही हैं। इसीप्रकार ये महान् गुणवती साध्वियाँ भी मेरी वन्दना करती हैं। यह सब केवल चारित्र्य-धर्मकाही फल है। जब कि मैंने तो केवल भोजनके लिए ही साधुकी दीक्षा स्वीकार की है।" इस प्रकार उच्च परिणामवाले उस नव-दीक्षित साधुको लेकर वे मुनि फिर गुरुके पास लौट आये।

मध्याह्नके समय उस नव-दीक्षित साधुने इतना अधिक भोजन कर लिया था कि उसकी श्वासोछ्वासकी गति भी मन्द होगई! उसमें भी फिर मोदकके समान मधुर एवं मिष्ट भोजनके मादक आहारके कारण वायु-पूरित धौंकनीके समान उसका पेट फूल गया! श्राद्धमें भोजन करनेवाला ब्राह्मणके समान वह थोड़ी देर तक तो सोया! किन्तु अत्यन्त घृतयुक्त एवं अत्यधिक परिमाणमें किया हुआ भोजन न पचनेके कारण शूलकी व्याधिवाले घोड़ेकी तरह द्रुमकको गुप्तरूपसे विशुचिका-हैजा हो जानेसे वह पृथ्वीपर इधर-से-उधर लोटने लगा।

यह देख गुरु महाराजने उसकी अन्तिम इच्छा तृप्त करनेके लिए पूछा—"वत्स! अब तुम्हारी क्या इच्छा है?"

दुःखसे पीड़ित द्रुमक साधुने कहा—"प्रभु! जहाँ आपके समान साक्षात् कल्पवृक्ष फलते हों, वहाँ अब

मुझे क्या इच्छा हो सकती है ? इस समय
मेरे लिए शरण दाता होनेकी कृपा करें ;
आपकी शरणमें ही मेरी शुभगति होसके।"

द्रुमककी अल्प आयुके अब अन्तिम
जान लेनेसे उसके भाव बढ़ानेके लिए गुरुने
श्रावकोंको उसकी सेवा करनेके लिए भेजा।
साधुओंने भी निर्दोष औषधिसे उसकी सेवा
किया। इस प्रकार बड़े-बड़े साधुओं तथा
ऋद्धि एवं समृद्धिवाले श्रावकोंको, जो कि उसे
देते थे, उन्हें आज अपनी सेवामें उपस्थित
होगया। कोई उसके पैर दबा रहा था, तो को
दवाई लगा रहा था और कोई माथे पर दवाई
था। इसप्रकार अपनी सेवा होती देखकर द्रु
मनमें अन्तिम शुभभावका उदय हुआ कि :—"
कौन हूँ ? कि जिसकी सेवामें ऐसे बड़े-बड़े
श्रीमान् लोग लगे हुए हैं ! यह सब मेरे अव्यक्त
यिक' का ही प्रभाव है। साधु धर्मका ही यह म
है कि जिस मुनिधर्मके सम्मुख बड़े-बड़े श्रीमान
करते हैं। अहा ! अन्तमें मरते समय भी मुझे
प्राप्त हो सकी यह बहुत ही अच्छा हुआ।"
विचार करता और अनेक श्रीमन्तोंसे सेवित वह

साधु आयुष्यपूर्ण होनेसे मृत्युको प्राप्त हुआ और श्रावकोंने उस मुनिके शरीरकी योग्य प्रकारसे मृत्युक्रिया सम्पन्न की।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

आशा की एक किरण

—:o:—

"भगवन्! विश्ववत्सल! हमारी ओर भी तो देखिये। सुखका स्वप्न दिखाकर किस पापके कारण हमें इस अथाह दुःखके गर्तमें डाल दिया है, कि अभी तक हम बाहर निकलनेके लिए समर्थ नहीं हो सके हैं?" "अरेरे! हमने क्या सोचा था और क्या हो गया? मनुष्य क्या सोचता है और विधाता उससे विरुद्ध न जाने क्या कर बैठता है? इस दुनियासे उद्धार पाने और शत्रुके मनोरथको निष्फल करनेका अब तो केवल एक ही उपाय रह जाता है, और वह उपाय हे दैव! अब केवल तेरे ही हाथ है! तूने वक्र होकर जैसे हमारी अधोगति की है, उसीप्रकार अब हमारा उद्धार भी कर हमारा मनोकामना पूर्ण कर!" श्मशान की शांति

रमणीय झाँकीके दर्शनमें थोड़ी ही देर थी।
पर एक मध्यम श्रेणीके भवनकी बैठकमें
हुई एक प्रौढ़ा महिला इस प्रकार विचार कर
उस गौराङ्गनाका स्वभाव किंचित् उग्र था
चलानेकी उसकी आदत सी थी ; किन्तु
दुःखमय जीवनसे उसका मन हमेशा खिन्न
किन्तु उसका स्वभाव स्त्रियोचित माया-ममता
कारण किसी समयकी अपनी समृद्धिका अपने
को उपभोग करते देख उसके अन्तरमें
होता था। उसी दुःखमें से उसमें धैर्य,
स्थिरता और सहन शक्ति आदि गुणोंका
था। फिर भी उसके जीवनमें एक
शेष थी। उसी आशा-पाशसे बँधी हुई वह
दुःखमें अपने दिन व्यतीत करती हुई जी रही थी
समझ ही गये होंगे कि वह प्रौढ़ा कुणालकी धात्री
ही थी। यद्यपि कुणालका राजकीय अधिकार
शेष हो गया था ; किन्तु फिर भी जो घटनाएँ
हाथमें थीं, उनमें आशा रखकर ही वह जी
उस आशाकी पूर्ति करना तो देवके ही आ
फिर भी मनुष्य जब अत्यन्त दुःखसे व्याकुल हो
तब भी वह भविष्यकी किसी अज्ञात शुभ

होकर जीवन व्यतीत करता ही है। फिर भले ही वह आशा दैवाधीन ही क्यों न हो ! इस प्रकार वह दैवपर विश्वास रखना सीखता है। दैवको अनुकूल बनानेके लिए पुण्यकृत्य या धर्मकर्म करने की उसके हृदयमें सद्-भावना जागृत होती है।

गरीब बेचारी सुनन्दा ! वह भी एक परावलम्बन-वाली आशासे भाग्यपर भरोसा रखकर जी रही थी, और इसी आशा ही आशाके बीच वह विचारोंके प्रवाहमें डूबी हुई थी। इतनेही में उसके पास सोयी हुई चन्दाने उस विचारधारा को भङ्ग करते हुए पूछा :—"जीजी ! जाग रही हो नॅ ?"

"क्यों ? तू क्या कहना चाहती है चन्दा ?" विचार-तन्द्रासे जागृत होकर गम्भीर मुखमुद्रा धारण करते हुए सुनन्दाने पूछा !

"मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि अब किसी भी दशामें हमारा उद्धार हो सकना सम्भव नहीं और इसी अवस्थामें हमारा समय व्यतीत होना दुष्ट दुर्दैवने निर्माण कर दिया है। फिर भी मनमें बड़ी-बड़ी महत्त्वाकांक्षाएँ कैसे उत्पन्न होती होंगी ?" इस प्रकार चन्दाने कुछ न कुछ प्रश्न खड़ा करके बातोंका सिलसिला शुरू किया।

"चन्दा ! कुछ भी हो ! फिर भी मैं एक भावी

शुभ आशाके सहारे ही जी रही हूँ। तू
स्वामीकी ऐसी दशा देखकर युवावस्था
अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करती हुई संसार
है! तो क्या दैव इतना कठोर हो जायगा?
हमपर दया नहीं करेगा?" सुनन्दाने उसे
दिया।

"मेरी समझमें नहीं आता कि वह
हमारी सहायता कर सकेगा? क्या वह कुणाल
फिरसे दृष्टिवान् बना सकेगा? उनके गये हु
फिर प्राप्त हो सकेंगे? भगवन्! भगवन्!
हुए मनुष्य भी कभी जीवित हो सकते हैं?"
निराशापूर्ण उद्गार निकाले।

"चन्दा! यह सब कदाचित न हो सके
बात तो अवश्य हो सकती है, जिसपर कि अ
हुए मैं जी रही हूँ।"

चन्दा सुनन्दाके शब्द सुनकर चौंकी। उत्सु
रतासे पूछा :—"जीजी! वह बात क्या है?"

"वह यही कि शरत बहुरानीके लिए शु
तो आ सकता है न? यदि उसकी कोंखसे दै
कोई भाग्यवान पुत्र जन्म ले सके तो......
कहते-कहते सुनन्दा रुक गई।

"तो क्या ?" चन्दाने पूछा—"वह पुत्र क्या कर सकेगा ?"

"सम्भव है, उस पुत्रके पुण्यसे हमारा खोया हुआ वैभव फिर प्राप्त हो सके ! यही नहीं, वरन् हम अपने शत्रुके मनोरथको भी विफल कर सकें !" सुनन्दाने अपने मनकी बात कह सुनाई ।

"तुम्हारी इच्छानुसार यदि हो सके तो कदाचित हम फिर पनप सकते हैं ? क्या इस प्रकार तुम्हें विश्वास होता है ?"

"मैं तो शरतके अच्छे दिनकी ही प्रतीक्षा कर रही हूँ। चन्दा ! उसके बाद भी हमें तो यथाशक्ति अपना प्रयास करना ही है ! फल तो दैवाधीन ही है !"

"किन्तु इस प्रकारकी दैवाधीन वस्तुपर कैसे विश्वास रखा जा सकता है ? संसारमें हमारा सोचा हुआ सब काम थोड़े ही सफल हो जाता है ?"

"अवश्य नहीं होता ! फिर भी आशा अमर है। दुखियोंके लिए तो आशा ही जीवनका आधार हो सकती है।" सुनन्दाने कहा।

"परम कृपालु परमात्मा आपके मनोरथ सफल करे।"

"तुझ ब्रह्मचारिणीका वचन सत्य-सिद्ध हो ! तेरा

और मेरा तप एवं कुणालकी प्रभुभक्ति, `
निष्फल नहीं जा सकते, चन्दा !"

वे दोनों इस प्रकार वार्तालाप कर र०
अभी बिस्तरेसे उठी भी नहीं थी कि २
कुमारी वहाँ आ पहुँची। उसका चित्त
मुखपर आनन्दकी लालिमा छाई हुई थी।
चदनको देखकर सुनन्दाने कहा :—"र
अभीसे ही प्रसन्न हो रही है ? क्यों ?
विशेष बात ?"

"बाईजी ! एक शुभ समाचार
कितने ही दिनसे मेरे मनमें वह बात घुल
किन्तु मुझे कुछ शङ्का थी। पर अब तो मुझे
होगया !" इस प्रकार बातचीत करती हुई
चन्दाकी बगलमें जाकर बैठ गई !

चन्दा और शरतकुमारी लगभग समान
ही थी ; और दोनों ही सुन्दर एवं बुद्धिमान
साथ ही दोनों सरल एवं सादा जीवन बिता
इसी कारण दोनोंमें सखी-भावका स्नेह होना
ही था। दोनों परस्पर गुप्तवार्ता भी क
हुई निर्दोष विनोद-द्वारा चित्त प्रसन्न करती
चन्दा भी शरतकुमारीसे एकान्तमें उसकी नि

पूछ कर उसे बनाती रहती थी। इस प्रकार दोनोंका समय सुख पूर्वक व्यतीत हो रहा था।

"ऐसी किस बधाईका समाचार लाई है शरत, जरा कह तो सही!" यों बेपर्वाही-सी दिखाते हुए सुनन्दाने कहा; किन्तु फिर भी उसके हृदयमें उत्कण्ठा तो थी ही।

"कह दूँ? आज मुझे अनुभव हुआ है कि; मेरे......" कहते-कहते शरतकुमारी शर्मा गई और चन्दाकी छातीमें अपना मुँह छिपालिया।

"क्यों, लज्जित कैसे होगई? बोलती क्यों नही? क्या कुछ नई-पुरानी बात हुई है?" हँसते हुए चन्दाने उसके कानमें कुछ कहा।

"हाँ, ऐसा ही है! तेरी बात सच है चन्दा!" शरतश्रीने चन्दाको समझा दिया।

"चन्दा! तुम दोनों क्या घुस-पुस बातें कर रही हो? जरा, इन आजकलकी छोकरियोंको तो देखो!" सुनन्दाने मुसकुराते हुए कहा।

"जीजी! इसकी बातको मैं समझ गई हूँ; किन्तु यह उसे नहीं कह सकेगी। आपकी एक धारणा आज सत्य-सिद्ध होगई! शत्रुके तेजका क्षय आजसे आरम्भ होगया!" चन्दाने हँसते हुए कहा।

"जरा स्पष्टतासे क्यों नहीं बतलाती, चन्दा? तेरा

गोलमाल बातें मैं क्या समझूँ ?" इस प्र
उत्सुकता दिखाते हुए पूछा।

"शरतकुमारी गर्भवती है! जीजी!"
मुसकुराते हुए खुलासा किया।

चन्दाके शब्द सुनते ही सुनन्दा
और अपने सुननेमें कोई भूल तो नहीं हो
बातका निर्णय करनेके लिये उसने फिर पूछा,
जरा फिरसे तो कहना, क्या कहा तूने ?"

"आपकी आशा फलीभूत हो रही है
शरतको गर्भ है!"

"क्या कहा ? शरतको गर्भ है!"
करनेके लिए उसने फिर पूछा!

"हाँ; इसीलिए तो यह कहते हुए

"अहा-हा! आज कितने ही दिनोंसे
रहनेवाली आशा सफल हुई! शरत! मेरा
है कि तू राजरानी जो भी न बनसकी; किन्तु
राजमाता तो तू अवश्य बनेगी! तू हमारे
और अशोकके समान पुत्रको जन्म दे
बनेगी।" आनन्द-पूर्वक उछलते हुए हृदयसे
मुखसे अनायास ये शब्द निकल पड़े।

"आपका आशीर्वाद मैं माथे चढ़ाती हूँ!

वचन सत्य-सिद्ध हो यही चाहती हूँ।" इस प्रकार ल-जाते हुए शरतकुमारीने शुभ-शकुनकी गाँठ बाँधी।

"आज कितने दिन हुए, शरत ?" आतुर हृदयसे सुनन्दाने पूछा।

शर्माते हुए शरतने कहा "दो महिने !"

"अरे, तो आज दो-दो-महिने बीत जानेपर भी तू हमसे बात छिपाती है पगली ?" यों कहते हुए चन्दाने उसके गालपर मीठी-सी चुटकी ली !

"जब आजतक मुझे ही कुछ पता नहीं था ; तब कैसे, क्या कहती ?"

उस दिनसे दुखियारे कुणालके भवनमें आनन्दकी झलक-सी दिखाई देने लगी। सुनन्दाके दुःखित हृदयमें भी शान्ति अनुभव हुई। उसने गर्भका भली-भाँति पोषण करनेके लिये तथा खाने-पीनेमें सावधानी रखते हुए अधिक कामकाज न करनेके लिए शरतकुमारीको समझाया !

इसके बाद कुछ समय बीतनेपर शरतकुमारीको अच्छे और शुभ-सूचक स्वप्न दिखाई देने लगे। देव, गुरु और धर्मकी भक्ति करनेका 'दोहद' उत्पन्न हुआ। कुणालने उसे परिपूर्ण किया। तभीसे प्रसन्न चित्त रहती हुई शरतकुमारी गर्भका भली-भाँति पोषण करने लगी।

सुनन्दा और चन्दा भी उसकी पूरी-पूरी रखती थी। खाने-पीनेकी ओर पूराध्यान था। सभी दास-दासियाँ उसकी सेवाके समय उपस्थित रहती थीं। गर्भका पोषण शरतकुमारीके हृदयमें अनेक प्रकारकी होने लगीं। वह सबको अनेक प्रकारकी उनपर शासन करने लगी। संसारको अपने बनाकर संसारमें चक्रवर्ती राज्य-स्थापित लाषा उसके मनमें जागृत हो चली। इस भाँति गर्भका पालन करते हुए पूर्ण मास मुहूर्तमें एक सुन्दर और तेजस्वी बालकको दिया। उस समय सभी ग्रह उसके अनुकूल थे बनानेपर कई ग्रह उच्चके भी जान पड़े। भी थे। ऐसे उत्तम ग्रहयोगमें गूढ़ गर्भा तेजस्वी पुत्रको बिना किसी कष्टके प्रसव किया

सुनन्दा, चन्दा आदि उस समय पास ही थीं। निर्विघ्नतासे पुत्रका जन्म उनको हार्दिक प्रसन्नता हुई। अशुचि आदि बाल शिशुके चन्द्रमाको भी लज्जित मुख, भव्यलिलाट, पुष्ट एवं सुगठित शरीरको सुनन्दा हर्षोन्मत्तसी होगई। "बेटा! तेरी

मनोरथ पूर्ण करना! महान् चक्रवर्ती राजा बनना!" इस प्रकार उस बालकको देखते हुए हर्षाश्रु-युक्त सुनन्दाके मुखसे शुभाशीर्वाद निकल पड़ा।

वह नवजात शिशु अपने कोमल हाथ उठाकर मुसकुराता, और उछलकर सबको आनन्दमग्न करने लगा। तुरन्तही एक दासीने दौड़ते हुए जाकर कुणालको बधाई दी।

पुत्र जन्मका समाचार सुनकर कुणाल प्रसन्न हुआ; किन्तु साथ ही उसके मनमें यह भी विचार हुआ कि:—"मुझ जैसेके घरमें जन्मधारण करनेवाले इस पुत्रका क्या महद् भाग्य हो सकता है? फिर भी जो कुछ दैवकी इच्छा होगी सो होगा ही!" बधाई देनेवाली दासीको अपनी शक्तिके अनुसार द्रव्य देकर उसने प्रसन्न किया।

पुत्र-जन्म की बधाईसे आज सारे घरमें आनन्द ही आनन्द हो रहा था; किन्तु इस बातका किसे पता था कि, आजके आनन्दमें भविष्यके उत्कर्षकी झाँकी भी छिपी हुई है!

बीसवाँ परिच्छेद

आशाके झूलेमें

—:०:—

"वत्स! आज यदि तू उज्जयिनीके ... होता तो इस बालकके जन्मका कैसा महो... फिर भी बालक भाग्यशाली है, यही ... है।" पुत्रका जन्म होनेके बाद एकदिन सुनन्दाने कुणालसे कहा; किन्तु इस कथनमें कुछ और ही था।

"कुमार कैसा सुन्दर और सलौना है। इसे देख सकनेके लिए आपको फिरसे नेत्र ... तो कितना अच्छा हो! इस बालकके ...न्दर आँखोंसे दूर करने की भी इच्छा नहीं होती।" बीचमें कहा।

"चाहे जितना सुन्दर क्यों न हो; किन्तु कोई राजा थोड़े ही बन सकता है?" कुणालने

"क्यों नहीं बन सकता! राजाका ... राजा नहीं बन सकता?" सुनन्दाने ... शब्दोंमें कहा।

"अवश्य ही राजाका कुँवर राजा हो सकता है, किन्तु इस समय तो मैं कोई राजा नहीं हूँ कि जिसके राज्यका यह उत्तराधिकारी हो सकेगा!" कुणालने कहा।

"तुम चाहे जो भी कहो! किन्तु मुझे तो यह बालक महान् भाग्यशाली जान पड़ता है। ऐसा बत्तीस लक्षण-युक्त भाग्यवान पुत्र यदि महान् राज्यका स्वामी न बन सके, तो यही समझना चाहिए कि विधाता भी कभी-कभी भूल कर जाता है।" चन्दा बीचहीमें बोल उठी।

"चन्दा! यदि प्रभुकी इच्छा होगी तो तेरी और मेरी आशा भी अवश्य पूर्ण होगी। हमारे मनोरथ सफल होंगे।" सुनन्दाने कहा।

"तुम स्त्रियोंको जीवित रहनेके लिए किसी न किसी आशाका अवलम्बन तो होना ही चाहिये नँ! इसलिए खुशीसे तुम अनेक प्रकारके हवाई किले बाँधती रहो।" कुणालने कहा।

इतनेही में शरतकुमारीने आकर बालकको सुनन्दा की गोदमें लिटा दिया। अतः उसने कुणालसे कहा:— वत्स! तू जो भी चाहे कह सकता है; किन्तु इसका भाग्य तो निश्चित ही महान् है। देख तो सही गोदीमें भी यह लुच्चा कितना तूफान कर रहा है।" इसके बाद

उस शिशुको प्रेमसे पुचकारते हुए सुनन्दाने की गोदमें लिटा दिया। "ले, यह तेरा जरा खिला इसको! इसके मक्खन जैसे पर भी हाथ तो फिरा!"

कुणाल अपनी गोदमें लेटे हुए उस शरीरपर हाथ फिराता हुआ उसका प्रेम दुलार करने लगा। वह चपल वृत्तिवाला भी इधर-उधर उछल रहा था। वह हाथ-पैर हुआ लोटने लगा। बालकके मुखपर मधुर थी। मानों वह मुसकुराहट शत्रुको बालोचित-चुनौती ही न हो!

गोदीमें खेलाते हुए बालकको कुणालने कहा:—"बच्चे! मेरे बदले यदि तू यहाँ जन्मा होता तो कदाचित् किसी बड़े स्वामी बन सकता था! अथवा युवराज यहाँ जन्म लेनेपर भी तू भविष्यमें अपना निश्चित कर सकता था; किन्तु कोई दैवने यदि तुझे मेरे यहाँ जन्म दिया है तो परन्तु अब मैं तेरे हितके लिए क्या उपाय करूँ

इसके हितके लिए तू एक काम कर! दिनोंसे मेरे मनमें तेरे पुत्रका मुख-देखनेकी

थी ; उसे तो भगवानने पूरी करदी। अब रही एक अभिलाषा तू पूर्ण कर !"

"कौन ! मैं ? माता ! कहो, मैं नेत्रहीन मा तुम्हारी किस अभिलाषाको पूर्ण करूँ ? वह हो सकनेवाली भी है या नहीं ? यदि बन सकने जैं हुई तो उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।" जिज्ञासा पूर्व कुणालने कहा।

"यदि तू मनमें धारले तो अवश्य पूर्ण कर सकेगा और उसे पूर्ण करनेमें ही हमारी उन्नति सम्भव है। हमारे उत्कर्षकी आशा भी उसीमें समाई हुई है।" सुनन्दाने बतलाया।

"बतलाओ ! झटपट बतलाओ ! वह कौन-सी आशा है।" कुणालने पूछा।

"उसे मैं एकदम नहीं बताऊँगी। पहले तू मुझे वचन दे कि मैं जैसा कहूँ, वैसा ही करेगा !"

"मुझसे हो सकेगा, वहाँतक अवश्य तुम्हारे वचनकी पूर्ति करूँगा।" कुणालने कहा।

"पुत्र ! अब मेरी केवल एक ही इच्छा है कि एक-बार तू पाटलीपुत्रमें जा !"

"पाटलीपुत्रमें ? वहाँ जाकर मैं क्या करूँगा ? माता !" उत्सुकतासे कुणालने पूछा।

"तू अपनी सङ्गीतकलासे मगधपतिको अपने पुत्रके लिए राज्यकी माँग प्रस्तुत कर।"

सुनन्दाके वचन सुनते ही कुणालकी उठीं, वह विचारमें पड़ गया। "वत्स, क्या रहा है ? तू प्रयत्न कर ! मेरा यह बालपुत्र पर्यन्त संसारका ऐश्वर्य भोगेगा। हम सबके पूर्ण करेगा !" सुनन्दाने फिर कहा।

"कुमार ! क्या विचार कर रहे हो ? अपर माता हमारा सर्वनाश करके प्रसन्न किन्तु उसके मनोरथको निष्फल करनेका आगया है।" चन्दा बीचमें बोल पड़ी। सु सुनकर उसकी मृत आशा सजीवन हो उठी थी। वचनसे उसका उत्साह बढ़ गया।

अपनी हवेलीमें बैठा हुआ यह परिवार भविष्यकालकी कल्पनामें निमग्न था। कुणाल पास ही बैठा था। अतएव बालचापल्य वश उछलकर नीचे गिर पड़ा और सीढ़ियों पर हुआ नीचे जमीनपर जा पहुँचा। वह लगा। शरतकुमारी तो चीख मारकर मूर्छित सुनन्दा भी उसके पीछे दौड़ती हुई नीचे और उसके पीछे-पीछे चन्दा एवं अन्य दास-

हाथमेंका काम छोड़कर तत्काल वहाँ आ पहुँचे। अररर! यह क्या अनर्थ हुआ! दैवने यह कैसा कोप किया? अमूल्य रत्न दिखाकर फिर छीन लिया! इस प्रकार हाय-हाय करते हुए वे बालक को देखने लगे तो वह नीचे पड़ा हुआ बालक किलक रहा था। अतः आते ही सुनन्दाने उसे एकदम उठा लिया। सबलोग उसके शरीरको इधर-उधर टटोलकर देखने लगे, किन्तु उसे कहीं भी कोई चोट आदि नहीं लगी थी। हनुमान और भीमकी तरह पूर्वके पुण्यबलसे ही वह सुदृढ़ शरीर लेकर जन्मा था। सुनन्दाकी गोदमें रहते हुए भी वह उसका बाल चापल्य-उछल-कूद-चला ही रहा था। वह हाथ-पाँव उछालकर सुनन्दाको भी हैरान कर देता था! चोटका कोई चिह्न उसके शरीर पर न था।

बालकको किलकता देखकर सबका कल्पान्त फिर आनन्दमें परिवर्तित होगया! कुणाल भी चिन्ता-मुक्त हो प्रसन्न हो गया। शरतकुमारी जो वेहोश थी, उसे भी सचेत कर बालक को उसकी गोदमें देते हुए सुनन्दा बोली :—"ले, तेरा यह बालक!"

अपने पुत्रको सब तरहसे सुरक्षित पाकर उसके जीमें जी आया। उसने बालकको छातीसे लगाकर बार-

चूमा। माताके लाड़ प्यारसे शिशुका मुँह वह फिर गोदमें हाथ-पाँव हिलाने लगा।

बालकको इतनी ऊँचाईसे गिरने पर भी चोट नहीं लगी ; यही नहीं वरन् उसके किसी प्रकारका चिह्न तक नहीं दिखाई उसके मनपर इसका कोई चिह्न ही दृष्टि था। सबको यह देखकर आश्चर्य हो इतनी ऊँचाईसे गिरकर भी वह पहलेकी ही रहा है। अतएव निश्चित ही आगे चलकर महा पराक्रमी पुरुष सिद्ध होगा। अगणित मानमर्दन करनेवाला विजयी वीर बनेगा। सुनन्दाका हृदय फूला नहीं समाया। उसने "बेटा कुणाल! देखा तेरे बालशिशुका इतनी ऊँचाईसे गिरनेपर भी यह हँसता हुआ रहा है। अभीसे इसका शरीर इतना सुदृढ़ है, होनेपर तो यह अपने पराक्रमसे अवश्य प्राप्त कर सकेगा। फिर भी बेटा, तुझे तो अवश्य करना चाहिए। तेरा परिश्रम और बालकुमारका भाग्य मरनेसे पहले मैं इतना कम देखलूँ।"

"जिस प्रकार उस तिष्यरक्षिताने हमारे

निष्फल करदिये ; उसी प्रकार इस बालकके पुण्य प्रतापसे उसके मनोरथ भी आप निष्फल कर दिखाइये !" चन्दा बीचमें ही बोल पड़ी।

एक ओर बालकका असाधारण पुण्यबल था और दूसरी ओर घरमेंसे इस प्रकार सतत प्रेरणा हो रही थी ; अतएव कुणालके हृदयमें सुप्त आशा फिर जागृत हो चली। वह कहने लगा :—"माता ! मुझे तनिक विचार करलेने दे। उसके बाद ही मैं ठीक निर्णय कर सकूँगा।" इतना कहकर कुणाल वहाँसे चलागया।

उस दिन सायंकाल अपने कमरेमें बैठा हुआ कुणाल विचार कर रहा था। उसने अपनी बाल्यावस्थासे अब-तकके जीवन-इतिहासपर दृष्टि दौड़ायी। वह उज्जयिनिका आनन्द और अवन्तीके युवराज-पदका वैभव, उसकी अन्तरकी आँखोंके सामने फिर एकबार अपनी झलक दिखा रहा था। उस क्रूर माताने उसे आठवर्षकी अवस्थामें ही अन्धा बनाकर संसारसे बहिष्कृत्-सा कर दिया था। "हाय ! मैंने उसका ऐसा कौन-सा अपराध किया था कि जिसके बदले उसने ऐसे अपने अधम कृत्यसे मेरा सर्वनाश कर दिया ! उसके पुत्रसे पहले यदि मेरा जन्म हुआ, तो इसमें मेरा क्या दोष था ? जिससे कि उसने राजाको निमित्त बनाकर मेरी आँखें फुड़-

वादीं ! आज कई वर्ष बीत जानेपर भी मेर
वह वैभव उसका पुत्र महेन्द्र, युवराज-पद
रहा है ! तब जिस प्रकार उसने मेरा न
दिया, उसी प्रकार मैं भी क्यों न उसके
भ्रष्ट कर दूँ ? और अपना राज्य ता।
क्यों न प्राप्त करूँ ? यदि आज समय
न मैं भी परिश्रम करके पुत्रके भाग्यकी
देखलूँ ? संसारमें किसीके भी दिन हमेशा
जाते ! संसारमें देखनेमें आता है कि
हुआ राज्य पुत्र फिर प्राप्त कर लेता है।
मुझे भी अवश्य प्रयत्न करना चाहिए।
जागृत भाग्यही मुझे प्रेरणा करता हो तो,
बस, यही निश्चय रहा कि जसे भी हो सके
पाटलीपुत्र पहुँच जाऊँ और वहाँ अपनी
चमत्कार द्वारा पिताको प्रसन्न करके वरदान
इस प्रकार विचार-ही-विचारमें अन्तिम
कर कुणालने सुनन्दाको वह सब कह सुनाया
बात सुनते ही सुनन्दा आदि सब प्रसन्न हुईं
आशीर्वाद दिया—"बेटा ! तेरा मनोरथ
हो ! और शत्रुका सारा प्रपञ्च नष्ट हो जाय
"मेरी भी यही कामना है कुमार !

पूर्णरूपसे सफलता प्राप्त हो।" चन्दाने नम्रभावसे कहा।

"पुत्र! यहाँसे पाटलीपुत्र बहुत दूर है। इसलिए मार्गमें तुझे कठिनाई न होनेकी दृष्टिसे साथमें तू किसे ले-जाना चाहता है?" सुनन्दाने पूछा।

"किसीको नहीं, माताजी! मैं अकेला ही जाना चाहता हूँ और वह भी गुप्त रूपसे! पिता मुझे पहचान सकें, इस प्रकार भी नहीं। हाँ, बादमें अनुकूल समय आनेपर भले ही वे पहचान लें; किन्तु यहाँसे तो गुप्तवेषमें ही एक अन्धे गवैयेके रूपमें निकलकर घूमता-फिरता मैं अकेला ही पाटलीपुत्र जाऊँगा।"

"किन्तु पुत्र! मार्गमें अकेला और नेत्रहीन अपङ्ग-होनेसे खाने-पीनेका तुझे कष्ट होगा। इसलिए साथमें एक व्यक्तिको रखनेसे सुविधा रहेगी।" सुनन्दाने समझाया!

"इसके लिए तो मेरी सङ्गीतविद्या ही सहायक सिद्ध हो सकेगी। यदि यह सङ्गीतविद्या मुझे खाने जितना भी न दिला सकी; तो महाराजसे वह महान् साम्राज्य कैसे दिला सकेगी? अतः मेरा साथी तो केवल यह सितार ही रहेगा।" कुणालने कहा।

वह समय ही ऐसा था कि भाग्यपर भरोसा रखे विना छुटकारा नहीं था। अतएव विधातापर विश्वास

रखकर कुणालकी बातका सबने
इसके बाद एक शुभ मुहूर्त साधकर कुणाल
तैयार हुआ, तो शरतकुमारीने मङ्गल-तिलक
वह सामान्य भिक्षुक गवैयेका वेष धारण
सितार लिये पाटलीपुत्रके मार्गपर चल
उसे बहुत ही अच्छे शकुन हुए। उन
अनुभव करता हुआ कुणाल अपने स्नेही
ओझल होगया।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

अन्धा-सितारवाला

—:०:—

पाटलीपुत्रके राज-मार्गपर अभी कुछ दि
सितारवाला गाता हुआ दिखाई देता है।
सितारके स्वर साधता हुआ अपने मधुर कण्ठसे
स्वर अलापता है; तो उसकी इस कल
किन्नर और गंधर्व भी लज्जित हो जाते हैं।
गायककी मधुर तानसे सारा पाटलीपुत्र

रहा है। जब वह गाने लगता है तो हजारों मनुष्य उसकी स्वर माधुरीसे लुब्ध होकर गाना सुनने खड़े रह जाते हैं। सैकड़ों मनुष्य अपना काम छोड़कर उस देव दुर्लभ संगीतकी ओर आकर्षित होते हैं। कितने ही धनी-मानी एवं सरदार लोग उसकी प्रशंसा सुनकर अपने यहाँ उसे बुलाते और संगीत सुनते हैं। उसके संगीतपर मुग्ध होनेवाले लोगोंके हृदयमें तो केवल वह मधुर ध्वनि ही गूंजती रहती है। कई बार बड़े-बड़े अमीर-उमरावोंकी ओरसे उसे आमन्त्रण मिलता, और वह उसे स्वीकार करके उनके यहाँ जाता और अपने संगीतके अद्भुत चमत्कारसे श्रोताओंको मुग्ध कर लेता था।

प्रसन्न हुए सरदार जब उससे नाम-धाम पूछते तो वह केवल इतना ही बतलाता कि मैं सूरदास हूँ। अन्धा सितारवाला हूँ।"

"तुम्हारे परिवारमें कौन है सूरदासजी ? तो उत्तर में वह यही कहता कि "यह सितार ही मेरा सब कुछ है। यही मुझ अन्धेकी लकड़ी है। यही मेरे जीवनका आधार है।"

बड़े-बड़े प्रलोभन दिखाकर संगीतके अनन्य प्रेमी धनवान उसे सदैवके लिए ही अपने यहाँ रहनेका आग्रह

करते, किन्तु वह किसीके भी यहाँ सदैवके स्वीकार नहीं करता। वह यही उत्तर देता कि: घर रहनेसे फिर उसीका चित्त प्रसन्न रहती है। अतः प्रभु-भक्तिमें जो भावना रहनी वह नहीं रह पाती। इसीलिए हम तो केवल सेवक कहलाते हुए उनकी प्रसन्नता सम्पादन उन महान् आत्माकी नौकरी बजाते हैं।"

इसप्रकार सितारवाला उनलोगोंको देकर अपना असल परिचय किसीको भी नहीं था। जब उसके पूर्व-जीवनके विषयमें पूछा वह यही उत्तर देता कि :—"मेरा जीवन बहुत ही पूर्ण है। मैं उसे किसीके भी सामने प्रकट चाहता। अतएव आपलोग भी कृपाकर विषयमें कोई प्रश्न न करें।" उसके इस उत्तरको उसे अप्रसन्न करनेके लिए कोई भी उससे फिर पूर्व-विषयमें पूछ-ताछ नहीं करता था। जहाँ भोजनके लिए निमन्त्रण मिलते और उन्हें वह वहाँ जाता एवं अपने संगीतसे उन्हें प्रसन्न कर था। अमीरलोग उसके सामने कुछ भेंट या रखते, किन्तु वह उस मायाको स्वीकार नहीं और त्यागकी महत्ताका सबको भान कराते हुए

भोजनसे ही सन्तोष कर लेता था। इस प्रकार विशाल पाटलीपुत्र नगरमें साधारण रङ्कसे लेकर धनवान तक प्रत्येकके घर उस अन्धे सितारवालेके गीतोंकी प्रशंसा होने लगी।

एकदिन सम्राट् अशोक दरबारमें बैठे हुए थे और सभी राज-सभासद अपने-अपने आसनपर बैठे हुए थे। उस समय राज-काजसे निवृत्त होनेके पश्चात् कुछ नये-पुराने विवरण पढ़कर सुनाये जा रहे थे। इतनेही में एक मन्त्रीने निवेदन किया कि,—"महाराज! अभी कुछ दिनोंसे नगरमें एक गवैया आया है। अहा, उसकी संगीत कलाकी क्या प्रशंसा की जाय? देव! उसने सारे नगरको पागल-सा बना दिया है।"

"सच बात है महाराज! मुझे तो यही जान पड़ता है कि वह कोई गन्धर्व गुप्तवेशमें यहाँ आया है! अथवा यह भी हो सकता है कि उसे अपने इष्टदेवसे ही कोई वरदान प्राप्त हो! अन्यथा इतना सुन्दर कोई गा नहीं सकता। उसके संगीतका स्वर एकबार कानोंमें प्रविष्ट होते ही चित्तमें ऐसी बेचैनी पैदा हो जाती है कि बस, दिन रात उसका संगीत ही सुनते रहें।" दूसरे मन्त्रीने उसका समर्थन किया।

"फिर भी बड़े ही दुःखकी बात यह है कि ऐसे

सुन्दर कलावंतको दुष्ट विधाताने अंधा बना

यह सुनकर महाराजने पूछा :-"वह
ही है अथवा कहीं बाहरसे आया है ?

"है, तो कोई परदेसी ! गरीब
उसकी संगीत-कला अद्भुत् है। उसके
सम्मुख गंधर्व भी हार जायँगे।" प्रधान

"अजी, हार गये, ऐसा ही कहिये।
देव-गन्धर्व मनुष्योंके दृष्टिपथसे अदृश्य क्यों
इसके सुन्दर संगीतके सम्मुख लज्जित होकर
छुप गये हैं।" इस प्रकार एक कविके कहने
सभासद् हँस पड़े।

राजाने भी हँसते हुए कहा :-"यदि
सुन्दर गाता है तो यहाँ दरबारमें भी
संगीत कराना चाहिए।"

यह सुनते ही एक सामन्तने कहा :-"
यदि आप उसके मुखसे एकबार मधुर संगीत
तो उसे अपने यहाँसे जाने ही न देंगे और
उसका संगीत सुननेकी आपकी आतुरता
चली जायगी।"

"तब तो हम उसे अच्छा वेतन देकर
नौकर ही रख लेंगे।" राजाने कहा।

इसपर दूसरा सामन्त कहने लगा :—"महाराज ! उसे यदि भेटमें भी कुछ दिया जाता है तो वह स्वीकार नहीं करता, तब भला नौकरीकी तो बात ही क्या ?"

"तो क्या वह नौकरी करना नहीं चाहता ?" राजाने उत्सुकतासे पूछा ।

"हाँ, वह अत्यन्त निर्लोभी और त्यागवृत्तिवाला गायक है ; महाराज ! भोजनमात्रसे ही सन्तोष मानता हुआ प्रभु-भक्तिके रूपमें अपनी संगीतधारा प्रवाहित कर देता है।"

"ठीक है ! तब तो हम भी अवश्य उसका संगीत सुनेंगे। यों कहकर महाराजने प्रतिहारीको आज्ञा दी कि वह तुरन्त उस गायकको दर्बारमें उपस्थित करे ; किन्तु वह अन्धा था ; अतएव उसके लिए एक चिक-पर्दा डलवाया गया ! क्योंकि राजालोग हीन अङ्गवाले पुरुषोंका मुख नहीं देखते। दूसरी ओर पर्देमें रानियोंके बैठनेकी व्यवस्था की गई। इतने ही में वह सितारवाला गायक भी आ पहुँचा। राजाको न दिखाई दे, इस-प्रकार प्रतिहारीने उसके बैठनेका प्रबन्ध कर दिया।

इसके बाद गन्धर्वोंके सङ्गीतामृतको भी लज्जित करनेवाला उसका सङ्गीत आरम्भ होनेवाला था। सभा-भवनमें हजारों मनुष्य श्रोतागण उपस्थित होते हुए वहाँ

इतनी शान्ति व्याप्त हो रही थी कि सूईके आवाज भी सुनाई देती। हजारों नेत्र उस की ओर लगे हुए थे।

सितारवाला जिस समयकी प्रतीक्षा वह अब आगया था। जिसके लिए उसने इ परिश्रम कर अनेक कष्ट सहे थे, उस विषम अब कसौटी होनेवाली थी। आजका दिन बड़े ही महत्त्वका था। क्षणभर पश्चात् ही क्या है? इसका उस सभामें किसीको पता तक नहीं भी सितारवाला अपना ध्येय समझ रहा था। वह उच्चसे-उच्चतर सङ्गीत सुनाकर ... करनेका इरादा रखता था। प्रयत्न करना ... था; बाकी फल तो परमात्मा या दैवके ही ...।

सितारवालेने तैयार होकर क्षणभरमें ... आश्चर्य चकित करते हुए प्रभु-भक्तिमें वृद्धि अपने मधुर सङ्गीतकी स्वर-धारा ... आरम्भ किया :—

दादरा-माढ़-भैरवी

हे जीवन स्वामी! प्रतिदिन ही तेरे सन्मुख ...
हे भुवनेश्वर! कर जोड़के, मैं तेरे सन्मुख खड़ा
॥ हे

नम्र नयन प्रेमाश्रुपूर्ण कर, तेरे सन्मुख खड़ा रहूँ।
वीर-वीर जपते स्थिरमनसे, तेरे सन्मुख खड़ा रहूँ॥
॥ हे जीवन ॥
अखिल जगत-मानवके बिचमें, तेरे सन्मुख खड़ा रहूँ।
हे जगबन्धु! राज-राजेश्वर, तेरे सन्मुख खड़ा रहूँ॥
॥ हे जीवन ॥
भव-रणके इस कर्म किनारे, तेरे सन्मुख खड़ा रहूँ।
इस भवका ममकाज पूर्ण हो, तबतक सन्मुख खड़ा रहूँ॥
॥ हे जीवन ॥

अपनी सम्पूर्ण कला-कुशलताका उस सितारवाले गायकने इस गानेमें उपयोग कर दिखाया। प्रभु-भक्तिके रससे ओत-प्रोत इस शान्त-रस पूर्ण गीतका अद्भुत प्रभाव पड़ा और सारी सभा उसकी सङ्गीत माधुरी सुनकर मुग्ध होगई। गायकने अपनी स्वर माधुरीके द्वारा वीर हृदयोंमें भी प्रभु-भक्तिकी रस धारा प्रवाहित करदी थी। यदि आँखें होती तो वह देख सकता कि जिस प्रकार पुँगीके स्वरपर मुग्ध होजानेवाला सर्प एकाग्र-चित्तसे डोलने लगता; और अपनी सुध-बुध भूल जाता है; अथवा वीणाके स्वरसे लुब्ध हुआ हिरन जङ्गलसे खिंचकर नगरमें चला आता है, उसी प्रकार सारी सभा उस सङ्गीतको सुन मुग्ध हो रही थी। स्वयं

सम्राट् अशोकवर्द्धन भी उसके कण्ठकी
शैली और प्रभु-भक्तिसे परिपूर्ण भावपर मुग्ध
किन्तु महापुरुषोंकी प्रसन्नता या उनका
व्यर्थ नहीं जाता। महाराजने तुरन्त ही
'वर' माँगनेके लिए कहा।

उसे अब अपना मनोरथ पूर्ण होनेकी
प्रतीत हुई। राजाका वरदान शब्द
वालेने बड़ेही उत्साहपूर्वक कहा :—

आर्य-गीति

प्रबल-प्रतापी नरपति, मौर्यवंशके आद्य पुरुष
चन्द्रगुप्त पृथ्वीपति, बिन्दुसार-सुत अशोकश्री
पितु आज्ञा पालनकर जिसने लोचन अर्पण
वह कुणाल आकर पितु सन्मुख काकिणी-वर

इस प्रकार उसने वरदानमें अपने
करते हुए "काकिणी"की याचना की। उसके
सुनते ही महाराज एकदम चौंकपड़े। "
तू? बेटा, कुणाल?"

"हाँ, पिताजी! आपकी आज्ञाका
ही जो अन्धा होगया था। वही आपका पुत्र
सितारवालेने अपना परिचय दिया।

राजा सम्प्रति



"ओहो ! कौन तू ? बेटा, कुणाल ?"

(पृष्ठ २३४)

राजाने तत्काल उठकर पर्दा हटा दिया और अपने प्रिय पुत्रको देखकर उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उन्होंने कुणालको हृदयसे लगाकर उसका सिर सूंघा और अपनी गोदमें बिठाकर गद्-गद् कण्ठसे पूछा,—"बेटा! यह सब कैसे होगया? कुछ भी समझमें नहीं आता। मैंने तो उस पत्रमें तेरे लिए केवल पढ़ने-लिखने अध्ययनके लिए ही लिखा था; किन्तु फिर भी दुर्भाग्यने बड़ाही अनर्थ कर डाला।" यह दृश्य देख कर सम्पूर्ण सभा आश्चर्य-चकित होगई। कहाँ एक साधारण अन्धा गवैया, और कहाँ युवराज कुणाल! अहा, विधाताकी कैसी विचित्र लीला है!"

पिताके वचन सुनकर कुणाल समझ गया कि, "पिताको मेरी अपर माता तिष्यरक्षिताके उस षड़-यन्त्रका पता कैसे हो सकता है? फिर भी अभी मुझे यहाँ उसकी चर्चा नहीं करना है! मुझे तो केवल अपना काम बनालेना है। जब उसका मनोरथ निष्फल हो जायगा; तो वह स्वयं ही जीवनमृत जैसी हो जायगी। फिर उसे मरवाकर भी क्या करना है।"

"पिताजी! जो कुछ होनहार घटना थी, वह तो हो ही गई। उसमें अब हर्ष-शोकसे भी क्या लाभ हो सकता है? जैसा मेरे भाग्यमें था, वैसा हुआ। अस्तु।

"किन्तु हाय ! पुत्र ! उस भूलपर
पश्चात्ताप होता है। अब मैं उसका क्या
करूँ ? बोल, बेटा ! तेरे लिए अब मैं
कार्य करूँ ?"

"पिताजी ! मैंने आपसे वरदानमें "
याचना की है। बस, वही मेरे लिए
कुणालने कहा।

"हे वत्स ! जब मैं तुझपर प्रसन्न हु
कोई अच्छी वस्तु माँगले ! एक "काकिणी"
क्या माँगी ?" राजाने काकिणीका अर्थ
सकनेके कारण उससे कहा।

"देव ! युवराजने कोई साधारण वस्तु
है। वरन् इन्होंने तो आपके पास जो कुछ
माँग लिया है।" मन्त्रीने खुलासा किया।

"तो क्या इसने राज्य माँगा है ?"

"हाँ, देव ! 'काकिणी' राजपुत्रोंका
कहलाती है।" मन्त्रीने बताया।

"किन्तु, पुत्र ! तू राज्यको लेकर
क्योंकि राज्य मिलनेपर भी नेत्रहीन होनेसे
दूसरेके हाथमें सौंपना पड़ेगा। मैंने तो तु
से राज्य देनेका निश्चय किया था ; किन्तु

मेरा यह मनोरथ निष्फल कर दिया।" राजाने उदास-चित्त होकर कहा।

"पिताजी! आप खेद न कीजिये। मैं आपको एक बधाई देता हूँ कि आपके पौत्रका जन्म हो चुका है। वह राज्य करेगा।" कुणालने राजाकी शङ्काका समाधान किया।

"क्या तेरे यहाँ पुत्रका जन्म हुआ है? अच्छा! कब हुआ है, बेटा!" राजाने हर्षित होते हुए पूछा!

"पिताजी! 'सम्प्रति'का जन्म अभी कुछ मास पहले हुआ है!"

"क्या कहा? अभी कुछ मास पहले? तो अब वह कहाँ है?

"आपके दिये हुए मेरे ग्राममें!"

दूसरे ही दिन राजाने तत्काल घुड़-सवारोंके साथ मन्त्रियोंको बालकुमारको लिवानेके लिये भेज दिया! फलतः थोड़े ही दिनोंमें उनके साथ बालकुमार, शरत-कुमारी, सुनन्दा और चन्दा आदि समस्त परिवार पाटलीपुत्र आ पहुँचा। राजाने बड़े ही समारोहके साथ बालकुमारका प्रवेश महोत्सव मनाया और उसका नाम भी "सम्प्रति" ही कायम रखा।

दस दिन बीतनेके बाद महाराज अशोकवर्द्धनने

उस स्तन-पान करनेवाले बालक ... महोत्सवपूर्वक पाटलीपुत्रके सिंहासन पर ... दिया। इसप्रकार सुनन्दाकी अनेक दिन ... हुई मनोकामना परिपूर्ण हुई।

बाईसवाँ परिच्छेद

खींचतान

—:०:—

"हाय! यह तो अनहोनी बात होगई ... भयङ्कर अनर्थ हो गया! दवने मेरी ... दुर्गको समूल ढहा दिया। जिस राज्यके लो... कुणालकी आँखें फुड़वाकर अपने पुत्रको राज्य ... फिर भी दैवकी कैसी विचित्र लीला है ... सोची हुई कल्पनाको वह क्षणभरमें धूल-... देता है। एक काँटा दूर किया तो यह दूसर... निकल पड़ा! और अब तो महाराजने उसे ... दे दिया है! भला, उसे राज्यभ्रष्ट कैसे ... सकता है? हाँ, यदि वह इस संसारसे ही

जाय तो अलबत्ता अपना काम बन सकता है।" इत्यादि विचार करती हुई एक सुन्दर रमणी अपने विशाल भवन-में उदास चित्त होकर पलंग पर पड़ी हुई थी। आज उसकी चिन्ताकी कोई सीमा ही नहीं थी। उसे किसी भी प्रकारसे चैन नहीं पड़ रही थी। इसीलिये ऐसे कठिन अवसर पर वह किसीसे सलाह लेना चाहती थी। उसने नन्दनाचार्यके पास जानेका विचार किया, किन्तु फिर उसके मनमें यह विचार हुआ कि वह रूपलुब्ध भिक्षु तो मुझपर आसक्त हो रहा है। कितनी ही बार उसने बड़ी सावधानी और सतर्कतासे अपने शील-धर्म-की रक्षा की है। ऐसे एक प्रपञ्चीके पास जाते हुए उसके पाँव भारी हो चले; क्योंकि वह उसे अपना सतीत्व अर्पण कर हृदयका स्वामी बनाने पर ही उसके द्वारा अपना काम निकलवा सकती थी। तब क्या सतीत्व-भंग करना उसके लिए शक्य हो सकता था? कदापि नहीं! उसकी मोहित करनेवाली आँखें और विलासितापूर्ण चेष्टाएँ तो गजबकी हैं। तब क्या उसी दुष्टने यह सब काम बिगाड़ा है! क्योंकि जो काम कर सकता है, वही बिगाड़ भी सकता है। एक दिन तो उसने कहा था कि तुम्हारा काम मैंने सिद्ध कर दिया है और अब वह शीघ्र ही सफल हो जायगा।

मुझे पता नहीं था कि उसकी ऐसी
यह पता तो बादमें जाकर लगा। वह धूर्त
कुछ कह रहा था, वह सब व्यङ्गमें ही
समझमें आ रहा है। अपने प्रयत्नमें
तो कहीं उसने यह सब काम नहीं बिगाड़ा
इस सम्बन्धमें उससे सब बातोंका
करना चाहिए! देखूँ तो सही कि वह
वह सब जान लेनेपर आगे क्या किया
सोचना होगा!"

तत्काल ही वह कपड़े पहनकर
कल्याणी नामकी दासीको साथ ले, रथमें
मन्दिरकी ओर चलदी।

नन्दनाचार्य भी अपने मनोराज्यमें
तिष्यरक्षितापर क्रुद्ध हो रहा था। सं
प्रमाणित होनेवाला सौन्दर्य यदि
उपभोगमें न आ सके; तो उसको खेद होना
ही था। वह वारम्बार गुप्त रूपमें
बुलवाता; किन्तु वह सुन्दरी सावधान हो
आती थी। इसीलिये वह अत्यन्त असन्तुष्ट
साथ ही वह सोच रहा था कि ऐसी अन्य
जाय कि जिससे वह हाथमें आ सके;

हवाई विचार हवामें ही मिल जाते थे। किसी भिक्षा लेनेके बहाने भी वह तिष्यरक्षिताके मह आता; किन्तु वह उसे दूरसे ही देखकर आगे-पी हो जाती और दासीके द्वारा भिक्षा दिलवा कर उ विदा करा देती। यदि कभी उसके सामने आ ही जार्त तो सावधानीके साथ उसके पूछे हुए प्रश्नोंका उत्तर देकर बात उड़ा देती। मिथ्या आश्वासन देकर विदा कर देती। इस प्रकार वर्षोंकी आग उसके हृदयमें धुँधवाती रहनेसे उसने भी इसका शीघ्रतासे निपटारा करनेका निश्चय कर लिया। "अब केवल एकबार ही मौका साधकर तिष्यरक्षितासे भेट करके उसके विचार जान लेना है कि वह क्या कहती है? यदि वह मेरी बात स्वीकार करती हो तो ठीक है; नहीं तो फिर किसी उपायसे उसे फँसा देना होगा। बलात्कार द्वारा भी उसके मधुर यौवनका उपभोग तो एकबार अवश्य-करना ही चाहिए! बस, केवल एक ही बार वह मेरे उपभोगमें आजाय तो बहुत है! मैं उससे पूछ लूँगा कि:—"हे सुन्दर रमणी! केवल एक ही बार मेरी इच्छा पूर्ण करदे। तेरे उस मधुर, अनुपम एवं विकसित यौवनका आनन्द लेनेदे! जिससे कि चिरकालसे म हुई मेरे हृदयकी व्यग्रता किसी प्रकार शान्त हो

यदि वह मेरी बात मान ले तो ठीक
फिर...... ।" इस प्रकार विचार करते-
भोहें तन गईं ! क्रोधके आवेशसे शरीर
उसके नेत्रोंसे क्रोधकी चिनगारियाँ
उसका चेहरा भयावना होगया। उसने
कुछ अपूर्व-सा निश्चय किया :—"नहीं तो
मार डालूँगा ! फिर भले ही वह सम्राट्
मानिनी महारानी ही क्यों न हों !
फाँसीपर चढ़ादे ; किन्तु यदि उसने मुझे
दिया ; तो अवश्य मैं उसकी खबर लूँगा ;
उससे मिला कैसे जाय ? यही तो बड़ी क
बुलवानेपर वह आती भी नहीं और
मैं राज-भवनमें जाता हूँ तो मुझे देखते
उधर हो जाती है। यदि कभी मिल भी
स्पष्ट बात करनेका अवसर नहीं मिल पाता
आस-पास दासियाँ तो घूमती ही रहती
प्रकार कोई ठीक उपाय समझमें न आनेसे
अवसरकी प्रतीक्षा करने लगा।

कुछ दिन इसी परिस्थितिमें व्यतीत हो
इस बीच ऊपर लिखे अनुसार घटना पाटलि
होगई। देश-देशान्तरमें सम्प्रतिकी राज्य-

चार फैल गया। पाटलीपुत्रमें तो इस अपूर्व घटनासे सबके मनमें अत्यन्त आश्चर्य हो रहा था। नन्दनाचार्यने भी यह समाचार सुनलिया था और इस घटनासे तिष्यरक्षिताका मनोरथ निष्फल हो जानेकी बात जानकर वह भी मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था।

इस घटनाके पश्चात् नन्दनने अनुभव किया कि "अब कदाचित् वह स्वार्थी रानी फिर कोई युक्ति पूछनेके लिए यहाँ आवे तो आश्चर्य नहीं, किन्तु यदि अब वह आवे भी तो पहले उसके यौवनका उपभोग करनेके बाद ही उसका काम करनेकी स्वीकृति देनी होगी। भला, संसारमें सीधी उँगलीसे भी कहीं घी निकलता है? कोई भी किसी पर यों ही उपकार नहीं कर देता। इस स्वार्थी जगत्में तो स्वार्थके लिए ही सर्वत्र खींच-तान चलती रहती है। यदि अपना स्वार्थ हो तो लोग पैरों पड़ते हुए आते हैं; नहीं तो कोई किसीसे बात भी नहीं करता। इसलिए अपना दाव लगनेपर भूलकर भी नहीं चूकना चाहिए।" इस प्रकारकी विचार सृष्टिमें वह विहार कर रहा था। इतने ही में दासीने आकर आचार्यको प्रणाम करते हुए निवेदन किया कि :—"महारानी तिष्यरक्षिता आपके-दर्शनार्थ पधार रही हैं!"

तिष्यरक्षितका नाम सुनते ही न
होगये। उसने मन-ही-मन कहा :—"
अन्तमें फिर आई तो सही! देखता
मुझसे क्या मतलब निकालना चाहती है
होकर उसके आनेकी प्रतीक्षा करता
इतने ही में तिष्यरक्षिता आ पहुँची अ
द्वारपर बैठाकर सावधानीके साथ उ
प्रणाम करते हुए उनके सुख-सम्वाद पूछे

"आओ, तिष्यरक्षिता! आज कई
रास्ता तो नहीं भूल गईं?" नन्दनने ८
स्वागत किया!

"नहीं; मैं तो विशेष रूपसे
ही चलकर आई हूँ। मुझे आपसे कु
तिष्यरक्षिताने उसके ठण्डे स्वागतको
हुए कहा।

"बैठो! तुम्हारी जो इच्छा हो नस
हो! मेरे योग्य जो भी कार्य हो, अव
"गुरुवर! आपकी धारणा तो
मिलगई! देखा न आपने?" रानीने

"कौन सी धारणा?" अन
साधुने पूछा।

"क्या इतने ही में आप भूलगये ? आँखें फुड़वा कर एक पीड़ा मिटाई थी तो दूसरी आकर खड़ी होगई ! महाराजने तो उस अन्धेके बेटे दुध मुहे बच्चेको राज्य भी देदिया है !"

"तो इससे क्या हुआ ? महाराजने इसमें क्या बुरा किया ? यह सब मेरी ही सम्मतिसे तो हुआ है।" साधुने मार्मिक ढङ्गसे कहा।

"अर्थात् ? आपकी सम्मतिसे ! क्यों महाराज ? महेन्द्र तो आपका ही पुत्र है नँ ? उसीके हितके लिए आपको प्रयत्न करना चाहिए था नँ ?"

"महेन्द्र, मेरा पुत्र ! छट्। क्या तुम मीठा बोल-कर मुझे छलने आई हो ? तिष्यरक्षिता ! सावधान ! मैं एकबार तुम्हारे वचनमें आकर धोखा खा चुका हूँ ! किन्तु अब ऐसा नहीं हो सकता ! महेन्द्र तो अशोकका पुत्र है ! उससे मुझे क्या प्रयोजन हो सकता है ?" साधुने तिष्यरक्षिताके कान खोल दिये !

"आपसे प्रयोजन क्यों नहीं है ? उसकी चिन्ता तो आपहीको रखनी पड़ेगी। उस सम्प्रतिको महाराजने राज्य कैसे दिया, यह आप जानते हैं ?"

"उसमें जानने जैसी बात ही क्या थी ? मैं तुम्हें बतला ही चुका हूँ कि यह सब मेरी सलाहसे ही हुआ

है। आज-तक पर्देमें छिपा हुआ तेज
हुआ है !"

"किन्तु आपको ऐसा क्यों करना
तो बतलाइये ?"

"तुम्हारे विश्वासघातका दण्ड देने
तुम्हारा काम कर दिया। तुम्हारे
महान् परिवर्तन कराया ! फिर भी र
मेरे प्रयत्नकी यही कीमत की ? अरे
तुम............।" भिक्षु आगे बोलते

"तो क्या मेरे लिए आपके हृदयमें
सीमासे परेका प्रेम उमड़ रहा है ? गु
साधु बन चुके हैं। आपके लिए त
जीवनका मुख्य कार्य होना चाहिए !"

"तो क्या, स्त्रियाँ भी परोपकार नह
दूसरेके हृदयका दुःख दूर करना क्या र प

"किन्तु उसकी अपेक्षा स्त्रियोंके लिए
व्रत अधिक प्रिय होता है। फिर यह
हैं कि महाराजको पता लगने पर वे अ
भी खाल खिंचवा सकते हैं !"

"यह केवल तुम्हारा भ्रम-पूर्ण ि
राज्यके कार्य-भारमें डूबे हुए म० र ज

है कि तुम कहाँ पड़ी हुई हो? और क्या कर रही हो! तुम्हीं बताओ, कुणालको अन्धा हुए आज कई वर्ष बीत गये; फिर भी अबतक कोई उसका भेद जान सका है?"

"किन्तु मुझसे भी अधिक रूपवती दासीको यदि मैं आपके पास भेजूँ तो? मेरी अपेक्षा वह आपकी अधिक सेवा करेगी और मुझसे जो नहीं हो सकता; वह सब आपको दे सकेगी!"

"दासी तो आखिर दासी ही है! नमक कभी शक्करकी बराबरी नहीं कर सकता! कीड़ी भी क्या कभी कुञ्जर-हाथीसे स्पर्धा कर सकती है? रानीजी! आज वर्षों बीत गये, मैं तुम्हारे वियोगमें घुल रहा हूँ। मेरे हृदयमें तुम्हारे बिना कितनी वेदना हो रही है; इसे कौन जान सकता है? किन्तु फिर भी तुम तो अपना स्वार्थ सधते ही वैद्यको शत्रु मानने लगी!"

"यह तो ठीक है! किन्तु अब आपको एक काम तो करना ही पड़ेगा!"

"वह कौनसा काम है?"

"उस सम्प्रति रूप काँटेको दूरकर रास्ता साफ करनेका। चाहे तो कोई उपाय बताइये, या फिर आप ही इस कामका भार अपने सिरपर ले लीजिये।"

"किन्तु यह मुझसे नहीं हो सकता! ०

"मैं कहती हूँ कि आपको यह तो करना कहिये! क्या कहना है?"

"तुम कोई मेरी अर्धाङ्गिनी पत्नी न प्रकार आज्ञा देरही हो?"

"तो क्या आप इनकार करना चाहते हैं

"हाँ, एक शतपर तुम्हारा काम कर और वह यही कि तुम मेरी बनजाओ।"

"क्या, मैं?" रानी कुछ गर्व-पूर्वक

"हाँ, तुम!"

"ठीक है। हमारा कार्य शीघ्र ही जैसा आप कहेंगे, वही करूँगी! अब त सन्तोष हुआ?"

"रानीजी! अब भी क्या तुम मुझे बातोंमें फँसाना चाहती हो? तुम्हारे वच विश्वास नहीं!"

"मैं आपको वचन देती हूँ कि तपरा आप फिरसे विश्वास कर देखिये।"

"किन्तु इस प्रकारके वचनकी आवर क्या है? आओ न! अभी ही देखो, एकान्त और निर्जन स्थान है! इसके

फिर मैं अवश्य तुम्हारा काम पूरा कर सकता हूँ।"

"इस समय ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा गुप्तकार्य तो रातमें ही ठीकसे हो सकता है और वह भी सर्वथा एकान्तमें ही।"

"तो ठीक है, एकान्तमें ही सही! मैं कब इनकार करता हूँ? तुम जहाँ कहो, वहीं यह सेवक सेवा करनेके लिए उपस्थित हो सकता है!"

"तो क्या तुम्हारी यही इच्छा है?"

"हाँ, इसके सिवाय दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। जब तक तुम मेरा मन सन्तुष्ट नहीं कर देती; तब तक मैं कुछ नहीं करूँगा। अच्छा हुआ कि तुम आगई! अन्यथा मुझे तो इतना क्रोध आ गया था कि तुम्हारी वह गुप्तबात भी महाराजसे कह देता! और तुम्हें उस अपराधका दण्ड दिलवाता!"

रानी यह सुनकर विचारमें पड़ गई। उसने कहा :—"ठीक है! तब पाटलीपुत्र नगरके बाहर गङ्गाके तटपर वृक्षोंकी झाड़ीमें किसी देवताका जो जीर्ण-शीर्ण मन्दिर है, वहाँपर एक प्रहर रात बीत जानेपर आप मेरी प्रतीक्षा कीजिये। मैं लगभग एक प्रहर रात बीते वहाँ आऊँगी। अधिकसे-अधिक मध्य-रात्रि तक तो अवश्य ही पहुँच जाऊँगी।" इस प्रकार आश्वासन

देकर महारानी नानाप्रकारके विचार
दासी कल्याणीको साथ लेकर वहाँसे च

तेईसवाँ परिच्छेद

अन्धेरी रातमें

—:०:—

प्रहर रात बीत जानेसे इस समय
पूर्ण शान्तिमें निमग्न हो रहा था। प्रदृ
पुत्र नगर दिनभरकी हल-चलसे श्रान्त
शान्तिका अनुभव कर रहा था। फिर स
मनुष्योंका आवागमन दिखाई देता था।
राज-प्रासादके गुप्तद्वारसे दो स्त्रियाँ निकलीं
वेप अद्भुत् था, जब कि दूसरीका स व
दोनों ही समान अवस्थावाली और
शारीरिक गठनकी थीं। उन दोनोंका अ
अधिक मिलता-जुलता था कि, दोनोंमेंसे नि
पहचान सकना भी कठिन था। उनमेंसे
प्रतात होनेवाली चतुर स्त्रीने दूसरी सुन्दर
सुसज्जित स्त्रीको सब बातें भली-भाँति समझ

इस समय वह स्वयं दासी बनगई थी और दासीको अपनी वेषभूषा देकर अपने समान बनादिया था ; क्योंकि वह युक्तिपूर्वक अपना काम बनालेना चाहती थी। उसे विश्वास था कि वह साधु किसी भी मन्त्र-तन्त्रके द्वारा अवश्य मेरा काम बना देगा। इसीलिए किसी भी प्रकारसे अन्धकारका लाभ उठाकर उसे छलनेका इसने विचार किया था और इसी कारण उस साधारण-सी प्रतीत होनेवाली स्त्रीने यह युक्ति खोज निकाली थी। पाठक समझ ही गये होंगे कि वह सामान्य दिखाई देनेवाली स्त्री महाराज अशोककी पटरानी तिष्यरक्षिता थी और दूसरी उसकी एक दासी थी, अपने ही समान आकार-प्रकार वाली दासीको उसने सारी बातें भली-भाँति समझा दी थीं और इसी लिए अब वे इस प्रपञ्च रूपी अभिनयको पूरा करनेके लिए वेष बदलकर नगरसे बाहर गङ्गाके किनारे चली जा रही थीं।

चलते-चलते वृक्षोंकी एक घनी झाड़ीके पास आकर ठहरीं और धीरेसे आगे बढ़कर उस झाड़ीमें होती हुई एक जीर्ण-मन्दिरके पास आ पहुँची ; किन्तु उसी समय एक प्रचण्डकाय पुरुषने भी गुप्तरूपसे उनका पीछा किया। क्योंकि इस प्रकार घोर अन्धेरी रातमें नगरके

बाहर उन दोनों स्त्रियोंको जाते देखकर आश्चर्य-सा हुआ और उसने विचार किया "देखें, ये कहाँ जा रही हैं ?" तत्काल वह उ पीछे चल दिया। वह घोर अन्धेरी रात स १ काली चादर फैलाकर सबको निद्राकी गोदमें थी। फिर भी संसारमें कुछ जन्तु ऐसे भी जो सदैव विद्यमान रहते हैं। उन्हें दिनमें रातमें भी शान्ति नहीं होती।

गुप्तवेषधारी पुरुषने उन स्त्रियोंको लिये बहुत कुछ प्रयत्न किया; किन्तु वह जान सका। फिर भी उसने इतना तो जान कि वे किसी भले घरकी हैं; किन्तु इस रात्रिमें वे ऐसे एकान्त स्थानमें कहाँ जा रही इसी शङ्काने उसे उनके पीछे लगादिया। ' प्रणय-लीलाके खेल खेलने तो नहीं जारही हैं ?' प्रणयकी अग्नि हृदयमें इतनी धधकती रहती है। कारण अन्धे बने हुए स्त्री या पुरुष उसीमें त जाते हैं। उसके सिवा उन्हें और कुछ सूझाई दे वे लोग हृदयमें कामदेवके मन्त्रका स्मरण दिन या रातको भी नहीं देखते। जो स्त्रियाँ कौएको देखकर भयभीत हो जाती हैं, वे ही

निर्भय होकर नर्मदा पार कर सकती हैं। भला, स्त्रियोंके हृदयका पार कभी कोई पा-सका है? अहा! देखिये तो सही, किस प्रकार वे निर्भयता-पूर्वक उस जीर्ण-मन्दिरकी ओर चली जा रही हैं? नारी अबला होते हुए भी कितनी 'सबला' हो सकती है, उसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। बेचारा, इसका पति न जाने कहाँ निद्रामें निमग्न होगा। कहावत है कि, सबसे अधिक मीठी वस्तु 'विषय-वासना' होती है, उसका यह प्रत्यक्ष प्रमाण सामने है!

इसी प्रकार लोगोंमें यह भी एक कहावत प्रचलित है कि :—

आभा, गाभा, वर्षाकाल, स्त्री-चरित्र अरु रोताबाल!
इनको परख सके जो कोय; दिव्य शक्तिधर जानो सोय!!

अर्थात्—आकाशमें क्या है? अथवा वह क्या वस्तु है? और कितना विशाल है? इन बातोंको जो बतला सके; इसी प्रकार गर्भमें रहनेवाला बालक पुत्र है या पुत्री, और वह किस प्रकारका होगा? वर्षा कब होगी? तथा स्त्रीके हृदयकी बात और बालकके रोनेका रहस्य कोई कैसे जान सकता है? अर्थात् साधारण बुद्धिवाले व्यक्तिके लिए इनका भेद पाना असम्भव ही है; कोई दैवीशक्तिधारी ही जान सकता है।

"आह! कुलीन परिवारकी स्त्रियाँ
वशीभूत होकर क्षणिक सुख या आनन्दके।
कैसे नीच प्रयत्न कर सकती हैं? वे एकके सा
खेल-खेलती हैं तो दूसरेके साथ बातें ...रती
तीसरेकी ओर देखकर मुसकुराती हैं! ...
हृदयमें कोई और ही पुरुष होता है। ...
सतियाँ तो संसारमें विरली ही होती हैं। ...
नारीजातिके आन्तरिक चरित्रको तो जो ...।
वही जान सकता है!

आश्चर्य तो यह है कि व्यभिचार ...
ऊपरसे तो जगत्को ठगनेके लिए इतना अधिक
करती हैं कि, मानों सतियोंमें सर्वश्रेष्ठ पद
प्राप्त हुआ है। वे अपने पति या अन्य ...
सामने आनेवाले पुरुषोंके साथ इस प्रकार ... है।
हैं कि जिससे वे उसे महान् सती समझ सकें! वे
तो बोलते हुए शर्माती हैं; और पर-पुरुषको
छिप जाती हैं; तब हँसने और बोलनेकी तो
क्या? किन्तु उन बेचारे भोले-भाले पुरुषोंको ...
कि वह ठगोरी कितनी दुश्चरित्रा है? उसे ...
कि मेरे सामने सतीका आडम्बर करनेवाली
स्त्री अपने प्रियतमसे मिलनेके लिए अपने ...

लोगोंको छकाकर किस प्रकार गुप्तरूपसे निकल जाती हैं! "अस्तु। मुझे भी इन कुटिल कामिनियोंका चरित्र देखना तो अवश्य चाहिये कि कौनसा प्रेमी इनकी उस एकान्तमें प्रतीक्षा कर रहा है?" इस प्रकार विचार करता हुआ वह वीर पुरुष अपने हथियार सम्हाले वृक्षकी झाड़ीमें उनके पीछे-पीछे जाकर अदृश्य होगया!

उधर उस जीर्ण-मन्दिरमें नन्दनाचार्य कभीसे आकर इन आगन्तुकोंकी वाट देख रहा था। उसे आये, बहुत देर हो चुकी थी; किन्तु फिर भी अबतक उसे किसीके आनेकी आहट नहीं मिल रही थी। इसीलिए वह आशातुर हृदयसे किसी स्नेहमूर्तिके आगमनकी आँखें फाड़कर प्रतीक्षा कर रहा था। अन्तमें उसकी आशा सफल हुई और निकट ही किसीके पैरोंकी खड़-खड़ाहट सुनाई दी। उसके कान सचेत हुए और वह मन्दिरके बाहर चबूतरेपर आ खड़ा हुआ। इतनेहीमें जो दो स्त्रियाँ आईं, उनमेंसे एकने तुरन्त आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और धीरेसे कहा :—"आप प्रतीक्षा करते हुए थक गये होंगे। चलिये, हम भीतर चलें!" उसका स्वर बिलकुल तिष्यरक्षिता जैसा ही था।

"तुम्हारे साथ यह दूसरी स्त्री कौन है, महारानी जी?" साधुने कामातुर होते हुए भी भयभीत होकर

पूछा ; किन्तु आगन्तुक रमणीने जैसे ही
हाथ रखा कि उसके गात्र एकदम शि
शरीर पसीनेसे लथपथ होगया। घड़ी का
मुंह खुलता-सा जान पड़ा। क्योंकि ५
एकान्त स्थितिसे लाभ उठाकर उसे ५च्छी
जालमें फँसा लिया था।

उस रमणीने उत्तर दिया :—"यह तो
पात्र दासी है। इसके विषयमें आप कोई
जैसी मेरी श्यामा थी, वैसी ही यह
सखी है!" उसका उद्देश्य किसी भी
द्वारा अपनी स्वामिनीका उद्देश्य पूर्ण

कामान्ध बने हुए नन्दनने कहा :—"
तुम्हारी दासी है? ठीक, तो यह भले ही
खड़ी जम्हाइयाँ लेती रहे। आओ! ह
मन्द वायुके सेवनसे आनन्द प्राप्त करें!"
उसने उसके कपोलपर अपना हाथ ७ ७
प्यार करने लगा।

"उँह्! यहाँ यह क्या कर रहे हो?
देख रही है, इसका विचार नहीं करते!
भीतर चलें! फिर तो मैं आपही की हूँ
प्रकार धीरेसे उस रमणीने कहा।

"ठीक है, भीतर चलो !" इस प्रकार उस घोर अन्धेरी रातमें वे दोनों प्रेमी उस खण्डहरमें अदृश्य हो गये ! इधर वह दासीके समान दिखाई देनेवाली महिला उनके जानेके पश्चात्, उस जीर्ण मन्दिरके चबूतरे पर अपनी कटार सम्हाले हुए आ खड़ी हुई और थोड़ी ही देरमें मन्दिरके द्वारके भीतर जाकर छिप गई। वहाँ खड़ी हुई वह उनके बाहर आनेकी प्रतीक्षा करने लगी।

इधर वह तीसरा पुरुष छिपा हुआ इनकी सभी चेष्टाओंको देख रहा था। उसे दूरसे ही इस दुष्कर्मकी गन्ध आगई थी। अतः इस दृश्यको देखते ही उसे अपना अनुमान सत्य प्रतीत हुआ। उसने देखा कि व्यभिचारके प्रपञ्चमें फँसकर एक कुलीन स्त्रीने किसी पुरुषको हृदय-दान दे डाला है। इसके बाद वे दोनों जब भीतर चले गये; तब वह पुरुष भी उस स्थानसे परिचित होनेके कारण एक वृक्षपर चढ़कर मन्दिरके ऊपरी भागपर होता हुआ धीरेसे इसप्रकार एक शून्य-स्थानमें नीचे उतर पड़ा, जिसमें किसीको पता न लग सके। इसके बाद वह उस स्थानपर जा पहुँचा जहाँ वे दोनों प्रेमी गुप-चुप प्रेमालाप करते हुए परस्पर आबद्ध हो रहे थे। अन्धकार होते हुए भी उनकी पाप

क्रीड़ाका उसे पता लग ही गया। फिर
खड़ा रहा। उनकी चेष्टाएँ देखकर ि
लिए उसने तलवारपर हाथ डाला, ि
विचार हुआ कि संसारमें ऐसे कितने ही
विलासमें डूबे हुए हैं; मैं कितनोंको मार
दुष्कर्मका फल ये ही भोगेंगे!

कुछ देर बाद जब उनकी रतिक्रिया
तो साधुका हृदय कुछ शान्त हुआ;
उसका सारा शरीर तर होगया और परि
वह अर्धमृत जैसा होगया था। इसके बाद
थोड़ा शान्त होनेपर जो बात उस
समझमें नहीं आ सकी थी, उसकी ओर
उसने सोचा कि—"क्या यह तिष्यरक्षिता
मुझे धोखा तो नहीं दिया?" और तब
हुआ कि उसकी आवाजमें कुछ बनावट
उसने उसके साथ फिर धीरे-धीरे बातें
किया, किन्तु उसने कोई उत्तर नहीं दिया
कहा कि :—"अब मैं जाती हूँ। बाहर मेरी
हुई कबसे राह देख रही होगी!"

"अब फिर कब आपके दर्शन होंगे?"
उसके स्वरकी परीक्षाके लिए पूछा!

"जब आपकी इच्छा होगी, तभी!" उस रमणीने संक्षेपमें उत्तर दिया। वह स्त्री जैसे भी हो सके, वहाँसे शीघ्र चली जाना चाहती थी; किन्तु वह धूर्त्त भिक्षुक उसे अपने बाहुपाशसे छोड़ नहीं रहा था। उसकी शङ्का दृढ़ हो जानेसे वह उसके शरीरपर हाथ फिराने लगा। तब तो उसे पूर्ण विश्वास होगया कि "यह तिष्यरक्षिता नहीं है। उसने निश्चित ही मुझे धोखा दिया है। अन्धकारसे लाभ उठाकर उसने अपने बदले अपनी जैसी दूसरी स्त्रीको मिला दिया है। ऐसा जान पड़ता है कि वह दासीके समान दिखाई देनेवाली स्त्री निश्चित ही तिष्यरक्षिता होनी चाहिए। यदि मेरा यह अनुमान सत्य हो तो, आज उससे भी मुझे सम्भोग करना ही चाहिए। क्योंकि ऐसा सुअवसर फिर हाथ नहीं आ सकेगा! किन्तु एकबार पूरा पता लगा लेना ठीक होगा।" यह सोचकर उसने सत्यासत्यकी परीक्षा करना आरम्भ किया।

चौबीसवाँ परिच्छेद

परिणाम

—:o:—

"अब मुझे छोड़िये नँ ?" उस .

हुए कहा ।

"मैं तुझे तभी छोड़ूँगा, जब तू

कि तू कौन है ?" साधुने कहा ।

साधुका यह प्रश्न सुनते ही वह

"अररर ! सत्यानाश ! सतीत्व

भेद खुल ही गया ।" फिर भी उसने

"आप कहीं पागल तो नहीं होगये

जिसके लिए रात-दिन व्याकुल हो रहे

हूँ ! मैंने जिस प्रकार आज आपका

किया है ; उसी प्रकार अब आप भी

कीजियेगा ।"

"क्या तू वास्तवमें तिष्यरक्षिता है ?"

"आप नाम मत लीजिये ! रात

भी दीवालके भी कान होते हैं ; कोई

अनर्थ हो जायगा !"

"भले ही सुनले ; तू सच-सच बतला कि तू कौन है ?"

"आपने जिसे पूछा, वही तो हूँ और कौन हो सकती है ? मेरे सिवाय आपकी काम-तृष्णा शान्त करनेकी किसे गरज पड़ी है ?"

किन्तु तिष्यरक्षिताका नाम सुनते ही इनके पीछे लगा हुआ वह गुप्त पुरुष एकदम चौंक पड़ा। उसके रोम-रोममें क्रोधकी ज्वाला प्रकट हो उठी। उसने काँपते हुए अपने होंट चिबाये ! क्षणभरमें ही उसके शरीरपर अनेक विकार प्रकट हो चले ; किन्तु अन्धकारके कारण कोई देख न सका। बारम्बार तलवारपर हाथ जाता और वह फिर रुक जाता। उसे विश्वास होगया कि मेरी मानिनी प्रियतमा तिष्यरक्षिताका हा यह दुष्कृत्य है और वह पुरुष भी धूर्त साधु नन्दनाचार्य ही है। अरे, जिसे मैं पूज्य गुरुके रूपमें मानता था और राजदर्बारमें उसकी कहाँ तक सम्मान रक्षा करता था ? किन्तु वही ऐसा दुराचारी निकल गया ? हा, दुर्दैव ! और वह भी मेरे ही घरमें पटरानीके साथ ?" इस प्रकार अनेक तरहके विचार करता हुआ वह गुप्त वेषधारी पुरुष महाराज अशोकवर्धन ही था। रातका वह गुप्त रूपसे नगरकी चर्चा सुनने और लोक-

लीला देखने निकला था। अतः
दोनों स्त्रियोंपर उसकी दृष्टि पड़ते ही
इनके पीछे चल पड़ा और अभी वह छु
हुआ इनकी पाशवी क्रीड़ा देख रहा था

दोनोंकी बकझकमें उसे पता च
रक्षिता साधुके चंगुलमें फँसी हुई है;
ठीक-ठीक पता न लगजाय कि वा
रक्षिता ही है अथवा अन्य कोई स्त्री।
करके चुप-चाप उनकी बकझक देखता-

"अपने मतलबकी बात कहकर
लुच्ची? मेरे सामने झूट बोलती है? मैं
कि तू तिष्यरक्षिता नहीं! बोल! सच
है या नहीं? धीमे स्वरमें किन्तु जोशके
हुआ वह बलिष्ट साधु उसे मारने लगा!

"हाँ-हाँ! मुझे मारो मत! मैं
रही हूँ। महाराज!"

"अरी, राँड! तू अब भी झूट
है? जब तक तू सच नहीं बोलेगी, तब
कदापि नहीं छोड़ूँगा! समझी? जा
डालूँगा। तेरा स्वर ही बतला रहा है
रक्षिता हर्गिज नहीं है।"

"यह आपका भ्रम है। मेरा स्वर किंचित बदल जाने से ही आपको ऐसा प्रतीत होता होगा।"

ओह! तू अभीतक भी सच नहीं बोलरही है। बोल! सच-सच बतला दे; नहीं तो मैं अभी तेरा गला घोटदूँगा। अब भी समय है कि तू सच बात बतला दे! तेरे साथ आई हुई वह स्त्री कौन है और तू दरअसलमें कौन है?"

उनकी इस बकझकको सुनकर गुप्त रूपसे खड़ेहुए राजाको बड़ा आनन्द आरहा था। उसने देखा कि अभी और यहीं इन पापियोंकी पाप-लीलाका भेद खुल गया; किन्तु कहीं इस विवादका अन्त उलटे-सीधे रूपमें न हो जाय; क्योंकि ऐसे क्लेशका अन्त कभी अच्छा नहीं होता। मुझे इसमें बीच-बचावके लिए पड़ना चाहिए अथवा नहीं? यही एक विचारणीय प्रश्न है। फिर भी परिणाम तो एकबार देखना ही ठीक होगा। ऐसे पाप-कृत्योंका परिणाम विधाता किस रूपमें दिखाता है। यह सब सोचकर ही राजा चुप-चाप खड़ा-खड़ा तमाशा देखता रहा।

"मैं शपथ खाकर कहती हूँ कि मैं वही हूँ। हाथ फिराकर देखलो कि वही यह शरीर है। वे ही वस्त्राभूषण हैं; वही रूपरंग है। तुम भाग्यशाली तो पूरे हो

कि मुझे तुम्हारी इच्छा पूर्ण करनेकी .
कहाँ तो मैंने तुम्हें अपना प्राण वल्लभ
ऊपरसे यह पुरस्कार दे रहे हो ?"

"ठीक है। यदि तू तिष्यरक्षिता ही
बाहर ! अब चन्द्रमा भी उदय हुआ है।
प्रकाशमें निश्चय हो जायगा।" यों कहते
गर्दन पकड़ कर वह बाहर ले आया।

उधर वह गुप्त पुरुष उनके पापका
लिए मार्गमें से हटकर एक कोनेमें खड़ा हो
दोनों बाहर आगये और चन्द्रमाके
बारीकीसे देखकर यह निश्चय कर लिया कि
रक्षिता नहीं है।" रण्डे ! तू मुझे धोखा
है ?" यों कहते हुए उसने धक्का देकर
गिरा दिया, और वह जैसे ही चिल्लाई कि
दासीके रूपमें छिपा हुई स्त्राने सब कुछ
और तत्काल बाहर निकल कर आगे बढ़ते
कहा :—"अरे ! अरे ! महाराज !
कर रहे हैं ? मेरी स्वामिनीको आप
कर रहे हैं ?"

साधु उस साधारण सी दिखाई देने
की आवाज सुनकर उसकी ओर मुड़ा ?

लगा—"क्या यह तेरी स्वामिनी है? तब तू कौन है?" नन्दनने चन्द्रमाके प्रकाशमें उसे ध्यानसे देखा।

"मैं तो इनकी दासी हूँ। यदि आप मेरी स्वामिनीको इस प्रकार हैरान-परेशान करेंगे तो ये फिर कभी नहीं आवेंगी, समझे?" उस दासीने जरा कड़ाईके साथ कहा।

"अच्छा, तो तू दासी है? कोई पर्वाह नहीं! जरा मेरे पास आकर मेरे हृदय की आग तो बुझा!" नन्दन उस स्त्रीको छोड़ कर दासी जैसी प्रतीत होने वाली स्त्रीकी ओर बढ़ा।"

"हँ-हँ! बस, वहीं तक! आप इतने बड़े महा-पुरुष होकर मुझ जैसी तुच्छ दासी पर बुरी निगाह डाल रहे हैं? जरा शर्म कीजिये!"

"उससे क्या हुआ! पुरुष तो चाहे जैसी स्त्रीका उपभोग कर सकता है! भले ही वह किसी राजाकी रानी हो या रास्ते चलती कोई भिखारिन हो!"

"यदि आपको मुझ दासीसे ही काम था तो महारानीजीको क्यों व्यर्थमें भ्रष्ट किया? केवल दासीसे ही आपको सन्तोष हो तो कल यह दासी फिर आसकती है।"

"कल नहीं, बल्कि आज और अभी ही। समझी? मुझे तुझसे ही काम है, दूसरी किसीसे नहीं!"

"अच्छी बात है ; किन्तु अभी तो सकता। समय अधिक होगया है। राज-म महारानीजीकी राह देख रहे होंगे। २. ७ जाती हैं। चलिये महारानीजी !" जैसे म दासी बनी हुई स्त्री वहाँसे निकल भागना

"तू जा कहाँ रही है ? मैं ९ न. कह रहा हूँ ; फिर भी तू मेरा कहना न मेरी इच्छा पूर्ण किये बिना तू एक पग भी हट सकती ! समझी ?"

"दूर हो मुए ! मुझे सताकर तू सार सकेगा ! मैं दासी होनेसे यह अपमान हूँ, नहीं तो अभी तेरी फ़ज़ीयत कर . का । चलो, महारानीजी ! उठो झटपट !" ७. प्रभाव धीरे-धीरे प्रकट करना आरम्भ पड़ी हुई स्त्रीने उठकर अपने वस्त्राभूषण २८ चलना आरम्भ किया।

"अच्छा ! यह बात है ! मेरे .ो निकलना चाहती है ? ओ दासी ! क्या दासी है ? लुच्ची !"

"दासी नहीं तो कौन हूँ ? तभी . कड़वे बोल सुन रही हूँ !"

"मैंने तुझे पहचान लिया कि तुही तिष्यरक्षिता है! फिर भी इस दासीको अपने वस्त्राभूषण पहना कर तूने तिष्यरक्षिता बनाया है और तू स्वयं दासी बनगई है। समझी? अब तू मेरे पञ्जेसे निकल भागनेका प्रयत्न न करके और मेरी आज्ञाके अनुसार भीतर चल!" नन्दनने विषयका स्पष्टीकरण करके उनके सामने खड़े होते हुए उन्हें जानेसे रोक दिया।

तिष्यरक्षिताने समझ लिया कि अब साराभेद खुल गया है। फिर भी प्राणोंकी बाजी लगाकर भी सतीत्व-की रक्षा करना मुख्य कर्तव्य है। उसे प्रतीत हुआ कि इस पापसे सहज ही मुक्ति नहीं मिल सकेगी। किये हुए पापके प्रायश्चित्तके लिए समय आगया है! कल सवेरे ही यह सब वृत्तान्त महाराजको विदित हो जायगा और वर्षोंसे दबे हुए पुराने कर्मोंके पर्दे उठे बिना नहीं रहेंगे; किन्तु, जो हो सो सही! फिर भी एक पाप तो हो ही गया! अब सतीत्व नष्ट करके दूसरा पाप कदापि नहीं करूँगी!"

"क्यों? किस विचारमें पड़गईं, रानीजी! चलो; फिर हम इस मन्दिरमें चलें......। उसके बाद खुशीसे तुम अपने घर चली जाना!" विषयान्ध नन्दनने शान्त स्वरमें कहा।

"जा, मुए! तेरे लिए इस तिष्यर
सुविधा करदी ; फिर भी उसका यह
अच्छी तरह समझ ले कि तिष्यरक्षिताका
राज अशोकके लिए है!"

"अशोकके लिए है, तो ठीक है! मैं
हूँ कि तिष्यरक्षिता महाराजके लिए है या
यों कहते हुए नन्दन उसकी ओर झपटा।

उसे अपनी ओर झपटते देखकर
रानीने अपनी कमरमें छिपाई हुई कटार
और उसे हवामें घुमाती हुई वह गरजती
"खबरदार! नरपिशाच!"

उस तेज चमकिली कटारको
देखकर वह एकदम पीछे हटगया।
मारे काँपने लगा। फिर भी बोला, "क्या
मुझे डराती है?"

"रे नीच! अत्याचारी! क्षत्रा
स्वाद तूने अभीतक नहीं चखा है।
सतीत्वके सन्मुख आँख उठाने तककी भी
है? नरपिशाच!"

"मेरी! तिष्यरक्षिता, मेरी!! सम्हाल
सतीत्व!" यों कहता हुआ वह एकदम

उसने तिष्यरक्षिताका एक हाथ पकड़ लिया और दूसरेसे उसके हाथमें की छुरी-कटार छीननेका प्रयत्न किया। उधर तिष्यरक्षिताने भी अपना हाथ छुड़ानेके लिए जोर लगाया। दोनोंकी खींचतान बढ़गई। तिष्यरक्षिताने जब बलपूर्वक उसके मुँहपर घूँसा लगाया, तो नन्दनने भी धक्का देकर उसे नीचे गिरा दिया; और कटार छीन कर दूर फैंकदी। इसके बाद जैसे ही वह उस पर बलात्-कार करनेको बढ़ा कि इतने ही में उस दूसरी स्त्रीने खींचकर जोरसे उसकी छातीमें ऐसी लात मारी, कि वह छटककर दूर जा गिरा। वह प्रसङ्ग बड़ा ही भयं-कर था; अतएव वह तत्काल ही सावधान होकर उस दूसरी स्त्रीकी ओर झपटा और उसे गिराकर छातीपर चढ़ बैठा। इतने ही में तिष्यरक्षिताने फुर्तीसे उठकर कटारी हाथमें लेली और एकदम वह उस नर-पिशाच पर टूट पड़ी। उसने उसके पेड़ूमें इतने जोरसे लात मारी कि वह उसी क्षण नीचे गिर पड़ा। उसके क्रोधकी कोई सीमा नहीं रह गई थी। साक्षात् चण्डिकाके समान हाथमें कटार लिये हुए वह भयङ्कर स्त्री क्रोधके आवेशमें क्या कर रही है; इसका उसे भान तक नहीं था। "दुष्ट राक्षस! अब तेरी मृत्यु आगई है; यह निश्चय जानले।" यों कहते हुए उस रुद्र-रूपा तिष्यर-

क्षिताने नन्दनको अपनी ओर उठ कर
फुर्तीके साथ उसने वह तीक्ष्ण कटार उसकी
दी। तत्काल ही उसकी आँतें बाहर निकल
प्रहार इतना भारी था कि नन्दन थोड़ी ही
हुए कालके गालमें चला गया। थोड़ी
रक्षिताका क्रोध शान्त हुआ और इसके
स्त्रियाँ उस नन्दनके शवको वहीं जङ्गली प
भक्षणार्थ छोड़ कर उसी क्षण अपने घरकी
दीं। उधर अशोक भी अनेक प्रकारके सं
करता हुआ उनके पीछे-पीछे चल दिया।
किया :—"यह अच्छा ही हुआ कि मुझे
न आना पड़ा। तिष्यरक्षिताने अपनी इज्जत
ली! किन्तु यह सब प्रपञ्च खड़ा करनेके
क्या हो सकता है?

पच्चीसवाँ परिच्छेद

पश्चात्ताप

—:०:—

दूसरे दिन प्रभातमें तिष्यरक्षिता जल्दीसे उठी तो सही ; किन्तु आज वह अत्यन्त व्याकुल हो रही थी। प्रतिक्षण उसे अपनी उस गुप्त बातका भण्डा फोड़ होनेका भय हो रहा था, क्योंकि उस साधुके गुम हो जानेकी खबर मिलते ही तुरंत खोज की जायगी और जैसे ही उसकी लाश हाथ लगा कि उसकी हत्याका पता भी राज्यकी ओर से अवश्य लगाया जायगा ! और उस समय क्या परिणाम होगा ? "इन्हीं सब विचारोंसे उसका कलेजा धड़क रहा था। उसे दासीपर शंका हुई कि कहीं वह महाराजके सामने सारा भेद प्रकट न कर दे। क्योंकि केवल यह दासी ही मेरा सारा भेद जानती है; इसीलिए उसके द्वारा प्रकट होनेका भय रहता है। अतएव उस भेदको सदैवके लिए ही गुप्त रखनेके निमित्त दासीको भी क्यों न मौतके घाट उतार दिया जाय ? एक गया है तो दूसरीको भी क्यों न वहीं भेज दिया जाय ! इसीमें मेरी इज्जत रह सकती है। अतः यह काम भी अभी ही कर डालना चाहिए ; नहीं

तो आज ही भण्डा फूट जानेका । ग
विचार करके वह एकदम सावधान हो •
आँखें दूसरी हत्या करनेके लिए चमकने
से उसका शरीर काँपने लगा और ... ।
लेकर वहाँ पहुँची जहाँ दासी सो रही थी
कि रात्रिके परिश्रमसे थकी हुई दासी
हुई है। अभी सूर्योदय होनेमें कुछ देर थी
शान्ति थी। वह धीरेसे द्वार बन्द कर
और उसकी हत्या करनेके लिए कटार
समय इस बातका भान नहीं था कि वह
रही है! उसने तत्काल ही इतने जोरोंसे
हृदयमें भोंक दी कि वह न चिल्ला सकी
ही सकी। निद्रा ही निद्रामें बेचारी इस
हो गई। उसे उसी दशामें छोड़कर
पोंछती हुई जैसे ही वहाँसे चलने लगी कि
सीमा नहीं रही; क्योंकि द्वारपर खड़ा
काय पुरुष उसका वह पापकृत्य अपनी
था। उसे देखते ही वह एकदम सहम
जमगये। शरीर पसीनेसे तर हो गया।
अन्धेरा छागया! उसे पृथ्वी घूमती हुई
लगी। उस समय तो वह यही चाहती

पृथ्वी मार्ग दे तो मैं उस पुरुषसे बचनेके लिये उसीमें समाजाऊँ ; क्योंकि जिस भयसे बचनेके लिए उसने यह हत्याका पाप किया था ; वह भय उसे प्रत्यक्ष खड़ा दिखाई दिया। अतः अब क्या किया जाय ; इसे वह समझ न सकी।

दर्वाजेमें खड़ा हुआ वह महान पुरुष सम्राट् अशोक था। रातमें हुए जीर्ण मन्दिर वाले काण्डको उसने अपनी आँखोंसे प्रत्यक्ष देखा था। उसके बाद वह राज-भवनमें पहुँचा ; किन्तु जो भूल उस स्त्रीने की थी उसे उसने तत्काल ही सुधार लिया। उसने तत्काल ही एक विश्वस्त सेवकको जगाकर उस मन्दिरका ठीक पता बताते हुए उस नन्दनकी लाशकी अन्तिम व्यवस्था करने और वहाँ उसका कोई भी चिह्न शेष न रहने देनेके लिए भेज दिया। इसी प्रकार इस रहस्यको गुप्त रखनेके लिए भी समझा दिया था। इसके बाद वह जाकर सोया ; किन्तु उसके मस्तिष्कमें इतने अधिक विचार उत्पन्न होने लगे कि वह क्षणभर भी निद्राकी गोदमें विश्राम न ले सका। अभी दिन निकलनेमें कुछ देर थी। इतने-ही-में तिष्य-रक्षितासे रातवाली घटनाका खुलासा करनेके विचारसे वह अधीर बना हुआ राजा तत्काल वहाँ आ पहुँचा, किन्तु जब तिष्याको अपने शयन गृहमें नहीं देखा तो

राजाको आश्चर्य हुआ। वह किसीसे
हुए स्वयं गुप्तरूपसे उसका पता लगाने
रातवाली दासीको वह जानता था,
कमरेकी ओर चल दिया, कि जिससे
गुप्त वार्तालाप सुन सके; किन्तु यहाँ
अनसोची घटना ही देखनेमें आई! त
द्वार खोलकर वहीं खड़ा हुआ वह दृश्य
द्वारकी ओर तिष्याकी पीठ होनेसे
न जान सकी; किन्तु अपना कार्य
जब उसकी नजर महाराजपर पड़ी तो
एकदम मूर्छित होगई!

उसकी चींख सुनकर आसपास सभी
कर वहाँ आ पहुँचीं और द्वारपर
खड़े देखकर वे बाहर ही खड़ी रह गईं।
आज्ञासे दासियोंने उसे उठाकर शयन
लिटाया। वह कटार महाराजने ले
दासियोंको उसपर पूरी नजर रखनेके
चले गये। उन्होंने उस दासीके
व्यवस्था करनेके लिए कह दिया था।

जब तिष्यरक्षिताकी मूर्छा भङ्ग
अपनेको शयनागारमें पलङ्गपर पाया।

मनमें अनेक प्रकारके संकल्प-विकल्प होने लगे। उसके आस-पास दासियाँ सेवा-सुश्रुषामें लगी हुई थीं। उन्हें भी उसने देखा। उसे सब कुछ नया-नयासा जान पड़ा। अपनी कटारको वह इधर-उधर देखने लगी; किन्तु वह कहीं न दिखाई दी। दासियोंसे पूछनेपर पता लगा कि उसे तो महाराज साथ लेगये हैं! यह सुनते ही वह मन-ही-मन विकल भावसे सोचने लगी कि—"हाय! अब महाराजके पूछनेपर क्या उत्तर दूँगी? मैं करने तो सीधा गई थी; किन्तु हो गया एकदम उलटा ही।" दिन बहुत चढ़-गया था, फिर भी उसका मन उठनेको नहीं हो रहा था। उसने सोचा कि-सबसे सरल उपाय अब यही हो सकता है कि—"जिस रास्ते वह साधु गया और वह दासी गई, उसी मार्गका मैं भी क्यों न अनुकरण करूँ? क्योंकि सिवाय इसके अब दूसरा कोई मार्ग ही नहीं दिखाई दे रहा है। यदि मैं स्वयं न मर सकी तो महाराज मुझे निश्चित ही मार डालेंगे। अरेरेरे! मैंने आवेशमें आकर कैसा भयङ्कर अनर्थ कर डाला? घोर दुष्कर्म करनेवालोंकी अन्तमें जो दुर्गति होती है, वही दशा अब मेरी हो रही है। एक पापको छिपानेके लिए जीवको दूसरा पाप करना पड़ता है; और उसे छिपानेके लिए तीसरा। इस

प्रकार वह पाप-ही-पापमें डूबता हुआ ड
अनन्तकाल पर्यन्त पापोंका फल ै त
ऐसी दशामें मुझे भी अब अपने किये
प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिए! इस
मनमें निश्चय कर उसने सब दासियोंको
कहा कि—"मुझे अभी विश्राम क
है। मेरी तबियत अब ठीक है; इसलिए
आवश्यकता नहीं। तुम सब जाओ;
शान्ति पूर्वक सो सकूँ!"

"किन्तु आपको छोड़कर बाहर नहीं
आपको बाहर जाने देनेके लिए हा ज
है। फिर भी हम बाहर दरवाजेके पास
सुखसे सोइये।" यों कहकर दासियाँ
और उनमेंसे एक दासी महाराजको
दी। इधर तिष्याने भीतरसे द्वार बन्द कर

थोड़ी ही देरमें महाराज आ पहुँचे!
प्रबल है? एक ही दिनमें लगातार
घटित होगई? किन्तु फिर भी असली १ह
सकनेसे महाराजका चित्त अत्यन्त खिन्न
उसे अपने इस धर्मके प्रति अत्यन्त ।
जिस धर्मके लिए उसके मनमें अथाह

और उसके स्तम्भ रूप जिस नन्दनाचार्यको समझ रहा था ; उसीका इस प्रकार दुश्चरित्र देखकर उस धर्मके प्रति जरा भी श्रद्धा नहीं रह गई थी। उसके मनोविचार इस समय एकदम डॉवाडोल हो रहे थे। राजाने आते ही द्वार बन्द देखकर उसे धक्का दिया, किन्तु वह भीतरसे बन्द था। दासियोंने कई बार जोरोंसे पुकारा ; किन्तु भीतरसे कोई उत्तर नहीं मिला। अतएव अशोकने एकदम द्वारकी चूलें हटा कर किंवाड़ खोलते ही देखा कि तिष्याने आत्महत्याका प्रयत्न किया है। वह गलेमें फाँसी लगाकर अधर लटक रही थी। सम्राट्-द्वारा तत्काल ही उसका बन्धन काट देनेपर तिष्या नीचे गिर पड़ी ; किन्तु तत्कालिक फाँसी होनेसे वह पूर्ण सावधान थी। फिर भी वह नीचे पड़ी हुई आँखें फाड़कर महाराजकी ओर देख रही थी। अतः महाराजका संकेत पाकर दासियाँ तत्काल बाहर चली गईं।

"तिष्या ! बतला कि तूने उस दासीकी हत्या क्यों की ? वह साधु नन्दन भी रातसे गायब है ; उसके बारेमें तू कुछ जानती है ? और किस दुःखके कारण तू आत्महत्या कर रही थी ? मेरे मनकी इन सब शङ्काओंका समाधान करनेके बाद यदि तुझे मरना ही हो तो खुशीसे मर सकती है !"

उसने सोचा कि अब जो कुछ हुआ सच कह देनेमें ही भलाई है। परिणाम किन्तु यदि मैं झूट बोलूँगी तो मह १ समाधान नहीं होगा। वर्षों पूर्वकी . । उठने वाला था। इस प्रकार अपने जानेसे उसने कहा :—"महाराज! वह ७ कटारका भोग बन चुका है।" यों कह वाली सारी घटना महाराजको कह सुनाई

"ठीक है! किन्तु फिर .।ी क्यों की?" राजाने पूछा।

"आपके भयसे! कदाचित् वह सामने मेरे कार्योंका रहस्य प्रकट कर २.। उसके पहले ही मैंने उसे इस लोकसे ५ फिर भी अन्तमें पापका घड़ा तो फूट ही

"किन्तु उस साधुके साथ तुझे इस रचनेका क्या कारण था?"

"कारण यही था कि वह मेरे ही शरीक था।"

"प्रारम्भसे; अर्थात् कबसे? और वह शामिल था?"

"कुणालकी आँखें फुड़वानेमें!"

"तो क्या, कुणालकी आँखें तेरे षड़यन्त्रके कारण फोड़ी गईं ? वह किस प्रकार ?"

इसके उत्तरमें तिष्यरक्षिताने ठण्डे कलेजेसे बतलाया कि मैंने ही उस पत्रमें केवल एक बिन्दु बढ़ाकर "अधियउ"को 'अंधियउ" कर दिया था। उसके इन कठोर शब्दोंको सुनते ही राजा आग-बबूला हो कर कहने लगा कि :—"ओह ! संसारमें सौतेली माताको जो भयङ्कर विषैली नागिन कहा है, उसे इसने सत्य सिद्ध कर दिखाया है।" राजाने क्रोध पूर्वक उसे जोरोंकी एक लात लगाई !

"ओ अधम नारी ! तूने मुझे शस्त्र बनाकर मेरे प्राण प्रिय पुत्रकी आँखें फुड़वा दीं ! और तूने उसका राजमुकुट अपहरण करनेके लिए ऐसा भयङ्कर प्रपञ्च खड़ा किया ! किन्तु प्रकृतिके दरबारमें तो न्याय होता ही है। संसारमें पाप करनेवाले कभी सफल हो सके हैं ? तू खुद अपनी आँखोंसे ही देख ! तेरा वह मनोरथ आज किस प्रकार व्यर्थ सिद्ध हो रहा है। राज्यका स्वामी तो अब कुणालका पुत्र सम्प्रति ही बन चुका है।"

"मैंने अपने तईं भरसक प्रयत्न किया ; फल तो दैवाधीन ही था !"

"निश्चित ही, पापिनी ! तूने अपनी करनीमें कोई

कसर नहीं रखी और अब भी यदि
उसी प्रकार भरसक प्रयत्न करेगी !
तेरी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि न
कौनसा नया तूफान खड़ा कर दे !
मरनेके लिए तैयार हो जा ! अपने
प्रायश्चित्त करनेके लिए सावधान हो जा !'

यों कह कर जैसे ही सम्राट् उसपर
करने जा रहा था कि इतने ही में पीछे
शरदकुमारीने वहाँ आकर कहा—"ठह
शान्त होइये !"

कुणालकी वाणी सुनते ही राजा
मुड़कर देखते हुए कहने लगा :—"
रोको ! तेरी आँखें फुड़वानेवाली यह दु
ही थी। इसलिए आज मैं इसे अपने
कर्मका पूरा-पूरा प्रायश्चित्त-दण्ड देकर ही

"पिताजी ! क्षमा करें ! आपकी
तलवार स्त्री-रक्तका पान कभी नहीं
जैसे शूरवीर किस जीवनके लिए स्त्री
चाहते हैं ?" कुणालके यह शब्द सुनते
तलवार रुक गई।

अन्ध कुणालको देखकर



"ठहरिये, पिताजी ! शान्त होइये !" (पृष्ठ २८०)

बहुत ही बढ़ गया। उसने खड़ी होकर कुणालके चरणोंमें गिरते हुए कहा :—"बेटा ! मुझे क्षमा कर ! मैंने तेरा बहुत बड़ा अपराध किया है ! मेरे ही पापसे तुझे अपनी आँखें खोनी पड़ी हैं। इसलिए उस पापका प्रायश्चित्त मुझे करने दे। तू अपने पिताको मत रोक ! इन्हें अपना कर्तव्य पूरा करने दे ! मुझे अपने कर्मका फल भोगने दे ! किन्तु तू मेरी अन्तिम प्रार्थना पर ध्यान देकर उस भयङ्कर अपराधको क्षमा कर दे !"

तिष्यरक्षिताकी आजिज़ीसे पिघलकर कुणालने कहा :—"माताजी ! जो कुछ होना था वह तो हो ही गया ! अब यदि आप मर भी जायँ; तो भी मेरी गई हुई आँखें तो फिरसे आ नहीं सकतीं ! प्रभु आपको सद्बुद्धि दे और इस अन्तिम अवस्थामें पापोंका प्रायश्चित्त करते हुए आप धर्म-साधना करें, जिससे कि किये हुए दुष्कर्मोंका क्षय हो सके।

इस प्रकार कुणालके सन्तोष जनक शब्द सुनकर तिष्यरक्षिता नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए प्रभुसे क्षमा-याचना करने लगी।

"देख ! ओ मृत्युकी मेहमान ! देख !! तेरे प्रति इसका कितना सद्भाव है। इसकी सद्बुद्धिका फल ही इसे प्राप्त हुआ है। संसारमें भले-बुरे कर्मोंका फल यहाँका

यहीं मिल जाता है। सत्यका युग
गया है; जा! तेरे इन भयङ्कर
क्षमा करता हूँ; किन्तु अपने किये हुए
तो तुझे भोगना ही पड़ेगा।" यों कहते
तलवारको म्यानमें रखकर वहाँसे चला

एकदम प्रातःकालमें ही इस
पाते ही सुनन्दा, कुणाल और
तिष्यरक्षिताके महलमें आ-पहुँची थी।
पता लगा कि ऐन मौकेपर कुणालने किस
राजकी तलवारसे तिष्यरक्षिताकी प्राणरक्षा

महाराजके चले जानेपर सुनन्दा,
कुणाल आदि भी अपनी अपर-माताको
अपने महलमें चले गये। तिष्यरक्षिता
ओरसे क्षमा मिल जानेके कारण निश्चिन्त
इस प्रकार सभी बातें उसके अन्तरसे
कारण हृदयका बोझ हल्का हो गया था।
फिरसे वैसे दुष्कर्म अपने हाथों न होने
उसने प्रण किया; और भक्ति-द्वारा
करके कुणालके साथ अपने निजी पुत्रके
रखने लगी।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

बाल्य-तेज

—:o:—

समयके प्रवाहके साथ भविष्यके पटल भी वर्तमान कालमें आकृष्ट हो जाते हैं ; और इसी कारण पृथ्वीपर अनेक प्रकारकी घटनाएँ-घटित हो जाती हैं। इसी नियमानुसार मध्यवर्तीकाल सुख-शान्तिमें व्यतीत हो गया। जो बातें आज या कल नयी कहलाती थीं वे सब पुरानी होगईं। जसे-जैसे समय बीतने लगा, कुमार सम्प्रति भी बड़ा होने लगा। बाल्यावस्थासे ही वह सबका लाड़-प्यार पा रहा था और उसी समयसे उसमें तेजस्विता और पराक्रम आदिके चिह्न प्रकट होने लगे थे। जब महाराजा अपने मन्त्रियोंके साथ निजी-राजकाज सम्बन्धी बातें करते रहते ; तब भी बालक सम्प्रति वहाँ आकर उनकी गोदमें बैठ जाता और मन्त्रियोंको आज्ञा देता कि—"खड़े हो जाओ! जब महाराजा पधारें, तब तुम्हें खड़े होकर उनके प्रति सम्मान प्रकट करना चाहिए! मैं तुम्हारा महाराज हूँ।" उसके इस बाल-भाषामय विनोदको सुनकर सब हँस पड़ते थे।

कभी-कभी राज-काजकी बातें चलती जब सम्प्रति यह सुनता कि मेरे ॰ राज्य है ; तब अनायास ही उसे महान् और वह उदास हो जाता ! वह चिढ़ता हु होता। जब उससे पूछा जाता कि— इतने बड़े राज्यके उत्तराधिकारी होते हुए क्यों दिखाई देते हैं ?" तब सम्प्रति ने यही उत्तर देता कि—"दादाजी ! आप कर बैठ गये ; और मेरे लिए जीतनेको रहने दिया ? इसीलिये मुझे खेद होता है बाल-वचनोंको सुनकर महाराज और मन प्रसन्न होते।

इस प्रकार बाल्यावस्थामें अनेक उपद्रव करते हुए सम्प्रति अपना समय था। तिष्यरक्षिता भी अब धीर-गम्भीर वह वृद्धावस्थाको अपने पापोंका चुप-चाप सहन किये जा रही थी। महेन्द्र राजा बने या सम्प्रति ! दोनों ही थीं। जिस सम्प्रतिके विरुद्ध उसने एक खड़ा किया था, आज वह नाम था। अब तो सम्प्रति ही उसकी

रहा था। उसे देख कर ही वह शान्ति अनुभव करती थी।

चन्दाके प्रयत्नसे सुनन्दाने कुणालके अन्धे होनेका कारण खोज निकाला था; और उससे वह सदैव दुःखित ही रहती थी; किन्तु आज वृद्धावस्थामें उसे भी सुखका समय प्राप्त हुआ था। यद्यपि कुणाल तो राज्य प्राप्त न कर सका; किन्तु उसीके पुत्र सम्प्रतिको राज्य प्राप्त हुआ देखकर उसका हृदय बाँसों उछल रहा था। जिस आशा पर आधार रखकर उसने दिन बिताये थे; वही आज सफल हो रही थी। वह सम्प्रति की अत्यन्त सावधानीके साथ देख-रेख रखती थी। यद्यपि तिष्य-रक्षिताकी अवस्थामें बहुत कुछ सुधार हो चुका था; फिर भी सुनन्दाको उसपर विश्वास नहीं होता था; क्योंकि मनुष्यका विषैला स्वभाव भले ही शान्त हो जाय; किन्तु कोई निमित्त पाकर वह फिर सतेज हो सकता है। इसीलिए सम्प्रतिको वह क्षणभर भी अकेला नहीं छोड़ती थी! शरदकुमारी, चन्दा या सुनन्दा तीनोंमें से कोई एक तो अवश्य उसके साथ बनी ही रहती थी! वह जब अपने पितामह सम्राट् अशोकके पास होता तब भी चन्दा या और कोई उसके साथ रहता ही था। दादाजीको भी सौतेली माताके भयकी

चिन्ता विशेष ही रहती थी।
उसकी देख-रेखके लिए विशेष प्रबन्ध
स्थितिमें जल-प्रवाहकी तरह कितने ही
इस अवधिमें एक मुख्य घटना यह
अशोकने नन्दन जैसे धूर्त साधुका दुष्कृत्य
और इसी प्रकारकी और भी कई बातें
कारण उसकी इस धर्म परसे श्रद्धा उठ गई
राजा अशोक आचार्य सुहस्तिस्वामीके
और उनके उपदेशसे उसे जैनधर्मके प्रति
लगी। अपने जैनधर्मके स्मरणार्थ
देशमें एक शिलालेख निर्माण करवाया,
नाथ भगवानका नाम आता है।
तक्षशिलामें अशोकने एक शिलालेख
भी भगवान पार्श्वनाथका नामोल्लेख
इस प्रकार जैन तत्त्वके मनन चिन्तनमें
मांस रंग गये और वह अपना समय
बिताने लगा।

ब्रह्मचारिणी चन्दा भी अपने लिए
प्राप्तकर सुखपूर्वक दिन बिता रही थी।
हो जानेपर अब सम्प्रति नव युवावस्थाको
था। अतएव महाराजा अशोकने

राजाओंकी कन्याओंके साथ उसका विवाह कर दिया था।

इसके साथ ही वह सम्प्रति कुमारसे बदलकर सम्राट् सम्प्रति बन गया और उसने समस्त शासन रा अपने हाथमें लेलिये। इस प्रकार राज्यकी पूर्ण व्यवस्थ करके वह स्वयं अपनी सेना-सहित नव युवावस्था उत्साहमें दिग्विजयके लिए निकल पड़ा। सबसे पहले वह कौशल प्रदेशमें गया और वहाँके राजाकी भेट-पूजा स्वीकार कर काशी प्रदेशमें पहुँचा। वहाँसे वह विदेह देशकी मिथिला नगरीके राजाका नजराना-भेंट स्वीकृत कर मद्रदेशमें गया। इसके बाद वह मालवामें आया। वहाँसे गुजरात, सौराष्ट्र, सिंध आदिमें अपनी दुहाई-सत्ता घोषित करता हुआ अनेक छोटे-मोटे राजाओंके आमन्त्रण एवं भेट स्वीकार करनेके पश्चात् 'सप्तसिन्धव' पञ्जाब-पाञ्चाल देशकी ओर मुड़ा।

स्वर्ग-तुल्य काश्मीर देशका अनुभव करता हुआ वह ठेठ हिमालयकी तलहटी तक जा पहुँचा। उधरसे लौटते हुए अटक होकर अफगानिस्तानकी ओर बढ़ गया। वहाँसे ईरान, मिश्रदेश होता हुआ आगे बढ़ गया। बीचमें जो जो राजा मस्तक नवाकर भेंट अर्पण करते उनकी सेवा स्वीकार करता और ऐसा न होने पर

युद्धभूमिमें अपना चमत्कार बताकर उसे बना लेता था।

उस उदीयमान सूर्यकी किरणें खण्डमें व्याप्त होगई। इसके बाद अन्य देशोंको अधिकारमें किया। इस कोने-कोनेमें उसका नाम व्याप्त हो गया। पारस, शक, यवन, पठान, सिन्ध, ग्रीस विदेशी सत्ताओं पर विजय प्राप्त कर ली अपना 'कर-द' राज्य बना लिया।

सारांश, भारतसे बाहरके सभी अपनी सत्ताके आधीन बनाकर सम्प्रति आया। यहाँ आकर उसने उन देशोंकी किया, जिस ओर वह पहले नहीं बाल्हिक और गान्धार देशमें होकर (ये और सुलेमान पर्वतके बीचमें बसे हुए हैं और अपनी सत्ता स्थापित करता हुआ देशमें जा पहुँचा। गङ्गा-यमुनाकी प्रदेश ही दशार्ण कहलाता है। वहाँसे यमुनाके मध्यवर्ती ब्रह्मावर्त प्रदेशमें अपनी कर कुरुदेशमें पहुँचा जहाँ कि चर्मण्यवती मत्स्यदेश और शौरसेन राज्यका शासन

वहाँसे यमुना पार करके गंगा-यमुनाके म
अन्तर्वेदमें गया। इन समस्त देशोंकी ओरसे भेट-
स्वीकार करता हुआ उत्तरवायव्यके कुरु-पाञ्चाल
पहुँचा। इस प्रकार सर्वत्र वह नवीन सम्राट् अपनी दुह
फेरता हुआ मगधकी ओर वापस लौटा। वहाँसे
अङ्ग-वङ्ग और गौड़देशकी हवा खाता हुआ प्राग्ज्योति
और कामरु प्रदेशमें गया।

वहाँसे पुण्ड्रदेश, उत्कल और वत्स एवं चेदि देशमें अपनी सार्वभौम सत्ता प्रस्थापित कर सम्प्रति संसारके कोने-कोनेमें घूम आया।

भारतके लगभग सभी राजा सम्राट् अशोकके सामन्त थे। अतएव यहाँके तो सभी देशोंने उस नये सम्राट्की सत्ता स्वीकार करके उसकी सेवामें यथोचित भेट-पूजा अर्पण करनेके साथ-साथ कई एकने तो अपनी राज कुमारियाँ भी व्याह दी थीं; किन्तु भारतसे बाहरके देश महाराज अशोकके शासनमें नहीं थे। उन देशके राजाओंके साथ सम्राट् सम्प्रतिने बारम्बार युद्ध करके उनको भी अपनी तलवारके अधीन बना दिया था।

पूर्वकालीन अजातशत्रुकी तरह इसने भी तीनों खण्डकी भूमिपर आधिपत्य स्थापित कर लिया। कोणिक-अजातशत्रुने जिस प्रकार तीनों खण्डके

राजाओंको जीतकर अपने अधीन बना
उसी प्रकार सम्प्रतिने भी तीनों खण्डके
राजाओंको अपना सामन्त बना लिया था
समस्त पृथ्वीको अपने पराक्रम द्वारा
सम्राट् सम्प्रति अजातशत्रुके समान वैताढ्य
पहुँचा। अर्थात् अखिल भूमण्डलपर
महान् सम्प्रति जब वैताढ्यसे वापस लौटा
ऋद्धि-समृद्धिका पार नहीं था।
उसने प्राप्त कर ली थी; किन्तु वह
था। आधे भारतके सोलह हजार
हजार भी कहे हैं) राजाओंने उसकी अ
की। किसीने राज्य छिन जानेके
भक्ति या अन्य किसी कारणसे, उसकी
कर ली थी।

विश्वविजयी महान् सम्प्रतिकी युद्ध
हजार हाथी, एक करोड़ घोड़े, सात
सेवक, नौ करोड़ रथके रूपमें विशाल
हृदय दहला देती थी।

इनके अतिरिक्त सुवर्ण-रौप्य, हीरे,
पन्ना, नीलम आदि रत्नोंका तो पार ही
भला उनकी गणना तो की ही कैसे जा

इस प्रकार अपार सम्पत्ति एवं असंख्य सैन्
कारण सम्प्रति उस युगमें एक अद्वितीय वीरपुरुषके रूपमें प्रसिद्ध हो गया। जहाँ-जहाँ उसकी सेनाका पड़ाव पड़ता था वहीं एक विशाल नगरकासा दृश्य दिखाई देने लगता था। फिर भी सेना और उसके साधन इतने विशाल थे कि उसके लिये सम्प्रतिको अन्य प्रकारकी व्यवस्था करनेकी आवश्यकता हो जाती थी।

विश्वविजयी कहिये अथवा देश दिग्विजयी ; किन्तु इस महान् सम्प्रतिके पश्चात् आजतक किसी भी नरपतिने वैताढ्य पर्वत पर्यन्त तीनों खण्ड पृथ्वीपर विजय प्राप्तकर आठ हजार राजाओंसे अपनी आधीनता स्वीकार नहीं करवाई थी। इस पृथ्वीपर चिरकाल-पर्यन्त अन्तिम चक्रवर्तीके रूपमें केवल महान् सम्प्रति ही सत्ताधारी बना रहा।

सत्ताईसवाँ

विश्व-विजयीकी माताको

—:o:—

महान् सम्प्रति जब घूमता हुआ विजय प्राप्त करनेके बाद मालवाकी अपना परिवार अवन्तीमें होनेसे उज्ज सोलह हजार राजाओंकी समृद्धि-ि चरणोंमें साष्टांग प्रणाम किया। सं करनेवाले अपने महान् पराक्रमी पु माता होगी जिसे हर्षोन्माद न हो पुत्रके ऐसे महान् पराक्रमको दे विभोर हो गई; किन्तु इसीके साथ यह विचार भी उत्पन्न हुआ कि— तीनों खण्ड पृथ्वीपर विजय राजाओंको झुका दिया और प्राप्तकर वह कृतकृत्य भी हो गया; समृद्धि प्राप्त करनेवाले वासुदेव और ही अपने पापका फल भोगनेके लिए गति) में भ्रमण करते हैं। अन्तिम खण्डके राजाओंसे अपनी अधीनता

वैताढ्य पर्वतके दर्शन कर आया ; किन्तु उसे भी छठी नरक पृथ्वीमें पापके भारसे दबकर उतरना ही पड़ा ! ओह ! विजयीके लिए इस वैताढ्यका दर्शन ही ऐसा है कि उसे अवश्य नीचे उतरना पड़ता है।

ये ऋद्धिमें आसक्त हुए वासुदेव और प्रतिवासुदेव तो डूब ही गये, किन्तु चक्रवर्तीके रूपमें छह खण्डोंको हस्तगत करनेवाले भी सफल नहीं हो सके। अर्थात् जिन्होंने उस समृद्धिके प्रति त्यागभाव दिखाकर संयमकी साधना की, केवल वे ही बच सके हैं। ऐसी दशामें अनेक पञ्चेन्द्रिय प्राणियोंकी हिंसासे युक्त घोर युद्ध करके लाखोंका नाश करते हुए मेरे पुत्रने शत्रु राजाओंको अपने पराक्रम द्वारा आधीन बनाया, यह तो ठीक ही है, किन्तु मैं इसकी दुर्गति होने देना नहीं चाहती। अतः जिस प्रकार मेरा पुत्र यहाँ दिग्विजयी हुआ है, उसी प्रकार यह परलोकमें भी परम्परागत अनन्त सुखका भोक्ता बन सकनेके मार्गपर जा सके तो बड़ा अच्छा हो !" इस प्रकार विचार करती हुई माता पुत्रको अपने चरणोंमें पड़ा देखकर भी मौन धारण किये रही।

माताजी ! समस्त भूमण्डल पर विजय प्राप्तकर सोलह हजार राजाओंके साथ तुम्हारे चरणोंमें यह पुत्र

प्रणाम करता है; फिर भी आपको
नहीं होती ?"

"पुत्र! तूने अनेक शत्रु राजा
सामन्त बना लिया; यह संसारकी
अच्छा किया होगा; किन्तु लाखों
बदले प्राप्त किया हुआ यह राज्य
किसके लिए हितकर सिद्ध हुआ है
प्रसन्नता प्रकट कर सकूँ ?" माताने
प्रवृत्त करनेका प्रयत्न किया।

"माता! इतना विशाल समग्र पृ
हुए भी मेरे लिये यह क्यों हितकर

"तूने लाखों जीवोंका संहारकर
पापकी भारी गठरी बाँधी है; किन्तु
पापोंकी ही गठरी बाँधनेवाले धर्म-र
तर इस प्रकार डूब चुके हैं कि जो
नहीं उठ सके।"

"तो क्या संसारपर विजय प्राप्त
राजा नरकमें डूब जाते होंगे! क्या
पृथ्वीपर विजय प्राप्त नहीं करना
तलवारके अधीन रहती है"

"अवश्य! वीर पुरु

करे और अपनी तलवार बजाकर शत्रुको भयभीत भी करे। अतः हे पुत्र ! तूने तीनों खण्ड पृथ्वीपर विजय प्राप्त की, इससे मैं कुछ अप्रसन्न नहीं हूँ। तेरे पराक्रमसे तो मुझे हर्ष ही होता है; किन्तु दुःख इतना ही होता है कि तेरे समान पराक्रम करनेवाले पृथ्वीपर विजय प्राप्त करके भी इस प्रकार अन्धकारमें विलीन हो गये हैं; जो कि आज तक फिर प्रकाशमें आनेके लिए शक्तिमान् नहीं हो सके हैं।"

"ऐसा कौन पराक्रमी गया है, जरा उसका नाम तो बतलाना, माता?"

"देखो, संसारके प्रसिद्ध पुरुष राम-लक्ष्मण और रावण हुए; किन्तु इनमें लक्ष्मणने, नारायणने और रावणने तीनों खण्डपर विजय प्राप्तकर चिरकाल पर्यन्त राज्य किया; किन्तु वे भी जीवहिंसा और राज्यशक्तिके प्रतापसे चौथे नरकमें गये। परशुरामने सातबार क्षत्रिय हीन पृथ्वी कर दी; किन्तु उन्हें भी नरकके अन्धकारमें डूब जाना पड़ा। उनके पश्चात् उन्हें-परशुरामको मारने-वाला आठवाँ सभूम चक्रवर्ती अनन्तानुबन्धीके लोभ-कषायसे सातवें नरकमें गया।

नेमिनाथ प्रभुके समयमें हुए उन्हींके ज्येष्ठ बन्धु श्रीकृष्ण इस भारतवर्षके अन्तिम वासुदेव तीनों खण्डों

स्वामी जरासन्धको मारकर भारतके अधिपति
किन्तु उस युद्धके प्रतापसे जरासंध चौथे नरकमें
और कृष्ण तीसरेमें। उन्हीं नेमिनाथ प्रभुके
ब्रह्मदत्त नामका बारहवाँ चक्री हुआ। उसने
पृथ्वीपर विजय प्राप्तकर 'चक्री' के रूपमें राज्य
किन्तु अन्तमें सातसौ वर्षोंके पश्चात् वह भी
नरकमें गया।

अपने ही वंशमें अन्तिम सम्राट् मगधके
प्रतिष्ठित मगधपति बिम्बिसारको इस दुष्ट
पापसे पहले नरकमें जाना पड़ा है। उनका
कोणिक-अजातशत्रु तीनों खण्ड जीतकर वैताढ्य
तक पहुँच गया था, किन्तु उसे भी छठे नरकमें
पड़ा। इसलिए बेटा! अपने पराक्रमका उपयोग
प्रकार जीवहिंसामें किया जानेसे उस राज्यका
करनेके पश्चात् अन्तमें उस पापका दण्ड भी भोगना
पड़ता है। तू भी आज तीनों खण्डपर विजय
कर अपने घर लौटा है; फिर भी तुही बतला कि
विचारके आनेपर मैं कैसे प्रसन्न हो सकती

"माताके इन एक-एक वचनको सम्प्रतिने ध्यान
सुननेके बाद पूछा, तो माता! मैं किस प्रकार
प्रसन्न कर सकता हूँ?"

"धर्म कार्य करके! अर्थात् यदि तू नये-नये जिन मन्दिर बनवाकर पुण्य उपार्जन करे, तो अवश्य मुझे प्रसन्नता हो सकती है! इसके सिवाय मेरा मन सन्तुष्ट नहीं हो सकता।"

"जैन मन्दिरोंको बन्धवालेसे क्या लाभ है, माता?"

"शास्त्रोंमें उसका अनन्त लाभ बतलाया है। फिर भी दशपूर्वधर श्री आर्य सुहस्तिस्वामीके मुखसे मैंने एकबार सुना है कि :—

"काष्ठादीनां जिनावासे, यावन्तः परमाणवः।
तावन्ति वर्ष लक्षाणि, तत्कर्ता स्वर्गभाग् भवेत्॥"

अर्थात् :-जिन मन्दिरमें लगे हुए काष्ठ-पाषाणादिमें जितने परमाणु होते हैं, उतने लाख वर्षोंतक, उस जिन मन्दिरका बनवानेवाला स्वर्गलोकमें देवताओंके सुख भोगता है।"

"माताजी! परमाणुका आशय क्या है?"

"हम सूर्यका प्रकाश जब किसी जाली या छिद्रमेंसे आता देखते हैं, उस तेज या प्रकाशमें जो सूक्ष्म रजःकण दिखाई देते हैं, उनसे भी सूक्ष्ममें-सूक्ष्म तीसवें भागको लौकिक शास्त्रमें परमाणु कहते हैं। इसी प्रकार नये मन्दिर बनवानेकी अपेक्षा पुरानेके जीर्णोद्धारका फल और भी अधिक कहा गया है।"

सेना, शस्त्र और स्वर्ण प्राप्त करता हुआ वह जड़ चैतन्य रूप अटूट सम्पत्तिका स्वामी बन गया।

वृद्धावस्थामें पहुँचे हुए अशोकको इस सूर्यकी किरणोंका प्रकाश समग्र जगत्में फैलता अत्यन्त प्रसन्नता होती थी। उसके मनमें परम हो रहा था कि—"अहा! मेरे पितामह चन्द्रगुप्त केवल भारतके ही सम्राट् थे; किन्तु मेरा पौत्र सम्पूर्ण जगत्का सम्राट् बन गया है। संसारमें कोई देश नहीं है, जहाँ पर सम्प्रतिकी दुहाई फिरती हो। अर्ध भारतके तीनों खण्डमें ऐसा कोई आर्य या अनार्य राजा नहीं था, जो सम्प्रतिको ' भेटमें न देता हो!"

पौत्र जब दिग्विजय कर रहा था; तब विजयके प्रतिदिन ही नये-नये समाचार अशोकको सु देते थे। तीनों खण्डमें सम्राट् सम्प्रतिके दूत तहाँ फैले हुए थे। प्रत्येक राज्यमें सम्प्रतिके घूमते रहते थे। सोलह हजार राजाओंने अपनी भक्तिके परिचय-स्वरूप अपने राजकुमार सेवामें कर दिये थे। वर्ष भरमें एकबार तो उन्हें स्वयं सम्राट्की सेवामें उपस्थित होना पड़ता था। इस प्र पितामहने तो सम्प्रति कुमारको अपनी सेनाके

उज्जयिनीका ही अधिपति बनाकर भेजा था ; कि
उस पराक्रमके उदीयमान सूर्यने तो सम्पूर्ण-पृथ्वीकी स
हस्तगत कर सोलह हजार राजाओंका स्वामित्व प्राप्त
लिया था। इस प्रकार वह वासुदेव तो नहीं ; कि
वासुदेवके समान ही संसारमें-प्रसिद्ध होगया।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

आर्य सुहस्ति स्वामी

—:०:—

वीर-सम्वत्‌की तीसरी शताब्दिके मध्यकालमें चौद पूर्वधर श्री स्थूलिभद्र स्वामीके शिष्य आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ति थे। ये दोनों युग-प्रधान उस सम जैन शासनके नायक थे। त्याग और वैराग्यकी उच्च भावनामें आर्य महागिरिकी तो पराकाष्टा ही थी। इससे जिनकल्पका उस समय यद्यपि विच्छेद हो गया था ; तो भी जिनकल्पीकी तुलना करने विषयक उनका मनोरथ हुआ। अतएव उन्होंने समस्त गच्छका भार आर्य सुहस्तिस्वामीको सौंपकर स्वयं गच्छमें रहते हुए

जिनकल्पीकी तुलना करते हुए एकाकी होकर तपश्चर्या करते पृथ्वीपर विहार करने लगे।

आर्य सुहस्तिस्वामी अपने शिष्य-समुदायके विहार करते पाटलीपुत्र आये। राजा उनकी लिए पहुँचा। वहाँ वसुभूति नामके श्रेष्ठिको देकर जैन बनाया। इसके पश्चात् देश-विहार करते हुए और भव्य जीवोंको अपने मृतका पान कराते हुए आर्य सुहस्तिस्वामी स्वामीको वन्दन करनेके लिए अवन्ती देशकी विहार कर गये।

एकदिन अवन्तीमें जीवन्त स्वामीका बहुत महोत्सव हुआ। उस समय रथयात्राका बड़ा जुलूस निकला। संसार-रूपी समुद्रको पार करनेके जहाजके समान वह जीवन्त स्वामीका रथ नगरमें करनेके लिए निकाला गया। हजारों जैन धनपति समारोहमें सम्मिलित रहनेके कारण अवन्तीकी उस समय प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा था। अनेक वाद्य-यन्त्र बज रहे थे। घुड़सवार सेवकोंका कोई ही नहीं था। इसप्रकार अगणित जैन उसमें साथ हुए अपनी समृद्धि बतला रहे थे। रथके पीछे भी साधु समुदायके साथ आर्य महागिरि और आर्य

स्वामी भी सबके आगे चल रहे थे। उनके पीछे श्रावक समुदाय एवं साध्वी तथा श्राविकाओंका समुदाय भी व्यवस्थित रूपसे चल रहा था। इस प्रकार वह जुलूस नगरमें भ्रमण कर रहा था।

वह जुलूस जब राज-प्रासादके निकट पहुँचा, तो वहाँके अनेक दास-दासी आदि कोई झरोखेमेंसे तो कोई छज्जे या खिड़कीमेंसे और कोई चाँदनी या जहाँसे जिसे अनुकूलता हुई वहींसे उस जुलूसको देखने लगा। उस समारोहकी धूमधामसे आकृष्ट हो, महान् सम्प्रति भी गवाक्षमें बैठे हुए उसका दृश्य देखने लगे। उनकी दृष्टि चारों ओर घूमती हुई अनेक मनुष्योंको देख रही थी। उन्होंने जीवन्तस्वामीके रथको भी देखा और वाद्य-यन्त्रोंके मधुर-स्वर भी सुने। धीरे-धीरे उनकी दृष्टि आर्य सुहस्तिस्वामी पर पड़ी। उन सूरीश्वरको देखकर राजाके मनमें विचार हुआ कि, इन शान्तात्मा, पवित्र मुनिको पहले कहीं देखा है! किन्तु कहाँ देखा था, यह याद नहीं आ रहा है। इन्हें देखकर मेरे मनमें स्नेहभाव जागृत हो रहा है। विवेकी पुरुष कहते हैं कि जिसे देखनेसे प्रसन्नता होती हो, उसे पूर्वजन्मका बन्धु समझना चाहिए।' इस प्रकार विचार करते हुए महान् सम्प्रति स्मरण करने लगे कि इन्हें कहाँ देखा

है ? फिर भी याद नहीं आया ; किन्तु इस
उनके मनमें निश्चय हो ही गया कि इन्हें
अवश्य है। इस प्रकार बारम्बार स्मरण
सम्प्रति एकदम अचेतसे हो गये। उन्हें मूर्छा
राजमहलमें कोलाहल मचगया। मन्त्री लोग
वहाँ आ पहुँचे, और उनको मूर्छासे जागृत
अनेक प्रकारके उपाय करने लगे। वायु प्रक्षेप
झलने) आदिके रूपमें शीतोपचार करने पर
सचेत हुए ; तब जाति-स्मरण ज्ञान होनेसे
कि :—"अहो ! पूर्वजन्ममें मैं कौन था ?
काय करनेसे राज्यका स्वामी बन सका हूं ?"

तत्काल ही वे गवांक्षसे नीचे आये और
चलकर उस समारोहके समीप जा पहुँचे। सब
उन्हें आते देख कर मार्ग दिया। उन्होंने
स्वामीकी तीनबार प्रदक्षिणा करके विनम्र
किया और दोनों हाथ जोड़कर हर्ष
किया :—"भगवन ! आप मुझे पहचानते हैं ?"

"आप राजा हैं। यह सभी लोग
आप सम्राट् अशोकके पौत्र और वीर कुणालके

"मैं राजाके रूपमें आपसे नहीं पूछ रहा हूँ
अन्य किसीप्रकारसे भी मुझे पहचानते हैं ?"

महान् सम्प्रतिके इस वचनको सुनते ही सुहस्ति-स्वामीने ज्ञानका उपयोग किया और उसके द्वारा सम्प्रतिका पूर्व वृत्तान्त जाननेके बाद कहा :—"राजन्! मैंने तुम्हें अच्छी तरह पहचान लिया है! पहले जब हम विहार करते हुए कौशाम्बी नगरीमें आये थे, उस समय भयङ्कर दुस्काल था और उसी समय एक गरीब भिक्षुकने हमारे पास आकर लड्डू (मोदक) की आशासे दीक्षा ली थी। दीक्षा लेनेके पश्चात् एक दिनका चारित्र पालन कर वह भिखारी उस जन्ममें आयुष्य पूर्ण होनेसे देह त्याग कर जगतसे विदा हो गया। वही आत्मा तुम्हारे रूपमें आज महान् सम्प्रति बनकर यहाँ अवतीर्ण हुई है।" आर्य सुहस्तिस्वामीने संक्षेपमें उस गरीब भिखारीका चरित्र वहाँ सबके सन्मुख कह सुनाया!

राजाने उनसे फिर पूछा :—"हे भगवन्! जैन-धर्म, अरिहन्त भगवन्तका धर्म प्राप्त होनेका फल क्या है?"

"उसका सर्वोत्तम फल तो मोक्ष प्राप्ति है; किन्तु सामान्य फल स्वर्ग, राज्य-प्राप्ति आदि अनेक प्रकारका जानना चाहिए।"

"हे पूज्य! अव्यक्त सामायिक चारित्रका फल भी बतलाइये!" राजाने पुनः पूछा।

अत्यन्त धनाढ्य ; किन्तु विषयोंका लालची
जो नयी सुन्दरी कन्याएँ उसके देखनेमें आतीं,
पाँच सौ 'सोनय्या' देकर ग्रहण कर लेता था।
करते-करते उसके पाँच सौ स्त्रियाँ होगई। उन
साथ वह एक स्तम्भवाले महलमें क्रीड़ा क
उसका नागिल नामका एक श्रावक मित्र था।

एकदिन पञ्चशैल द्वीपकी अधिष्ठायिका
प्रहासा नामकी व्यन्तरियाँ शक्रेन्द्रकी आज्ञासे
स्वामीके साथ नन्दीश्वर द्वीपको जा रही थीं।
उनका स्वामी विद्युन्माली देव आयुष्य पूर्ण
च्यवित हो गया। तब उन व्यन्तरियोंने अवधि
देखा कि उनका स्वामी बननेके लिए कौन
सकता है ? और उन्हें कुमारनन्दीको ही अपने
रूपमें स्वीकार करनेका आभास हुआ। अतएव
देवियाँ कुमारनन्दीके समक्ष एकान्तमें प्रकट हुईं
देखकर काम विह्वल बना हुआ कुमारनन्दी
मिलनेके लिए आतुर होकर पूछने लगा :—"तु
हो ? और कहाँसे आ रही हो ?"

इसपर देवियोंने कहा "आपहीके लिए आई
"अच्छी बात है, तो मैं भी तैयार हूँ !"
हुए वह उनसे मिलनेके लिए आगे बढ़ा।"

"जरा ठहरिये ! उतावले मत होईए। इसके लिए आपको पञ्चशैलद्वीप आना पड़ेगा।" यों कहती हुई देवियाँ अदृश्य हो गई।

अन्ततः व्यन्तरियोंके भोगकी लालसावाला कुमार नन्दी महा मुसीबतके बाद पञ्चशैल द्वीप पहुँचा। वहाँ वे देवियाँ उसे दृष्टिगोचर हुई। अतः वह उनसे भोगकी प्रार्थना करने लगा। इसपर देवियोंने कहा कि :—

"इस शरीरसे तुम हमें स्पर्श नहीं कर सकते। यदि तुम पञ्चशैल द्वीपके स्वामी बननेके लिए प्रतिज्ञा कर अग्नि प्रवेश करो, तो यहाँ उत्पन्न होने पर हमारे स्वामी बन सकोगे।"

यह उत्तर सुनकर स्वर्णकार विचार में पड़ गया। वह सोचने लगा :—"अरे मैं तो उभय भ्रष्ट हो गया। अपनी पाँच सौ स्त्रियोंको छोड़कर इनके पास दौड़ा आया; सो वे भी हाथसे गई और ये भी मेरी नहीं होसकीं।" इस प्रकार चिन्तामें पड़े हुए कुमारनन्दीको उन देवियोंने उसके नगरके बाहर जाकर छोड़ दिया।

घर लौटनेपर उन देवाङ्गनाओंका दिव्य शरीर देख लेनेके कारण उसे अपनी स्त्रियोंके प्रति विशेष अनुरक्ति नहीं रह गई। वह दिनरात उन देवियोंको ही याद करता रहा और अन्तमें उसने अग्नि प्रवेश करनेका निश्चय

किया। उसके मित्र नागिल श्रावकने उसे समझाया ; किन्तु फिर भी वह अग्नि प्रवेशकर द्वीपका स्वामी बन ही गया। तत्पश्चात् वह .. साथ इच्छानुसार भोग-विलास करता रहा।

एकदिन देवता लोग नन्दीश्वर द्वीपकी लिए जा रहे थे। अतएव उनकी आज्ञासे अहासा गायन करनेके लिये आगे चलने लगीं उन्होंने अपने पतिसे कहा कि :—"स्वामी! बजाईये और हम दोनों गाती हैं।"

किन्तु अहङ्कारके मारे विद्युन्माली बजानेसे इनकार कर दिया। अतएव उसके गलेमें बँध गया और अत्यन्त दुःखित बजाता हुआ वह आगे चलने लगा।

उधर वह नागिल श्रावक भी आयुष्यपूर्ण मृत्यु पाकर बारहवें देवलोकमें महर्द्धिक देव भी इस यात्रामें साथ ही था। उसने अवधि द्वारा विद्युन्मालीको अपना मित्र जान उसके पास आकर कहने लगा—"भद्र! पहचानता है?

"हे देव! तुम कौन हो? मैं जानता।"

तब उसने नागिलका रूप दिखाकर सार सुनाते हुए कहा :—"अरे भोले मानव ! तूने जन्म पाकर उसे व्यर्थ गवाँ दिया। देख, श्रावक भलीभाँति आराधना करके मैं बारहवें देवलोकमें म देव बन गया हूँ !"

अपने मित्रको पहचान कर कुमारनन्दी, पश्च करते हुए कहने लगा—"हे मित्र ! विषयान्ध बन तो सब कुछ हार गया। बतला, अब मैं क्या करूँ

"तेरे लिए अभी एक मार्ग और है। वह कि तू वर्तमानमें गृहस्थ रूपमें चित्रगृहके विद्यमान म वीर स्वामीकी प्रतिमाको भरवा, उनकी भक्तिसे बोधिबीज उत्पन्न होगा।"

यात्राका कार्य समाप्त होनेपर विद्युन्मालीने महलमें कायोत्सर्ग-मुद्रामें खड़े हुए वीर भगवान देखा। इसके बाद वह हिमवन्त पर्वतपरसे गोशीर्ष चन्द काटकर लाया और उसने जैसी प्रभुकी मूर्ति देखी वैसी ही अलङ्कार सहित बनाकर बहु मूल्य चन्दन एक पेटी तैयार की और कपिलकेवलीसे प्रतिष्ठा करवा कर वह प्रतिमा उस सन्दूकमें रख दी।

उस समय समुद्रमें एक व्यापारीकी नौका डगमगा रही थी। उसका विघ्न निवारण कर विद्युन्मालीने वह

पेटी उस व्यापारीको देते हुए सिन्धु सौवीर वीतभयपत्तन नगरमें जानेकी आज्ञा दी।

नौका सुरक्षित रूपसे वीतभयपत्तन जा . वहाँ तीन सौ तिरसठ नगरोंका अधिपति और मुकुटधारी राजाओंसे सेवित उदायी नामका राजा करता था। वह राजा अचल शैवधर्मी होनेके . । तापसोंका भी भक्त था। वहाँ आकर पेटा नगरके चौकमें रख दी और जाहिर कि :—"इस सन्दुकमेंसे देवाधि-देवकी ग्रहण करो! ग्रहण करो!!"

राजा, मन्त्री, नागरिक जन आदि अनेक वहाँ एकत्र होगये। प्रत्येक धर्मके पुरुष, सन्यासी लोग भी वहाँ आये और सभी अ इष्ट देवकी स्तुति करने लगे; किन्तु पेटी नहीं अन्तमें राजाकी पटरानी और चेडा महाराजकी प्रभावतीने देवाधि-देवकी स्तुति करके उस खोला और प्रतिमाको अपने चैत्यगृहमें स्थापित वह प्रतिदिन उसकी पूजा करने लगी।

इसके बाद रानी प्रभावती एकदिन राजाकी पालन कर चारित्र लेकर, देवलोकमें चली गई। बाद प्रभुकी पूजा देवदत्ता नामकी कुब्जा निरन्तर

लगी। प्रभावतीका जीव देवता बना और राजाको प्रतिबोध दे करके जैनधर्ममें स्थिर किया।

उसी अवधिमें गान्धार नामका श्रावक धिष्ठित गुटिकाके प्रभावसे आकाशमें उड़कर स्वामीके दर्शन करने आया। वहाँ उसने भग पूजाकर अपना समय सुखपूर्वक व्यतीत करते हुए काल व्यतीत कर दिया।

इसके पश्चात् अपना मृत्युकाल निकट आया कर अपनी सेवाकरनेवाली उस कुब्जाको अपने प गुटिकाएँ दे दीं और स्वयं दीक्षा लेकर आत्मसा करने लगा।

गान्धार श्रावकके मुखसे गुटिकाका प्रभाव लेनेके कारण सुन्दर रूपकी इच्छा करनेवाली देवदत्ता एक गुटिका अपने मुँहमें रखली और उसी क्षण व सौन्दर्य-सम्पन्न बन गई! राजाने उसे इस प्रकार सु रूपमें देखकर उसका नाम 'सुवर्ण गुटिका' रख दिया।

अब उसे चिन्ता हुई कि मैं सौन्दर्यवती तो ब गई; किन्तु अब मेरे योग्य पतिकी आवश्यकता है! क्योंकि विना पतिके तो स्त्रीका यौवन व्यर्थ है। तब मेरा वह भोक्ता कौन हो सकता है? यह उदायन राजा तो मेरे पिताके समान है। अतएव 'मेरे लिए तो

अवन्तिपति चण्डप्रद्योत ही योग्य पति हो सकता
इस प्रकार विचार कर उसने फिर गुटिका
रखी और गुटिकाकी अधिष्ठायिका देवीने
सन्मुख उसके रूपका वर्णन किया। फलतः
प्रद्योतने सुवर्ण गुटिकाको बुलानेके लिए दूत
दासीने उसे यही उत्तर दिया कि :—"राजाको
भेजिये, तभी दोनोंका इच्छित कार्य होगा।"

दूतने आकर अवन्तिपतिको यह समाचार
अतएव रात्रिको ही अवन्तिपति अनिलवेग
सवार होकर वहाँ पहुँचा। नगरके बाहर
दोनोंका मिलाप हुआ। राजाने जब उसे अपने
चलनेके लिए कहा तो सुवर्ण गुटिकाने उत्तर
"यहाँकी जिनमूर्तिके बिना मैं जीवित नहीं रह
इसलिए उसीके समान आप एक मूर्ति बनवा कर
लाइये; तो उसे यहाँ स्थापित कर इस मूर्तिके
आपके यहाँ चल सकती हूँ।"

इसके बाद चण्डप्रद्योतने अवन्तीमें आकर
मूर्ति तैयार करवाई और उसकी कपिलकेवलीसे
करवा कर उसे साथमें लिये वह वीतभयपत्तन
जा पहुँचा। उसने दासीको वह मूर्ति अर्पण की
दासीने वह मूर्ति चैत्यमें स्थापितकर वहाँकी मूल

साथ ले, चण्डप्रद्योत सहित अवन्तिके लिए
किया और वहाँ आकर वह चण्डप्रद्योतकी
करने लगी।

प्रातःकाल उदायन राजा देवालयमें आया
प्रतिमाको नमन करके उसने देखा कि एक
हुई पुष्पमालावाली मूर्ति खड़ी है। उसे विश्वा
गया कि "यह मूल-मूर्ति नहीं है। साथ ही
निरन्तर पुतलीके समान खड़ी रहनेवाली दासी सु
गुटिका भी नहीं है। इसी प्रकार मेरे हाथि
मद भी गलित हो गये हैं। अतः निश्चित ही
प्रद्योत यहाँ आकर मूर्ति और दासी, दोनोंको उ
ले गया है।"

उदायन क्रोधके कारण अत्यधिक आकुल-व्य
हो गया। उसने दशमुकुटधारी राजाओं सहित सेन
तैयार की और अवन्ती पर चढ़ाई कर दी। चण्ड
प्रद्योत भी यह समाचार सुनकर अपनी सेना-स
उनका सामना करनेके लिए आडटा। दोनोंके बी
भयङ्कर युद्ध हुआ। चण्डप्रद्योत हाथी पर बैठा
हुआ लड़ रहा था, किन्तु उदायन रथमें था। दोनोंने
एक दूसरेकी रक्त-पिपासा शान्त करनेके लिए अपनी
बहादुरी दिखानेमें कोई कसर नहीं रखी। बाणधारी

उदायनने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे हाथीके चारों ।
दिये। अतएव हाथी अनिलवेग-उस पीड़ाको
सका और पृथ्वी पर गिर पड़ा। चण्डप्रद्योत
उठकर सावधान हो भी न पाया था कि तब
उदायनने रथमेंसे कूदकर उसके बालोंको पकड़
और बाहुयुद्ध करके उसे बाँध लिया। यह देख
सेनामें हाहाकार मच गया।

उदायनने प्रद्योतके ललाट पर तपायी हुई
शलाकासे 'दासीपति'के अक्षर अङ्कित कराये
पींजरेमें बन्द कर दिया।

उदायन राजा अपनी समस्त सेना-सहित
दरबारमें पहुँचा और वहाँसे महलमें जाकर
दर्शन किये। उसने स्तुति करके प्रतिमाको
ले जानेका बहुत-कुछ परिश्रम किया; किन्तु
वहाँसे चलायमान नहीं हुई। राजाने बारम्बार
करना आरम्भ किया; इसपर उसके
होकर कहा कि:—"हे राजा! तेरा नगर
समयमें धूलकी वर्षासे मिट्टीमें मिल जानेवाला है
लिए प्रतिमाजी वहाँ आना नहीं चाहतीं।
कारण शोक न कर!" इसके बाद उदायन
चण्डप्रद्योतको लेकर अपने नगरकी ओर चल

मार्गमें चातुर्मास आरम्भ हो जानेसे वहीं छावनी डाल कर उसने दशपुर-मन्दसोर नगर बसाया।

पर्युषणपर्व आनेपर जब अवन्तीपतिने उपवास किया, तो उदायनने उसे भी अपना स्वधर्मी समझकर क्षमा याचना की; और उसका सम्पूर्ण राज्य उसे वापस दे दिया। तत्पश्चात् वह यथा समय वीतभयपत्तन नगरमें जा पहुँचा।

समय आनेपर उदायन राजाने श्रीमहावीर स्वामीसे दीक्षा ली और वह अन्तिम राजर्षि हुआ; किन्तु कर्मोदयके कारण उस राजर्षिको व्याधि उत्पन्न हुई और किसी वैद्यने उन्हें दहीका आहार लेनेको कहा। अतएव वे स्वयं निस्पृह होते हुए भी वीतभयपत्तन नगरमें आये। वहाँ उनका भागिनेय-भानजा केशी राज्य करता था। उसे मन्त्रियोंने बहका दिया था, अतएव उसने राजर्षिको विष-मिश्रित अन्न दिलाया। जिसके कारण क्रोधित होकर देवताओंने उसके नगरको धूलकी वर्षासे भूमिमें गड़ा दिया। उदायी मुनिने अपने शरीरमें विष व्याप्त हुआ जानकर अनशन ग्रहण किया और तीस दिनका अनशन पालकर कैवल्यपद-मोक्ष-प्राप्त किया।

उन्हीं वीर प्रभुकी प्रतिमा तबसे अवन्तीमें भाविक-जनों द्वारा पूजी जाने लगी। आर्य सुहस्तिस्वामी उस

प्रभाविक प्रतिमाका वन्दन करने पधारे थे। गुरुमुखसे राजा सम्प्रति भी महावीर स्वामीकी सुनकर उस प्रतिमाकी पूजा-भक्ति करने लगा और समय तक पूजन करता रहा।

कालान्तरमें वह प्रतिमा अदृश्य होगई। वीर निर्वाणके पश्चात् १६६९ वर्ष बीत जानेपर कुम राजाने इन महावीर स्वामीकी प्रतिमाजीको उस खुदवाकर बाहर निकलवाई और स्वयं उसकी अपनी आत्माको कृतार्थ मानने लगा।

क्योंकि वीतभयनगर केशीराजाके पापसे होगया था। अर्थात् केशी राजा जोकि राजाका भानजा था, उसे अपना पुत्र अभिची रहते हुए मामाने अपना राज्य दे डाला था; उसने कृतघ्न बनकर राजाको दहीमें विष पिला उसका पाप उसे यहाँका यहीं भोगना पड़ा। मुनिके शय्या-सेवक रूप एक कुम्हारको छोड़कर कुपित होकर बूढ़े-बच्चों-सहित समस्त नगरको कर गाड़ दिया। उसके बाद वहाँ जो ग्राम व: आज 'भेरा' कहलाता है।

उधर अभिची कुमार पिता-द्वारा राज्य न कारण नाराज होकर चम्पानगरीमें चला गया

उसका मौसेरा भाई कोणिक-अजातशत्रु राज्य करता था। किन्तु राज करनेवाला नर्क गामी होता है; इस विचारसे अपने पुत्रकी दुर्गति न होने देनेके निमित्त ही उदायनने उसको राज्य नहीं दिया था। फिर भी अभिची उसका परमार्थ-आशय नहीं समझा और जब तक जिया, तब तक उसके मनमें पिताके प्रति ईर्षा-कषाय बना ही रहा। इस कषायकी प्रबलतासे उसकी धार्मिक क्रियाएँ फलीभूत न हो सकीं। इसी कारण मृत्यु होने पर वह एक पल्योपम आयुष्यका असुरकुमार देव हुआ। फिर भी वह जीव बहुत ही अच्छा होनेसे वहाँसे च्यवित होकर महाविदेह क्षेत्रमें मनुष्य रूपमें जन्म ग्रहण कर दीक्षा ले, मोक्षको प्राप्त करेगा।

तीसवाँ परिच्छेद

रथ-यात्रामें

—:o:—

सम्प्रति राजा प्रतिदिन गुरु महाराजकी सेवामें उपस्थित होकर धर्म श्रवण करने लगा। निरन्तरके श्रवणमात्रसे उसके मलिन संस्कार नष्ट होनेपर उसका

हृदय शुद्ध हो गया और उसमें धर्मतत्वका उदय
सङ्घ, यात्रा, तीर्थ-भक्ति आदिके द्वारा जैन
शोभा बढ़ाता हुआ वह अपनी आत्माको पवित्र
लगा। उसने तीर्थंकरको ही देव और सुसा
गुरु मान कर तथा अरिहन्त भगवन्तका
धर्म ही प्रमाणभूत मानकर दृढ़ निश्चयसे
अङ्गीकार किया। पञ्च अणुव्रत, तीन गुणव्रत
चार, शिक्षाव्रतका स्वरूप गुरुदेवसे भली-भाँति ज
कर वह बारह व्रतधारी श्रावक बन गया। इ
तीनों खण्डकी लक्ष्मीसे सुशोभित सम्प्रति राजा
जिन पूजा करता हुआ स्वजनोंके समान स
साथ वात्सल्य करने लगा। निरपराधी जी
पालनेमें प्रीतिवाला, दान देनेमें तत्पर सम्प्रति र
दुःखियोंको अधिकाधिक दान देने लगा। ७
सर्वत्र शान्तिका साम्राज्य व्याप्त हो रहा था।

आर्य सुहस्तिस्वामी सम्प्रति राजाको
करके विहार कर गये थे, सो वे फिर
अवन्तीमें आये। उस अवसर पर जिनेश्वरमें
श्रावकोंने जिन चैत्यमें महान् उत्सव आरम्भ
उस उत्सवमें आर्य सुहस्तिस्वामी भी प्रतिदिन
थे। अतः गुरुका आगमन जानकर सम्प्रति

हाथ जोड़कर निरन्तर उनके पास बैठता था। इस उत्सवके निमित्त सम्प्रतिने अपने प्रत्येक सामन्त-सरदारों-को भी उज्जयिनीमें निमन्त्रित किया था।

यात्रोत्सव पूर्ण होने पर भक्तिमान् श्रावकोंने रथ-यात्राकी तैयारी की; क्योंकि रथयात्राके बिना यात्रोत्सवकी पूर्णता नहीं मानी जाती। अतएव सूर्यके रथके समान सुवर्ण एवं मणि-माणिक्यादिकी कान्तिसे प्रकाशमान एक सुन्दर रथ रथशालामेंसे निकाला गया और विधिके जाननेवाले महर्द्धिक श्रावक रथमें विराजित श्रीअर्हन्त प्रतिमाकी स्नात्र-पूजादि करने लगे। हजारों श्रावक-श्राविकाएँ अपना-अपना महर्द्धिक पन प्रकट करते हुए उस उत्सवमें भाग लेनेके लिए सम्मिलित हुए और श्राविकाएँ अनेक प्रकारके धवलगीत गाती थीं। मङ्गलवाद्य सुमधुर स्वरमें बजने लगे और जैन शासनके जय-जयकारकी घोषणासे आकाश गूञ्ज उठा!

भक्तिमान् श्रावकों द्वारा भगवानका स्नात्रजल सिञ्चन करते रहने पर भी, पूर्वकालमें जैसे देवता मेरु-पर्वतपर भगवन्तका जन्माभिषेक करते थे, और उस समय अभिषेकका जल शिखरपरसे जैसे नीचे गिरता हो, उसी प्रकार रथपरसे भगवानका स्नात्र-जल पृथ्वीपर गिरने लगा। स्नानसे शुद्ध हुए श्रावकवर्ग भगवन्तका

स्नात्राभिषेक कर सुगन्धित द्रव्योंसे उन्हें पूजने
सुगन्धित पुष्पोंकी विविध रङ्गी माला आदिसे पूज
लगे। जिससे जिनेश्वर भगवानकी प्रतिमा इस
शोभायमान होने लगी, मानों शरद ऋतुके
घिरी हुई चन्द्रकला ही न हो! अगर-चन्दन
धूपसे चारों दिशाएँ सुगन्धमय बन गईं।
पूजा करके श्रावकोंने भगवानकी आरती उतारी
जिनेश्वर भगवानको नमस्कार कर भक्तिमान्
अश्वकी भाँति रथको खींचना आरम्भ किया।

रथके आगे मार्गमें नागरिक रमणियाँ
होकर रास आदि गाती जा रही थीं।
वाद्योंके नादके साथ मधुर रसकी वर्षा हो
चारों ओर श्राविकाएँ मङ्गल गीत गारही थीं
प्रकार भगवानका रथ प्रत्येक बाजार और
ठहरता और विविध प्रकारकी पूजा ग्रहण
सम्प्रति राजाके राज-भवनके सम्मुख आया
नियमके अनुसार रथ वहाँ भी खड़ा रहा।

सम्प्रति राजा स्नानादि से पवित्र हो,
हुए भगवानकी पूजा करनेके लिये रथके सामने
उसके साथ सभी सामन्त राजा भी थे।
विधि-पूर्वक भगवानकी पूजा करके स

बतलाई। इसके पश्चात् गुरुदेवसे सबको समकित दिलवा कर राजाने अपने समस्त सामन्तोंको आदेश दिया कि :—"हे सामन्तों! यदि तुम लोग मेरे भक्त हो, और मुझे स्वामी मानते हो तो मुझे तुम्हारे धनसे कोई प्रयोजन नहीं, इसी प्रकार अपना राज्य भी तुम सुखसे भोगते रहो, किन्तु तुम सब श्रावक-जैन बन जाओ! तुम्हारे जैन हो जानेसे मुझे जितनी प्रसन्नता होगी; उतनी अन्य किसी प्रकारसे नहीं। अपने देश एवं प्रत्येक नगरमें जिन-मन्दिर बनवाकर जिनेश्वरके भक्त बन जाओ। अपनी प्रजाको भी इस धर्म-रसका स्वाद चखाओ। सारे संसारमें राष्ट्र-धर्म केवल जैन-धर्म ही होना चाहिए।"

महान् सम्प्रतिकी आज्ञा सबने सप्रेम स्वीकार की; जिस प्रकार कि भरताधिप वासुदेव अथवा प्रति-वासुदेवकी आज्ञा तीनों खण्डके उनके सामन्त शिरसः मान्य करते थे। उनकी अखण्ड आज्ञामें शङ्का करनेकी शक्ति किसी भी सामन्तमें नहीं हो सकती थी। अतः प्रत्येक मुकुटधारी सामन्त राजाने महान् सम्प्रतिकी आज्ञा मस्तक नवाँ कर स्वीकार की और वे सब जैन होगये।

अपने राजभवनके सन्मुख रथमें विराजित भगवान को पूजकर सम्प्रति राजा अपनी आत्माको धन्य मानता

हुआ सामन्तोंके साथ समारोह-सवारीमें ..।
हुआ और फिर थोड़ी देरके बाद वह अपने
लौट कर चला गया।

समारोह वहाँसे आगे बढ़ा और नगरके
भागमें होता हुआ अपनी समृद्धिसे जैनधर्मकी
ध्वजा फहराता हुआ अपने स्थानपर पहुँच गया

इस प्रकार चैत्य-महोत्सव पूर्ण हो ..
सम्प्रतिकी आज्ञा पाकर उसके सामन्त .. न
राजधानीमें चले गये। उन्होंने अपने-अपने ..
मन्दिर बनवाये और वे तीर्थंकरकी भक्ति ..
जनतामें भी इस धर्मका प्रचार किया गया। ..
भक्ति करते और श्रावकोंको उत्तेजन देते हुए .
अपने-अपने देशमें रथयात्रा आदि महोत्सव
किये। स्वयं जैन आचारका पालन करते हुए ..
लिए आदर्शरूप बन गये। जिससे कि आर्य-..
जो मिथ्यात्वसे भरे हुए थे, वे भी शुद्ध और
लिए विहार करने योग्य हो गये।

एकदिन महान् सम्प्रति आर्य ..
वन्दन करके बैठे हुए थे। उस समय ..
महावीर-स्वामीके विशेष-स्वरूपके विषयमें ..
आर्य सुहस्तिस्वामीने उनकी उत्पत्तिसे लेकर ..

सब वृत्तान्त सुनानेके साथ ही जो कुछ विशेष भी सुना दिया। जिसे सुनकर वह भी वीरस्वामीके भक्तिमान होकर उनकी त्रिकाल सेवा-पूजा करने

एकदिन सम्प्रति राजा विचार करने लगा कि : "जब तीन खण्ड पृथ्वी पर मेरा राज्य है, तब उन आर्य-अनार्य देशोंमें भी साधु किस कारणसे नहीं वि सकते ?" उसने यह विचार गुरुदेवके सम्मुख प्र करके पूछा कि :—"आपका साधु समुदाय . कहाँ विहार कर सकता है ?"

"जहाँ-जहाँ जिन मन्दिर हों ; श्रावकोंकी व हो, आर्य-देश हो, वहीं पर साधु लोक विहार सकते हैं ?"

"तो, प्रभु ! अपने साधु अनार्य जैसे देशोंमें भी सुविधा होने पर विहार कर सकते हैं ?"

"अनार्य देशोंमें विहार न करनेका कारण यही है कि वहाँके लोग महान् अज्ञान रूपी अन्धकारमें डूबे हुए होनेके कारण उनसे साधुओंको उपसर्ग होनेकी निरन्तर सम्भावना रहती है। इसी प्रकार श्रावकोंके नहीं होनेसे साधुओंके लिए आहार-पानीकी कठिनाई होती है, साथ ही ठहरनेके लिए भी स्थान मिले या न मिले। इस प्रकार अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती हैं।

इसी प्रकार साधुओंको भी इससे कदाचित् अ
हो ! इसकी अपेक्षा जहाँ सुखसे धर्मध्यान हो सके
स्थानमें रहकर साधुलोग सुखपूर्वक धर्म-साधन कर
यही ठीक है।" सुहस्तिस्वामीने कारण बतलाया।

"आपका यह कारण यद्यपि वास्तविक है;
भी मेरी इच्छा है कि आपके साधु मेरे राज्यमें
अनार्य देशमें चाहे जहाँ विहार कर सकें,
मेरी अनार्य प्रजा भी धर्मतत्व तो प्राप्त कर सके।"

"यह कैसे हो सकता है, राजन्! आप क्या
लिए कोई मार्ग निकाल सकते हैं?"

"भगवन्! प्रथम तो ऐसे श्रावकोंको, जो
आचार-विचारमें पारङ्गत हों, साधुओंका वेष
करवा कर उन सभी देशोंमें भेजा जाय;
प्रजा उन्हें मेरे गुरुके समान मानकर उनकी सेवा
और सम्मान करना सीखे। इस प्रकार धीरे-धीरे
प्रजा भी साधुओंकी भक्ति कैसे की जाती है
जान लेगी। इसके बाद आप साधुओंको
पता लगावें कि वह देश विहारके योग्य हो
अथवा नहीं?"

"तुम्हारा कथन सत्य है। इतने परिश्रमके
अवश्य विचर सकते हैं।" गुरुने अनुमोदन किया

इसके बाद सम्प्रति राजाने विद्वान् श्रावकों उपदेशकोंको साधु बनाकर अनार्य देशोंमें भेजे। प्रत्येक अनार्य देशमें अपने सिपाहियोंको भेजकर वहाँ अनार्य राजाओं तथा देशवासियोंको आज्ञा दी कि : "हमारे लोग जो आ रहे हैं, ये जिस रूपमें 'कर' माँगें वह इन्हें देकर इनकी भक्ति करना।"

इकत्तीसवाँ परिच्छेद

अब मुझे क्या करना चाहिए ?

—:०:—

"हे राजन्! संसारमें दान एक सर्वोत्कृष्ट वस्तु है। दानके द्वारा अनेक जीव भवसागरसे पार हो जाते हैं। दानके अतिरिक्त वस्तुएँ तो केवल अपने लिए ही लाभकारी हो सकती हैं; किन्तु दान तो अपने और पराये दोनोंके ही लिए लाभकारी हो सकता है। इनमें भी अभयदान और सुपात्रदान ये दोनों सर्व श्रेष्ठ माने गये हैं। इसके सिवाय उचितदान, कीर्तिदान और अनुकम्पादान भी संसारमें फल देनेवाले होते हैं। तीर्थ-

करके समान पुरुष भी दीक्षाका अवसर प्राप्त वार्षिक दान देते हैं। इसलिए लक्ष्मीवान् दाता अवश्य बनना चाहिए। अपनी ि व्यय करके मानव जन्म अवश्य सफल करना क्योंकि व्याज-सूदसे धन दो गुना और ०५ गुना होता है तथा क्षेत्रमें बोनेसे सहस्र गुना हे किन्तु यदि सुपात्रमें उसका उपयोग किया अनन्त गुना फल देनेवाला होता है।

दुःखी जीवों पर अनुकम्पा दिखाकर निवारणार्थ जो सहायता दी जाती है, वह दान कहलाता है। सगे-सम्बन्धी या जन पारिवारिक स्वजनोंको अपने-अपने योग्य जो दी जाती है, वह उचित दान है और लोगोंमें पानेके लिए जो दान दिया जाता है, वह होता है; किन्तु इन सब दानोंसे भी श्रेष्ठ सु और अभयदान है। ये दोनों दान तो मोक्षके बीजभूत बन जाते हैं। अर्थात् इनसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। पहले मेघरथके भ पारेवाकी रक्षा करने पर वह शान्तिनाथ कर मोक्षको प्राप्त हुए। बिम्बिसार-श्रेणिकके कुमारने पूर्व भवमें हाथीकी योनिमें

की; और वहाँसे च्यवन हो वह मेघकुमार बना उसके बाद एकावतारी होकर मोक्षको प्राप्त करे इसी प्रकार अहिंसा धर्मका पालन करते हुए अनेक अल्प समयमें ही भवसागरसे तिर जाते हैं। ऐसे सुपात्र दानके अधिकारी-योग्य पात्र वर्तमान सम साधु-साध्वी माने जाते हैं; जो कि अतिथि रूप ह हैं। उनकी भाव पूर्वक आहार-पानी आदिसे भक्ति क पर अनेक जीव भवसागरसे पार हो चुके हैं।

श्रीऋषभ देवके जीव धनासार्थवाहने साधुओंक घृत-द्वारा भक्ति करके अपना संसार समाप्त कर तेरह भवमें तीर्थंकर पद प्राप्त किया। उन्हीं ऋषभदेवक गन्नेके रसका पारणा करानेसे श्रेयान्सकुमारने मुक्ति-रूप लक्ष्मी प्राप्त की और उतनी दूर जानेकी भी क्या आवश्यकता है; मैं अभी की ही बात कहता हूँ। देखो, जीवन्तस्वामी यानी महावीरस्वामीकी प्रतिमाकी तुम पूजा करते हो, उन्होंने भी नय-सारके भवमें साधुओंको आहार दान करनेसे समकित प्राप्त किया था और परम्परासे वे महावीर स्वामी हुए। उनके समयमें जो-जो पुरुष प्रसिद्धिको प्राप्त हुए हैं; वे प्रायः मुनियोंको दान देनेके माहात्म्यसे ही हुए हैं। देखो, धनाशालि भद्र! जिन्होंने पहले ग्वालेके

भवमें एक मासके उपवासी तपस्वी मुनिको
धारणा कराया ; तो शालिभद्र बनकर अक्षय
प्राप्तकर सके। उनके बहनोई धना सेठ पूर्वकालमें स
दान देनेके प्रभावसे वे भी अटूट लक्ष्मीके स्वामी
इतना ही नहीं ; वरन् अब एकान्नतारी होकर वे म
भी प्राप्त होंगे। इसी प्रकार कृतपुण्य ! म
स्वामीकी श्राविका रेवतीने भगवान्को 'बिजोरा
बहरा कर संसारको सङ्कुचित किया और
कर्म बाँधा तथा भावी चौबीसीमें समाधि नामके
तीर्थङ्कर होंगे।

लक्ष्मीका सदुपयोग करनेके लिए
क्षेत्रोंकी प्ररूपणा की है। वे सात क्षेत्र ये हैं—जिन
जिन चैत्य, ज्ञान, साधु-साध्वी और श्रावक-१।
जिन प्रतिमा और जिन चैत्य, ये संसारसे पार
लिए आत्माके साधन हैं। अनेक आत्माएँ इन
को पाकर अपना हित साधन कर चुकी हैं और
हैं। यह सब लाभ जिनमन्दिर बनवानेवाले
होता है। यदि किसी प्राणीको भवसागरसे पार
हो या दूसरोंको उतारना हो, तो उन्हें
पर जिनमन्दिर बनवाना और जिनप्रतिमा
करानी चाहिए। इनमें भी नये मन्दिर निर्माण

अपेक्षा पुरानेका जीर्णोद्धार करानेमें सोलह गुना लाभ समाया हुआ है। जहाँ-जहाँ जिन मन्दिर होते हैं, वहाँ श्रावकोंके घर भी अवश्य होते हैं; अतएव साधु-गण भी उन स्थानोंमें विहार कर सकते हैं। लोगों पर उपकार कर उन्हें प्रतिबोध करा सकते हैं। उन्हींकी लक्ष्मी सफल हुई है कि जिसका उपयोग जिनमन्दिर निर्माण करानेमें हुआ है। अथवा प्राचीन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करानेमें हुआ है; इसी प्रकार जिनके द्वारा जिन प्रतिमाएँ नवीन बनवायी हों। अन्यथा वैसे तो श्रीमान् अनेक हो सकते हैं; किन्तु जिस लक्ष्मीका सदुपयोग नहीं होता, वह उस व्यक्तिकी मृत्युके पश्चात् दूसरेके हाथमें चली जाती है और वह स्वयं कुछ किये बिना ही अन्त समयमें पश्चात्ताप करता हुआ 'नरभव' हार जाता है। अतएव उत्तम पुरुषोंको ऐसा अपूर्व अवसर प्राप्त होनेपर उसका सद्व्यय कर अवश्य लाभ उठाना चाहिए; क्योंकि लक्ष्मी तो पुण्यसे ही प्राप्त होती है; और पापसे वह चली भी जाती है। अर्थात् वह सदैव कायम नहीं रहती। श्रीकृष्ण वासुदेव जैसे समर्थ पुरुषको भी जब समृद्धिने त्याग दिया, तब साधारण पामर जीवोंकी तो बात ही क्या? इसलिए हे राजन्! जिनमन्दिर निर्माण

भवमें एक मासके उपवासी तपस्वी मुनिको ०ी
धारणा कराया ; तो शालिभद्र बनकर अक्षय ऋ
प्राप्तकर सके। उनके बहनोई धना सेठ पूर्वकालमें ।
दान देनेके प्रभावसे वे भी अटूट लक्ष्मीके स्वामी ु
इतना ही नहीं ; वरन् अब एकावतारी होकर वे मो।
भी प्राप्त होंगे। इसी प्रकार कृतपुण्य ! ी ०।
स्वामीकी श्राविका रेवतीने भगवान्को 'बिजोरा
बहरा कर संसारको सङ्कुचित किया और तीर्थङ्कर
कर्म बाँधा तथा भावी चौवीसीमें समाधि नामके :
तीर्थङ्कर होंगे।

लक्ष्मीका सदुपयोग करनेके लिए भगवानने
क्षेत्रोंकी प्ररूपणा की है। वे सात क्षेत्र ये हैं—जिन
जिन चैत्य, ज्ञान, साधु-साध्वी और श्रावक-श्र
जिन प्रतिमा और जिन चैत्य, ये संसारसे पार उत
लिए आत्माके साधन हैं। अनेक आत्माएँ इन
को पाकर अपना हित साधन कर चुकी हैं और कर
हैं। यह सब लाभ जिनमन्दिर बनवानेवालेको
होता है। यदि किसी प्राणीको भवसागरसे पार उ
हो या दूसरोंको उतारना हो, तो उन्हें स्था
पर जिनमन्दिर बनवाना और जिनप्रतिमा ति
करानी चाहिए। इनमें भी नये मन्दिर निर्माण

अपेक्षा पुरानेका जीर्णोद्धार करानेमें सोलह गुना लाभ समाया हुआ है। जहाँ-जहाँ जिन मन्दिर होते हैं, वहाँ श्रावकोंके घर भी अवश्य होते हैं; अतएव साधु-गण भी उन स्थानोंमें विहार कर सकते हैं। लोगों पर उपकार कर उन्हें प्रतिबोध करा सकते हैं। उन्हींकी लक्ष्मी सफल हुई है कि जिसका उपयोग जिनमन्दिर निर्माण करानेमें हुआ है। अथवा प्राचीन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करानेमें हुआ है; इसी प्रकार जिनके द्वारा जिन प्रतिमाएँ नवीन बनवायी हों। अन्यथा वैसे तो श्रीमान् अनेक हो सकते हैं; किन्तु जिस लक्ष्मीका सदुपयोग नहीं होता, वह उस व्यक्तिकी मृत्युके पश्चात् दूसरेके हाथमें चली जाती है और वह स्वयं कुछ किये विना ही अन्त समयमें पश्चात्ताप करता हुआ 'नरभव' हार जाता है। अतएव उत्तम पुरुषोंको ऐसा अपूर्व अवसर प्राप्त होनेपर उसका सद्व्यय कर अवश्य लाभ उठाना चाहिए; क्योंकि लक्ष्मी तो पुण्यसे ही प्राप्त होती है; और पापसे वह चली भी जाती है। अर्थात् वह सदैव कायम नहीं रहती। श्रीकृष्ण वासुदेव जैसे समर्थ पुरुषको भी जब समृद्धिने त्याग दिया, तब साधारण पामर जीवोंकी तो बात ही क्या? इसलिए हे राजन्! जिनमन्दिर निर्माण

कराने और जिन प्रतिमा पधरानेके रूपमें तुम्हें पृथ
सुशोभित करना चाहिए। आज तीन खण्ड
पर तुम्हारा राज्य फैला हुआ है। वासुदेवके
जगत्में तुम्हारी आज्ञाका उल्लंघन करनेमें तुम्हारे
हजार सामन्तोंमें कोई भी समर्थ नहीं है।
अब जिनेश्वरकी भक्ति करके अपने 'मनुष्य ज
सफल करो।

इसी प्रकार ज्ञान-भक्ति भी अनुपम है ; क्यों कि
भक्तिसे भी अनेक आत्माएँ भवसागरसे पार हो
हैं। अर्थात् ज्ञान-भक्ति एवं ज्ञान-दान करनेसे
होता है और उस ज्ञान-द्वारा वैराग्य प्राप्त होने पर
बन्धन अपने आप क्षय-शिथिल हो जाते हैं।
धन-सम्पन्न श्रावकोंको ज्ञानकी प्रभावना कर
साधन करना चाहिये। पूर्वकालमें ज्ञान पाकर भर
राजा भी संसार-सुख भोगते हुए आरिसा-भवनमें
पदको प्राप्त हुए। जयन्त नरपतिने भी ज्ञ
करते हुए तीर्थङ्कर पद प्राप्त किया था।

साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाएँ एक दूस
रोत्तर उतरती कोटिके क्षेत्र हैं। इनमें साधु-
सुपात्र दान देनेसे तो मेरे पूर्व कथनानुसार अ
निश्चित ही प्राप्त होता है।

श्रावक-श्राविका रूप क्षेत्रमें उपयोग किया हुआ द्रव्य भी अनन्त कोटि फल प्रदान करता है। धर्मसे भीगे हुए श्रावक-श्राविका यदि निर्धन अवस्थाके कारण द्रव्यके लिए धर्मसे पतित होते हों तो ऋद्धिमान श्रावक उन्हें अपनी शक्तिसे अवश्य बचावे; और धर्ममें स्थिर करे तो भी वह बहुत बड़ा लाभ अर्जन कर सकता है। दूसरेको धर्म प्राप्त कराने—धर्ममें स्थिर करनेका फल वह अवश्य ही प्राप्त करता है; किन्तु यदि वह श्रावक स्वयं ऋद्धिमान् होते हुए भी इस प्रकार अपनी योग्यता प्रकट न करे; तो अवश्य उसे दोष लग सकता है। मनुष्यके पास जो शक्ति होती है; उसका उसे परमार्थमें अवश्य उपयोग करना चाहिए।

अपने हजारों धर्म-बन्धु यदि दुःखी हों, निराधार श्राविकाएँ आजीविकाके लिए अपना धर्मत्याग कर भ्रष्ट होती हों; श्रावकगण निर्धन होकर भटकते हों या अन्य धर्ममें जाते हों, तो शासनकी उन्नति चाहनेवाला वीर नर इसे सहन नहीं कर सकता। उनके उद्धारके लिए वह अपनी लक्ष्मीका उपयोग करे, उनके लिए आवश्यक साधन जुटा कर उन्हें धर्ममें दृढ़ करे तो वह सच्चा श्रावक कहला सकता है। उसकी लक्ष्मी

उगने लगती है। योग्य पात्रमें दिया हुआ अनन्त गुणा लाभ प्रदान करता है।

राजन्! श्रावक-श्राविकाके परिपालनका इसीलिए तुम्हें आग्रह पूर्वक कह रहा हूँ पाँचों क्षेत्रोंका आधार श्रावक-श्राविका ही हैं; यदि पृथ्वी जिन मन्दिरोंसे विभूषित हो सम्हालनेवाले श्रावक न हों, तो वे मन्दिर कि निभ सकते हैं? उनके पूजन, सत्कार आदि तो श्राविकाओंकी उन्नतिपर ही आधार रखते हैं। यत्नपूर्वक श्रावक-श्राविकाओंकी रक्षा तो करनी चाहिए। उनके कारण ही धर्मकी उन्न शोभा है और उनकी उन्नतिमें ही धर्मकी उन्न

यदि शक्ति होते हुए भी कोई अपने बन्धुका दुःख दूर नहीं कर सकता, तो स चाहिए कि उसमें धर्म प्रेम नहीं है। भले वह चाहे जितना आडम्बर क्यों न रखता हो घोड़े पर घूमता हो, किन्तु अजागलस्तन स्तनकी) तरह उसकी लक्ष्मी और उसका जीव ही समझना चाहिए। वह कृपण भले ही शुभ मार्गमें व्यय न करे; किन्तु उसकी वह लक्ष्मी दूसरेके हाथमें चली जायगी, अं

क्या उपयोग होगा ? इसे वह अज्ञानी होनेके कारण नहीं समझ सकता ।

श्रावक और श्राविका भी सङ्घके अङ्ग ही माने जाते हैं। इस सङ्घकी भक्ति करते हुए सम्भवनाथ तीर्थङ्करके जीवने पूर्व भवमें तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन किया और वे सम्भवनाथ हुए। अतएव ऋद्धिवान् पुरुषको अवश्य अपने गरीब साधर्मिकोंकी ओर ध्यान देकर धर्मकी महिमा बढ़ानी चाहिए ; किन्तु केवल एकबार भोजन करा देने या नवकारशी कराने मात्रसे ही साधर्मिकता समाप्त नहीं हो जाती। सच्ची स्वामी वत्सलता तो यही है कि अपने जीवनमें अपने गरीब बन्धुओंको वास्तविक सुखी करके उनकी आत्माको शान्त किया जाय !

यदि श्रावक-श्राविका सुखी होंगे, तो उनसे धर्मका माहात्म्य बढ़ेगा। वे स्वयं ही धर्मका माहात्म्य बढ़ावेंगे और यह लाभ उन्हें अच्छी दशामें पहुँचाने वालेको मिलेगा। अतएव धन सम्पन्न श्रावकोंको अपने गरीब बान्धवोंकी सार-सम्हाल अवश्य करनी चाहिए। हे राजन् ! श्रावकोंको सहायता देनेकी बात तुम्हें सदैव स्मरण रखनी चाहिए।

वस्तुतः जिस समय जिस क्षेत्रका पतन होता या उसमें शिथिलता आने लगे, उस समय उस

उन्नतिके लिए यदि प्रयत्न न किया जाय ;
हानि होनेकी सम्भावना रहती है। अतएव
यदि अपने द्रव्यका सदुपयोग करना हो तो
एक ही क्षेत्रका पोषण करनेसे—भरे हुए
नहीं हो सकता ; किन्तु शिथिल होनेव
उन्नतिके लिए अपनी सम्पत्तिका सदुपयोग
उसे अधिकाधिक लाभ हो सकता ; और वह
स्वजन-सम्बन्धियोंके हितसाधन या
न रखनेपर ही होना सम्भव है। अर्थात्
रखते हुए कि अमुक व्यक्ति मेरा स्वजन
मेरा साधर्मिक बन्धु है ; और दुःखी है,
दुःख मुझे अवश्य दूर करना चाहिए ; जि
पुनः धर्ममें स्थिर होकर धर्म-साधन कर
प्रकार निष्काम वृत्तिसे परमार्थ करनेपर
लक्ष्मीकी सार्थकता हो सकती है।

राजन्! आज तो समय बहुत अच्छा हो
यहाँ श्रावक-श्राविका भी सुखी और वैभव
किन्तु भविष्यमें ऐसा समय आने वाला है,
क्षत्रियमेंसे जैनधर्म नष्ट होकर वह केवल
ही सीमित रह जायगा ; और तब वे अर्थ
जायेंगे। जिससे धर्मके महत्वको हानि

पैसेको ही सर्वस्व समझने वाले द्रव्यके पुजारी अपने हजारों गरीब-बान्धवोंको—श्रावक-श्राविकाओंको दुःखी देख कर भी उनकी ओर दुर्लक्ष्य करके अपने स्वार्थ-साधनमें ही तत्पर रहेंगे। जिन गरीबोंके त्याग-बलिदानके द्वारा ये ऋद्धिमान होंगे, उन्हींका तिरस्कार करेंगे और अन्य लोगोंके घर भरेंगे।

इससे जैनधर्मकी विशेष हानि होगी। श्रावक-श्राविकाएँ दुःखी होकर धर्म भ्रष्ट होंगे। आजीविकाके लिए उन्मार्गका अनुसरण करेंगे और प्रत्यक्षमें अपने स्वामि-बन्धुओंको दुःखी देखते हुए भी, इस क्षेत्रकी ओर प्रायः कम ही ध्यान देंगे; किन्तु जो क्षेत्र भरा-पूरा होगा, उसीका पोषण करनेके लिये यत्न करेंगे जिससे शिथिल होते हुए क्षेत्रको तो हानि पहुँचेगी ही; साथ ही श्रावक-श्राविकाओंकी संख्या भी घट जायगी। उनकी बस्ती न्यून हो जायगी। इतना ही नहीं, वरन् भरे हुए क्षेत्रका बारम्बार पोषण करने पर भी, उसमेंसे अनेक अनर्थ उत्पन्न हो जायेंगे। अस्तु हे नरकुञ्जर! इस प्रकार भविष्यकालकी बातें करके तेरे शासनप्रेमी चित्तको क्षुब्ध करना नहीं चाहता जो कुछ भावीभाव-भवितव्यता होनी होगी वह होगी। पञ्चमकालमें प्रकट हुए वक्र जड़ जीवोंसे

उन्नतिके लिए यदि प्रयत्न न किया जाय ;
हानि होनेकी सम्भावना रहती है। अतएव ल,
यदि अपने द्रव्यका सदुपयोग करना हो तो
एक ही क्षेत्रका पोषण करनेसे—भरे हुए
नहीं हो सकता ; किन्तु शिथिल
उन्नतिके लिए अपनी सम्पत्तिका सदुपयोग
उसे अधिकाधिक लाभ हो सकता ; और वह
स्वजन-सम्बन्धियोंके हितसाधन या
न रखनेपर ही होना सम्भव है। अर्थात्
रखते हुए कि अमुक व्यक्ति मेरा स्वजन
मेरा साधर्मिक बन्धु है ; और दुःखी है,
दुःख मुझे अवश्य दूर करना चाहिए ; जस
पुनः धर्ममें स्थिर होकर धर्म-साधन कर
प्रकार निष्काम वृत्तिसे परमार्थ करनेपर
लक्ष्मीकी सार्थकता हो सकती है।

राजन्! आज तो समय बहुत अच्छा हो
यहाँ श्रावक-श्राविका भी सुखी और वैभव
किन्तु भविष्यमें ऐसा समय आने वाला है,
क्षत्रियमेंसे जैनधर्म नष्ट होकर वह केवल वै
ही सीमित रह जायगा ; और तब वे अर्थ
जायेंगे। जिससे धर्मके महत्वको हानि

र भी उनकी ओर दुर्लक्ष्य करके अपने स्वार्थ-
में ही तत्पर रहेंगे। जिन गरीबोंके त्याग-
नके द्वारा ये ऋद्धिमान होंगे, उन्हींका तिरस्कार
और अन्य लोगोंके घर भरेंगे।
इससे जैनधर्मकी विशेष हानि होगी। श्रावक-
काएँ दुःखी होकर धर्म भ्रष्ट होंगे। आजीविकाके
उन्मार्गका अनुसरण करेंगे और प्रत्यक्षमें अपने
-बन्धुओंको दुःखी देखते हुए भी, इस क्षेत्रकी
प्रायः कम ही ध्यान देंगे ; किन्तु जो क्षेत्र भरा-
होगा, उसीका पोषण करनेके लिये यत्न करेंगे
से शिथिल होते हुए क्षेत्रको तो हानि पहुँचेगी
साथ ही श्रावक-श्राविकाओंकी संख्या भी घट
गी। उनकी वस्ती न्यून हो जायगी। इतना ही
, वरन् भरे हुए क्षेत्रका बारम्बार पोषण करने
भी, उसमेंसे अनेक अनर्थ उत्पन्न हो जायेंगे। अस्तु
रकुञ्जर! इस प्रकार भविष्यकालकी बातें करके मैं
शासनप्रेमी चित्तको क्षुब्ध करना नहीं चाहता।
कुछ भावीभाव-भवितव्यता होनी होगी वह अवश्य
ो। पञ्चमकालमें प्रकट हुए वक्र जड़ जीवोंसे इससे

अधिक अन्य आशा ही क्या की जा सकती
इस प्रकार गुरुवर आर्य सुहस्तिस्वामी लक्ष्मीके
करनेके उपाय बतलानेके पश्चात् रुक गये।

महान् सम्प्रतिने पुनः प्रश्न किया
"भगवन्! वर्तमान समयमें मुझे क्या करना च
सातों क्षेत्रमें से किस क्षेत्रकी ओर विशेष
देना चाहिए!"

इस समय तो जिन-चैत्य और प्रतिमाकी
विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है।
श्रावक-श्राविका एवं साधु-साध्वियाँ उनके
द्वारा ही आत्मशुद्धि करके भवसागरको पारकर
भविष्यकालमें भी बहुत समय तक उन म
प्रतिमाओंका संसारमें अस्तित्व रहेगा; तब तक
संघ-द्वारा उनकी पूजा होती रहेगी।
लाभ भी तुम्हें प्राप्त होगा। तीन खण्डमें
राज्य होनेसे प्रत्येक देशमें जन-मन्दिर
श्रावकोंकी संख्या बढ़नेपर अनार्य देशमें
उन्नति होगी। इन सबका श्रेय भी तुम्हें
होगा। फिर भी साधर्मिककी भक्ति करनेकी
याद रखनी चाहिए। इस प्रकार सातों
करते हुए तुम्हारा संसार स्वल्प होकर जन्म

फेरा टल जायगा और तुम अजर अमर ऐसी विशेष मुक्तिके भोक्ता हो सकोगे।

"भगवन्! आजसे ही मुझे मन्दिर बनवानेकी शुरुआत कर देना है, और उनमें प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करानेके साथ ही प्राचीन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करानेका भी अब मैं नियम कर लेता हूँ। अर्थात् प्रतिदिन एक जिनमन्दिर निर्माण होनेका समाचार सुनलेनेके पश्चात् ही मैं दन्तधावन-दातुन करुँगा।" इस प्रकार महान् सम्प्रतिने प्रतिदिन एक नया जिनमन्दिर निर्माण करानेका व्रत लिया।

तत्काल ही राजाने लाखों मनुष्योंको इस काममें लगा दिये। लोगोंको आजीविका मिलने लगी और स्थान-स्थानपर एकके बाद दूसरा जिनमन्दिर निर्माण होने लगा। इस प्रकार प्रतिदिन महाराज कमसे कम एक मन्दिर निर्माण होनेके समाचार सुन लेने बाद ही दन्तधावन करता था। तीन खण्ड पृथ्वी आर्य या अनार्य देशके प्रत्येक ग्राम अथवा नग जिनमन्दिर अपनी शोभाके द्वारा जनताका ध्य आकर्षित करनेलगे।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

संसार धर्मके पथपर

—:०:—

महान् सम्प्रतिने अपने सभी देशोंमें अपने एवं श्रावकोंको साधु बनाकर भेज दिया था संसारके कोने-कोनेमें घूमते रहे। वे अनार्य वहाँके जड़ जीवोंको उनका कर्तव्य समझाते हुए देने लगे। वे कहते :—देखो, ध्यान रखो कि आवें ; तब तुम्हें उठकर हमें वन्दन करना च दृष्टिगोचर होते ही पैरोंमें पड़ना चाहिए। तुम्हें धर्मोपदेश भी सुनना चाहिए। हमें अमुक-प्रकारका ही आहार बहराना—देना चाहिए उसके लिए हमें बुलानेको आना चाहिए। गम हुआ पानी निर्दोष रूपसे ठण्डा करके वही हमें लिए देना चाहिए। हमें अमुक-अमुक वस्त्र भी चाहिए। हमें किसी ग्राम या नगरमें पहुँचनेपर लिए स्थान देना चाहिए। इस प्रकार तन, मन, हमारी भक्ति करनी चाहिए। तुम्हें हमेशा नवकार गिनते रहना चाहिए। जिनमन्दिरोंमें दर्शनार्थ और जिनराजकी पूजा करते रहना चाहिए।

कर्म तुम्हारे लिए नित्य करते रहना उचित है। हमारे जानेके वाद हम जैसे ही सम्प्रति राजाके मनुष्य आवेंगे ; उनकी भक्तिपूर्वक तुम्हें उत्तम प्रकारसे पूजा करनी चाहिए ; जिससे सम्प्रति राजा तुमपर प्रसन्न होंगे। वे आनेवाले लोग सम्प्रति राजाके पूज्य हैं ; उनके गुरु हैं, इसलिए उनकी सेवा भक्तिमें तुमको जरा भी त्रुटि नहीं होने देना चाहिए। आहार-पानीमें बयालीस प्रकारके दोष नहीं आने देना चाहिए।" इस प्रकार उन्होंने बयालीस दोष विस्तारसे सिखाने समझानेके साथ ही गुरुकी तैंतीस आशातना न होने देनेकी विधि भी उन्हें सिखला दी।

जिनमन्दिरमें जानेपर तुम्हें बड़ी-बड़ी दस आशा-तनाएँ तो अवश्य त्यागनी चाहिए। जैसे जिनमन्दिरमें पान-सुपारी नहीं खाना चाहिए। भोजन नहीं करना और पानी नहीं पीना चाहिए। जूते पहन कर नहीं जाना चाहिए, शयन नहीं करना चाहिए। मैथुन नहीं करना और थुँकना या मल-श्लेष्म त्याग भी नहीं करना चाहिए। लघुनीति-या दीर्घनीति भी नहीं करनी चाहिए। जुआ-द्यूत-क्रीड़ा या हास्य-कुतूहल आदि भी नहीं करना चाहिए, इत्यादि। इसी प्रकार अन्य छोटी-मोटी आशातनाएँ मिलकर चौरासीकी संख्या

जाती है। उन सबसे बचना चाहिए।
पाप लगता और उस पापके फलसे हमें दुःख
पड़ता है। अतएव आशातना रहित
करनेसे सम्प्रतिके समान समृद्धि प्राप्त होता है
भी अधिक देवलोकके सुख प्राप्त होते हैं। वे
सुख ऐसे अनुपम होते हैं कि जिनका वर्णन
किया जा सकता। अरे! यहाँ तक कि उनकी
करनेकी भी शक्ति हममें नहीं हो सकती।
सुख हमारी अल्प कल्पनासे भी परे होते हैं
यदि तुम जिनराज और सम्प्रतिके भेजे हुए
मनुष्योंकी सेवा-भक्ति करोगे तो, पहले
सम्प्रतिके कृपापात्र बन सकोगे, और इस
समृद्धि प्राप्त कर सकोगे। साथ ही उस भक्तिके
तुम देवलोकमें जाओगे, जहाँ देवाङ्गनाएँ
करेंगी; जोकि मनुष्य लोककी सुन्दरसे-सु
जानेवाली रमणियोंसे भी अनेक गुनी श्रेष्ठ,
चतुर हैं। तुम्हींको सुखी करनेके लिए
कलामें निपुण हैं—पण्डिता हैं। उन
सुखोपभोग करते हुए तुम्हें यह भी
सकेगा कि तुम्हारा समय किधर व्यतीत हो
वहाँ तुम अतुल समृद्धिके स्वामी बन सकोगे

प्रकार देव-बालाएँ तुम्हारी सेवा करेंगी; उसी प्रकार तुम्हारे सेवक देवता और गन्धर्व भी तुम्हारे सन्मुख सङ्गीत करेंगे और देवाङ्गनाएँ नृत्य करेंगी। उस सङ्गीत और नाचरङ्गमें तुम्हारा अनेक वर्षोंका समय जल-प्रवाहकी तरह बह जाएगा। उन देवबालाओंके शरीरकी सुन्दरता, लावण्यता, चतुराई और उनके हावभाव तथा भ्रूभङ्ग एवं सुहावने मुखमण्डल-चन्द्रवदन-निहारते हुए तुम इस प्रकार मुग्ध हो जाओगे कि तुम्हें स्वप्नमें भी दुःखकी कल्पना तक न हो सकेगी।

उनका एक-एक नाटक देखनेमें इतना समय व्यतीत हो जाता है कि, उसकी तुलनामें यहाँके पाँचसौ वर्ष भी पूरे नहीं पड़ सकते। इससे भी यदि तुम लोग जिनराज और गुरुकी शुद्ध मनसे विशेष भक्ति करोगे, तो तुम भी अत्यन्त श्रेष्ठ देवता बन सकोगे। वहाँ एक-एक नाट्यरङ्गमें हजारों वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। उस उच्च कोटिके देवताओंके तो पन्द्रह सौ वर्ष भी जाते हैं। यह तो नाटकका काल बताया गया; [illegible] उस नाटकका सङ्गीत तो मनुष्यकी कल्पनासे परे वस्तु है। उसे मनुष्य कभी प्राप्त ही नहीं कर सकत क्योंकि जिस वस्तुका सूक्ष्म या रञ्च मात्र भी ज्ञान उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती। अर्थात् उ

सुख तो देवता बननेपर ही प्राप्त हो सकता
उन नाटकों और सङ्गीत लीलाओंका आनन्द
करनेका तो केवल देवताओंको ही अधिकार
सकता है। अतः ऐसे अनुपम सुखको प्राप्त
लिए हमें जिनराजकी भक्ति और गुरुका
सम्मान करना चाहिए।

हमारे मनुष्यलोकके नाटकों या सङ्गीतोंका
वहाँके नाटक अनन्त गुने और उत्तरोत्तर अधिक
प्रदान करने वाले होते हैं। वे अपनी इ
कुछ कर सकते हैं। जहाँ भी मन चाहे, वहीं
मात्रमें जा सकते हैं। इच्छानुसार स्वरूप
सकते हैं। आनन्द, उत्साह एवं ठकुराई आदि
सकते हैं। हमारे शरीरकी तरह उनका शरीर नहीं
वरन् उनका शरीर तो रक्त, मांस, अस्थि एवं मज्जा,
आदि मलिनतासे रहित शुद्ध होता है। साथ ही
बाल्यकाल अथवा वृद्धावस्थासे रहित सदैव
बनी रहती है। उन देवताओंका शरीर दिव्य
पुद्गलों वाला सुगन्धमय होता है। साथ ही वह
तेजस्वी एवं सौन्दर्य-सम्पन्न होता है कि जिसे
भाग्यमें कभी देखनेका भी अवसर नहीं आ
वैसी ही सुन्दर उनकी देवाङ्गनाएँ भी होती हैं।

देवाङ्गनाओंके सहवासका सुख मनुष्योंके सुखकी अपेक्षा कई गुना श्रेष्ठ और सर्वोत्तम होता है।

हमारे मानवीय संभोगके समान देवता और देवाङ्गनाओंके संभोग अल्पकालमें ही परिसमाप्त नहीं हो जाते। व्यन्तर जैसे देवताओंको भी अपनी प्रियाके साथ सम्भोग करते हुए सामान्यतः पाँच सौ वर्ष बीत जाते हैं; क्योंकि उनके शरीरमें वीर्य न होनेसे दीर्घ-काल पर्यन्त वे सम्भोग-सुखमें ही निमग्न रहते हैं। उनसे उच्च कोटिके देवताओंको तो देवबालाओंके साथ संभोग करते हुए हजार वर्ष भी व्यतीत हो जाते हैं। उनसे अधिक आयुवाले देवताओंको पन्द्रह सौ वर्ष भी व्यतीत हो जाते हैं। ऐसा उनका सम्भोग काल होता है। यह उनका उत्कृष्ट काल समझा जात है; किन्तु इतना समय व्यतीत होनेपर भी वे भोग तभी निवृत्त होते हैं, जब कि उनका मन पीछे हटता अर्थात् उनका मन भर जाने तृप्त हो जाने या सं पानेके बाद ही वे भोगसे विरत होते हैं। अन वे निरन्तर भोग और सङ्गीतमें ही तत्पर एवं आस रहते हैं। वे महान् शक्तिशाली होनेसे उन्हें श्रम नहीं होता। अतः उनके मनकी निवृत्ति ही वे निवृत्त होते हैं।

हे मानवों ! उन देवताओंके सुखका तुम्हारे कहाँतक वर्णन किया जाय ? यदि जीवन भर सुखोंका वर्णन किया जाय, तो भी हम उसका नहीं पा सकते। मनुष्यके समान उन्हें दुःख भी नहीं सहना पड़ता ; इसी प्रकार उनका भी दुर्गन्धमय नहीं होता और उनकी इतनी लम्बी होती है कि उन वर्षोंकी हम नहीं कर सकते। अतएव यदि तुम्हें ऐसे अपूर्व भोगनेकी इच्छा हो तो उसके लिए केवल एक ही हो सकता है कि तुम जिनेश्वरोंके मन्दिरमें उनकी पूजा-सेवा करो। हमारे जैसे सम्प्रतिके मनुष्योंकी सेवा-भक्ति करो।"

इस प्रकार उन उपदेशकोंने अनार्यदेशोंकी लालसावाली जनताको उपदेश देना आरम्भ उन उपदेशकोंने तीनों खण्डके कोने-कोनेमें मचा दी। धर्मसे रहित उन जड़वत् लोगोंमें उक्त लालचसे धर्म-वासना जागृत हुई और इसीलिए उस उपदेशको क्रिया रूपमें प्रदान कर दिया ; वे अनार्यलोग यह सोचकर कि मरनेके बाद होगा और मरकर हम कहाँ जायेंगे इत्यादि फँसे होनेसे मृत्युके पश्चात् प्राप्त होनेवाले

आशा एवं सम्प्रतिको प्रसन्न करनेके लिए उन उपदेशोंके कथनानुसार आचरण करने लगे।

सारांश, समस्त अनार्य देश जैनधर्मके अनुसार आचरण करने लगा। अर्थात् अनार्य देशोंमें भी महान् सम्प्रतिने जैनधर्मका महत्व बढ़ा दिया। अतः जब उन उपदेशकोंने देखा कि अब यह क्षेत्र क्रियापात्र साधुओंके विचरने योग्य हो गया है; तब उनमेंसे कुछ लोगोंने महाराज सम्प्रतिके पास आकर निवेदन किया कि :— हे देव! आपकी कार्य-योजना सफल हो चुकी है। राजन्! अनार्य देशोंमें भी आपके साधु अब सुख-पू विहार कर सकते हैं!"

इसके बाद महान् सम्प्रतिने आर्य सुहस्तिस्वामी पास आकर अनार्यदेशोंमें साधुओंके लिए विहार करने निवेदन किया। अतः गुरुवरने आरम्भमें परीक्षा क लिए ऐसे दृढ़ परिणामवाले साधुओंको वहाँ पर जो कि परिसहको सहन कर सकें। वे साधु देशमें भ्रमण करने लगे, तो लोगोंने उन्हें स सत्ताधारी-पूज्य समझकर पहले सिखलाई हुई अनुसार आहार-पानी आदि देना आरम्भ क उन्हें ठहरनेके लिए निर्दोष स्थान भी दिये। लोगोंके समान उन्हें भक्ति करते देखकर

कृपा नहीं होती है, तब मनुष्यकी ऐसी अधोगति होती है कि तीन-तीन दिनका भूखा होने पर भी उसे एक टुकड़ा तक नहीं मिलता! ओह! संसारकी कैसी विचित्रता है। ये सब कर्मके ही चक्कर हैं, गरीब, अनाथ लूले-लँगड़े, अन्धे, अपंग, मनुष्योंकी क्या स्थिति होती होगी? उनका निर्वाह कैसे होता होगा? अरे, जब रोटीके एक टुकड़ेके लिए मुझे इतना दुःख होता था; तब गरीबोंको वह दुःख क्यों नहीं होता होगा? वे बेचारे भूखे ही सोजाते होंगे। दिनभर भूखों मरते होंगे। अतएव मुझे अब उन्हींकी सुध लेनी चाहिए। क्योंकि राजा तो गरीब, अनाथ और रङ्क मनुष्योंका रक्षक होता है। प्रजाके पिता रूप जिस राजाकी प्रजा दुःखी होती है, वह राजा ही नहीं कहा जा सकता। यदि वह दुःखी प्रजाका दुःख दूर न कर सके तो इसकेलिए उसके सिरपर जवाबदारी बढ़ जाती है। अतएव मुझे भी ऐसे दीन, अनाथ मनुष्योंके लिए अवश्य ही कुछ कर जाना चाहिए।" इस प्रकार एकदिन महान् सम्प्रतिके मनमें विचार स्फुरित हुए। अपने पूर्वजन्मकी दयनीय दशाका स्मरण होते ही उसके सुकोमल हृदयमें दयाका प्रवाह जोरोंसे बहने लगा।

उस दयाके परिणाम स्वरूप उसने नगरके चारों

तथा काम करने वाले मनुष्योंकी कार्य पद्धति एवं प्रामाणिकता देखकर परम सन्तोष हुआ ; किन्तु इसके बाद उनके मनमें एक विचार उत्पन्न हुआ और उन्होंने रसोइदारोंसे पूछा :—"यहाँ पर बचे हुए अन्नका तुम क्या करते हो ?"

महाराजका यह प्रश्न सुनकर रसोइयोंने कहा :— "देव ! उस बचे हुए अन्नको हम सब अपने-अपने भागके अनुसार बाँट लेते हैं।"

"तो अब आजसे तुम्हें वह परस्पर न बाँटकर मेरे कहे अनुसार प्रबन्ध करना होगा !"

महाराजकी वह नवीन बात सुननेके लिए रसोइये वहाँ एकत्रित हुए और उनका आदेश जाननेके लिए आतुर हो उठे।

"वह भोजन लोगोंके लिए तैयार किया जाता है ; अतएव वह निर्दोष शुद्ध भोजन भिक्षा लेनेके लिए आनेवाले साधुओंको बहराना चाहिए।"

"किन्तु देव ! वह भोजन तो हम अपने मेहनतानेके बदलेमें लेते हैं !" एकने कहा।

"तुम्हारे परिश्रमके लिए मैं तुम्हें अलग वेतन दूँगा इससे तुम्हारी जीविकामें बाधा नहीं पड़ेगी ; क्योंकि धनवान् पुरुष कहीं भी पराभव नहीं पाता। अत

द्वारपर भोजन-शालाएँ खुलवाईं और दीन-दुःखी लोग उस भोजन-शालासे लाभ उठाने लगे। वहाँ अपने परायेका कोई किसी प्रकारका भेद-भाव नहीं था। अनेक गरीब, अनाथ, अपङ्ग मनुष्योंको वहाँ भोजन दिया जाता था, और उस भोजनमेंसे जो शेष रहता उसे रसोइये ले जाते थे।

इसके लिए महाराजने बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था, वे स्वयं भी जाकर देख-रेख करते रहते थे। जिससे कि काम करनेवाले 'मेरे तेरे' की भावना रखकर गरीबोंको न सता सकें। महान् सम्प्रतिके नामका ही ऐसा प्रभाव था कि मनुष्य प्रायः अनीति पूर्वक व्यवहार करनेका साहस ही नहीं कर सकते थे। इसी प्रकार लोग भी यही समझते थे कि यह परमार्थ अथवा लोकोपकारका कार्य है। अतएव यदि इसमें स्वार्थ दृष्टि रखकर हम किसी प्रकारका प्रपञ्च करें या कोई भेदभाव रखेंगे तो पापके भागी बनेंगे। इसी तरह महाराजके विशेष रूपसे अपराधी भी बनेंगे। अतएव इन सब बातोंको भली-भाँति समझ कर वे लोग यथा सम्भव न्याय-नीतीसे ही काम करते थे।

एकदिन महान् सम्प्रति भोजन-शालाओंकी देख रेख करने गये; तो वहाँ उन्हें उत्तम व्यवस्था देख

तथा काम करने वाले मनुष्योंकी कार्य पद्धति एवं प्रामाणिकता देखकर परम सन्तोप हुआ ; किन्तु इसके बाद उनके मनमें एक विचार उत्पन्न हुआ और उन्होंने रसोइदारोंसे पूछा :-"यहाँ पर बचे हुए अन्नका तुम क्या करते हो ?"

महाराजका यह प्रश्न सुनकर रसोइयोंने कहा :— "देव ! उस बचे हुए अन्नको हम सब अपने-अपने भागके अनुसार बाँट लेते हैं।"

"तो अब आजसे तुम्हें वह परस्पर न बाँटकर मेरे कहे अनुसार प्रबन्ध करना होगा !"

महाराजकी वह नवीन बात सुननेके लिए रसोइये वहाँ एकत्रित हुए और उनका आदेश जाननेके लिए आतुर हो उठे।

"वह भोजन लोगोंके लिए तैयार किया जाता है ; अतएव वह निर्दोष शुद्ध भोजन भिक्षा लेनेके लिए आनेवाले साधुओंको बहराना चाहिए।"

"किन्तु देव ! वह भोजन तो हम अपने मेहनतानेके बदलेमें लेते हैं !" एकने कहा।

"तुम्हारे परिश्रमके लिए मैं तुम्हें अलग वेतन दूँगा इससे तुम्हारी जीविकामें बाधा नहीं पड़ेगी ; क्योंकि धनवान् पुरुष कहीं भी पराभव नहीं पाता। अत

अबसे तुम्हें वह भोजन साधुओंको वहराने और उनकी भक्ति करते रहना चाहिए।"

महाराज, इस प्रकार आज्ञा देकर चले गये। तबसे शेष अन्न-भोजनादि वे साधुओंको वहराने लगे और अपने लिए ही तैयार किया हुआ न होनेसे शुद्ध समझ कर साधु भी उसे ग्रहण करने लगे।

इस प्रकार बचे हुए भोजनसे साधुओंको प्रतिलाभ करते देखकर महाराज प्रसन्न हुए। अब उनके मनमें नया विचार उठा। उन्होंने नगरमें घी, दूध, दही, मिठाई, वस्त्र अन्य सामग्री बेचने वालोंको आज्ञा दी कि "तुम्हें अपने यहाँकी उत्तमोत्तम सामग्रीसे साधुओंकी सेवा करना चाहिए! और उनका जो मूल्य हो वह राजकोषसे लेजाना चाहिए। इसमें जराभी सङ्कोच करनेकी आवश्यकता नहीं।"

यह सुनकर व्यापारीलोग बहुतही प्रसन्न हुए; क्योंकि इस निमित्तसे उनकी दुकानोंसे उत्तमोत्तम वस्तुओंकी बिक्री हो सकती थी। व्यापारियोंके लिए इससे अधिक प्रसन्नताकी बात और क्या हो सकती थी? महाराजकी आज्ञा उन्होंने मान्य की और प्रतिदिन व्यापारीलोग अपने यहाँका उत्तमोत्तम वस्तुएँ साधुओंको प्रदान करने लगे। इसप्रकार जो-जो वस्तु वे साधुओंको भेट करते उनका

उचित मूल्य तत्काल ही राज-भण्डारमें से राजाकी आज्ञाके अनुसार चुका दिया जाता था। इसप्रकार अपनी सम्पूर्ण शक्तिके अनुसार जैनधर्ममें दृढ़ श्रद्धावाले महान् सम्प्रति गुरु और धर्मकी भक्ति करने लगे।

राजा जिसका मूल्य देता है ; ऐसी वस्तुएँ लोगोंके द्वारा ग्रहण करनेवाले अपने शिष्योंको दोष लगता है ; इस बातको आर्य सुहस्तिस्वामी भली-भाँति जानते थे ; किन्तु शिष्योंके मोहके कारण यह सब सहन करते थे। उनका यह शिथिल आचार आर्यमहागिरि स्वामीको विदित हुआ ; किन्तु वे तो एकाकी विहारी थे। अपने शरीरके प्रति भी निस्पृह थे। उन्होंने विचार किया कि "अरे रे! आर्यसुहस्तिजी ज्ञाता होते हुए भी यह सब दोषयुक्त कार्य क्यों करवा रहे हैं? यह तो ठीक नहीं हो रहा है!"

एकदिन आर्य महागिरिने उनके पास आकर क "आर्य! तुम्हारे शिष्य लोगोंके पाससे जो वस्‍ भिक्षामें लाते हैं ; उनका मूल्य तो राजाकी ओरसे ि जाता है ; किन्तु राजपिण्ड हमें नहीं कलपता। बातको जानते हुए भी आप शिष्योंको क्यों नहीं करते?"

"हे भगवन्! लोग तो पूजित को ही

हमें यदि राज्य ही पूज्य मानकर सम्मान पूर्वक अर्पण करता है; तो इसमें क्या दोष है?" ये वचन सुनकर आर्य महागिरि क्रोधके मारे मौन हो गये, किन्तु थोड़ी ही देरमें बोले :—"इसमें क्या दोष है? पाप शान्त होवे! आजसे हमारा आपका व्यवहार भिन्न है; क्योंकि समाचारीमें समान साधुओंके साथ रहना ही युक्त है; किन्तु तुम्हारा आचरण इसके विरुद्ध होनेके कारण तुम सङ्घाडा-समुदायसे बाहर-अलग होगये हो।"

क्योंकि एक तरह ये आर्य सुहस्तिस्वामीके गुरु थे। अर्थात् इन्हें दीक्षा देनेवाले आर्य महागिरि ही थे। फिर भी दोनों गुरु-भाईके समान स्नेह-पूर्वक रहते थे। अतः आर्य महागिरिकी उपर्युक्त वाणी सुन कर आर्य सुहस्तिस्वामी तीर्थङ्कर-समान आज्ञा लोपके भयसे काँपने लगे। बालकके समान अथवा लताकी तरह थर-थर काँपते हुए गुरु-भक्त आर्य सुहस्तिने आर्य महागिरिके चरणोंमें वन्दना करके क्षमा माँगते हुए कहा :—"हे भगवन्! मैं अपराधी हूँ! मेरा अपराध क्षमा करें! मैं इसके लिए मिथ्या-दुष्कृत् देता हूँ। मेरा यह पाप शान्त हो! निष्फल हो जाय! अब फिर कभी इस प्रकार न होने पावे!" सुहस्तिस्वामीको इस प्रकार पश्चाताप करते देखकर आर्य महागिरि बोले :—"इसमें

तुम्हारा क्या दोष है ? भवितव्यता ही इस प्रकारकी है। पूर्वकालमें महावीरस्वामी भगवन्तने कहा था कि :— स्थूलिभद्रमुनिके पश्चात् मेरे शिष्योंकी समाचारी अति शिथिल होती जायगी। आज स्थूलिभद्रके पश्चात् हम तीर्थ प्रवर्तक हुए और भगवानका वचन तुमने सत्य कर वताया।"

इसके बाद आर्यमहागिरि स्वामीने फिर सुहस्ति-स्वामीको सङ्घाड़ा-समुदायमें लिया और राजाको भी उपदेश दिया। "हे राजन् ! उत्तम साधुओंको राजपिण्ड लेना नहीं कलपता ; क्योंकि भविष्यकालमें सभी राजा तुम्हारी तरह उदार थोड़े ही होंगे ? अतएव अनेक दोषोंकी संभावना जानकर श्री भगवन् महावीर स्वामीने राजपिण्डका निषेध किया है। इसीलिए विशेष प्रकारसे साधुओंके लिए वह वर्जनीय है। पूर्वकालमें भी ऋषभदेव स्वामीने स्वयं इन्द्रादिकको साक्षी बनाकर भरत महा-राजके राजपिण्डको साधुओंके लिए निषेध किया था वीर प्रभुने वारह व्रतका पोषण करनेके लिए महाराजको भी श्रावक और श्राविकाओंको वैसे पात्र वतलाया था। अतः हे राजन् ! तुम भी मार्गसे चलो !"

महान् सम्प्रतिको इसप्रकार प्र

महागिरिस्वामी महावीरस्वामीको वन्दन करके अ॰ ॰
चले गये।

अपनी आयुष्य अल्प रही जानकर ॰ म॰ ।
'गजेन्द्र पद' नामके तीर्थमें आये और वहाँ अनशन क॰
वीर प्रभुके बाद २४९ वर्ष बीतनेपर देवलक्ष्मी भोगने
लिए स्वर्ग सिधार गये।

चौतीसवाँ परिच्छेद

गजेन्द्रपद तीर्थ

—:०:—

गजेन्द्रपद तीर्थ श्रीमान् भगवान् महावीर ॰
समयमें प्रकट हुआ था। एकदिन महावीर ॰
विहार करते हुए दशार्ण देशमें दशार्णपुरके ॰
दशार्ण पर्वतपर परिवार सहित पधारे। वहाँके ॰
दशार्णभद्रको पता लगने पर वह भगवानकी ॰
करनेके लिए जानेकी तैयारी करने लगा। ॰
विचार किया कि मैं भगवानकी इस प्रकार ॰
करूँगा, जैसा कि आज तक किसीने उन्हें वन्दन

किया होगा। अतएव उसने सारे शहरको सजानेकी आज्ञा दी। राजाकी आज्ञासे सभी अधिकारियोंने ध्वजा, तोरण, पुष्प, चन्दनमाला आदिसे नगरको सुशोभित किया। इसी प्रकार अगर-तगर, कपूर आदि सुगन्धित द्रव्योंसे मार्ग और आकाश व्याप्त हो गये! राजमार्गमें पुष्प बिछाये गये। इस प्रकार नगरको सुशोभित करनेमें राजाने किसी बातकी कमी नहीं रखी।

इसके बाद राजा दशार्णभद्र अपने सर्वश्रेष्ठ पट्ट हस्तिपर आरूढ़ होकर दर्शनार्थ चला। उसके सा अठारह हजार हाथी, चौरासी लाख घोड़े, इक्क हजार रथ और इक्यानवे करोड़ पैदल, सोलह ह ध्वजाएँ, पाँच मेघाडम्बर छत्र, पालकी पर विर पाँच सौ रानियाँ तथा बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंसे सु सामन्तगण एवं मन्त्री आदि चले। इसी प्रकार न जन भी अपनी-अपनी ऋद्धिके अनुसार तैयार आये। स्थान-स्थानपर सङ्गीत-नृत्यादि हो याचकोंको सोने, चान्दी और मोतियोंका समय-समयपर दिया जा रहा था। मार्गपर दिये गये थे। इस प्रकारके सुन्दर बने र आडम्बर पूर्वक चलते हुए वह राजा जगत् समझने लगा। जब वह प्रभुके सम

पहुँचा तो हाथीसे उतर कर पाँच अभिगमको सम्हालते हुए प्रभुकी प्रदक्षिणा करके योग्य स्थान पर बैठ गया। उस समय उसके मनमें यह गर्व उत्पन्न हुआ कि :—आज मैं जितनी समृद्धिके साथ वन्दन करने आया हूं; उतनी समृद्धिसे कभी इन्द्र या चक्रवर्ती राजा भी वन्दना करनेके लिए नहीं आये होंगे।"

राजाके ऐसे गर्वपूर्ण वचन सौधर्म देवलोकके अधिपति इन्द्रने अवधि ज्ञानसे जान लिये। उसने विचार किया कि :—अहो! यह राजा तो श्रेष्ठ है; किन्तु गर्व करता है, यह उचित नहीं; क्योंकि गर्वपूर्वक किया हुआ पुण्य नष्ट हो जाता है। समस्त विश्वके पूज्य ऐसे वीर प्रभुको वन्दन करनेके लिए तो इसका भक्ति-राग अनमोल है; किन्तु यह अहङ्कार रूपी महा दोष इसमें विद्यमान है। अतएव ऐसा कोई उपाय करना चाहिए जिससे यह गर्वका परित्याग कर सके।"

इस प्रकार विचार कर शक्रेन्द्रने दशार्णभद्रका गर्व दूर करनेके लिए आकाशमें चौंसठ हजार हाथी प्रदर्शित-विकुर्वित किये! और एक-एक हाथीके पाँच सौ बारह मुख बनाकर एक-एकके मुखमें आठ-आठ दन्तशूल दिखलाये। इसी प्रकार प्रत्येक दन्तशूलकी आठ-आठ शाखाओंपर आठ-आठ कमल प्रकट किये। प्रत्येक

कमलमें एक-एक कर्णिका दिखाई देती थी और प्रत्येक कर्णिकापर शक्रेन्द्रने अपने बैठने योग्य अनमोल सिंहासन रखवाये थे। उनपर इन्द्र अपनी आठ पटरानियों सहित बैठा। प्रत्येक-कमलकी एक-एक लाख पङ्खडियाँ थीं और उन पङ्खड़ीपर बत्तीस-बत्तीस देवी-देवता बत्तीस प्रकारके नाटक कर रहे थे। यह सब इन्द्रने अपनी शक्तिसे निर्माण किया था। उन बत्तीसों नाटकोंको देखता हुआ और आकाशमें होते हुए, दुन्दुभी नादके द्वारा समस्त विश्वका ध्यान आकर्षित करता हुआ इन्द्र नीचे उतरने लगा। नीचे उतर कर प्रभुको वन्दन करते हुए योग्य आसन पर बैठ गया। इन्द्रकी इस प्रकारकी अपूर्व शक्ति देखकर सब चकित हो गये।

दशार्णभद्र राजा तो इन्द्रकी ऐसी अपूर्व समृद्धि देखकर चित्र लिखित मूर्तिके समान स्तम्भित रह गया। इन्द्रकी उस समृद्धि और सामर्थ्यको देखकर उसका गर्व गलित हो गया।

जिस समय इन्द्रका हाथीपरसे नीचे उतरनेका विचार हुआ, कि तत्काल अपने स्वामीको सुखपूर्वक नीचे उतारनेके लिए हाथीने अपना सम्पूर्ण भार आगेके दोनों पाँवोंपर ले लिया और उस भारके कारण उसके दोनों पाँव पृथ्वीमें धँस गये। इसके बाद इन्द्रने नीचे

उतर कर प्रभुको वन्दन किया। इस प्रकार जहाँ हाथीके पाँव पृथ्वीमें धँस गये थे, उस स्थानका नाम 'गजपद' हो गया और वह लोगोंमें 'गजेन्द्रपद' के रूपमें पूजा जाने लगा। उसी गजेन्द्रपद तीर्थपर आकर महागिरि अनशन-पूर्वक स्वर्गको सिधारे।

इस प्रकार दशार्णभद्र राजाका गर्व गलित हो जाने पर उसने विचार किया कि :—"अहो, धन्य है इस इन्द्रकी भक्तिको! इसके सन्मुख मेरी समृद्धि तृणके समान है। धिक्कार है मुझे कि जो मैंने व्यर्थ ही गर्व किया। किसीने भी जिनेश्वरकी पूर्ण प्रकारसे पूजा नहीं की। इन्द्रने मुझे अपनी समृद्धिसे पराजित कर दिया। अतः यदि अब मैं दीक्षा नहीं लूँगा तो पराजित कहलाऊँगा। अतएव तुरन्त व्रत ग्रहण करूँ, जिससे कि मैं इन्द्रसे भी अधिक श्रेष्ठ सिद्ध हो सकूँ।"

इस प्रकार विचार कर महान् बुद्धिमान् दशार्णभद्र राजाने गज, अश्व और स्त्री रत्नादिसे समृद्ध राज्यका तत्काल त्याग करके पञ्चमुष्टि लोचकर प्रभुसे संयम ग्रहण किया। इन्द्रने भी समझ लिया कि राजा जीत गया, और यह विचार करके कि मैं दीक्षा लेनेमें असमर्थ हूँ, उसने भक्ति-पूर्वक दशार्णभद्र मुनिको वन्दन करके कहा :—"हे महानुभाव! आपको धन्य है! आपने

संयम ग्रहण कर मुझे पराजित कर दिया। उस संयम पर विजय पानेके लिए मैं असमर्थ हूँ। दूसरोंसे पूर्ण नहीं की जा सके, इस प्रकारकी अपनी प्रतिज्ञाको आपने पूर्ण किया है।" इस प्रकार वारम्बार उसकी स्तुति करता हुआ वीर प्रभुको वन्दन करके इन्द्र अपने स्थानपर चला गया।

दशार्णभद्र राजा भी दीक्षा लेनेके पश्चात् घोर तप करके दुष्कर्मका क्षय करते हुए केवल पद पाकर मोक्षको प्राप्त हुआ।

इन्द्रको पराजित करनेके लिए गर्व पूर्वक ली हुई दीक्षा भी, दशार्ण मुनिके कर्मोंका क्षय करवा कर, मोक्ष दिलाने वाली सिद्ध हुई। जिस प्रकार कि रङ्क-भिखारीको भोजनके लिए, एकदिन मात्रकी दीक्षा भी, उसको सम्प्रति रूपमें, तीन खण्डोंकी समृद्धि दिलाने वाली प्रमाणित हुई।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

कुछ नयी-पुरानी

—:o:—

एकदिन सम्प्रति राजाने दिवालीका स्वरूप पूछा कि :—"हे भगवन् ! दिवालीके दिन जो दीपक जलाये जाते हैं, उसका उद्देश्य क्या है ?"

इसपर आर्य सुहस्तिस्वामीने दिवालीका स्वरूप वर्णन करते हुए कहा :—"हे राजन् ! महावीर स्वामी भगवान् आषाढ़ शुक्ल छठके दिन देवलोकसे च्यवित होनेके कारण वह 'च्यवन-कल्याणक' कहलाया। इसके बाद चैत्र शुक्ला त्रयोदशीकी मध्यरात्रिमें प्रभुका जन्म होनेके कारण वह "जन्म-कल्याणक" कहलाया। तत्पश्चात् तीस वर्ष पर्यन्त गृहवास करके मार्ग शीर्ष शुक्ल छठके दिन प्रभुने चारित्र लिया ; वह 'दीक्षा-कल्याणक' कहलाया। दुःसह तप करते हुए बारह वर्ष पश्चात् वैशाख शुक्ल दशमीके दिन उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ, वह "केवल-कल्याणक" हुआ। कुछ कम तीसवर्ष 'केवल-पर्याय' भोगकर वीर परमात्मा अपनी आयुको अल्प जानकर अपापा नगरीमें आये। वहाँ पर हस्तिपाल राजाकी राज-सभामें अन्तिम चातुर्मास व्यतीत किया।

प्रभुके लिए आयुष्य कर्म और तीर्थंकर नाम कर्मके पुद्गल अधिक होनेसे उन्होंने अन्तिम सोलह प्रहर तक अखण्ड 'देशना' देकर वह कर्म भोग लिया। उसमें भव्य जनोंके संशय दूर किये। भावी-भावका स्वरूप कहा। उसी अवधिमें गौतम स्वामीको निकटके ही ग्राममें रहने वाले देवशर्मा नामक ब्राह्मणको प्रतिबोध करनेके लिए भेजा।

कार्तिक कृष्णपक्ष अमावस्याके दिन जब स्वाति नक्षत्रका योग आया, तब छट्ठ तपके धारण करने वाले महावीर भगवान् पिछली चार घड़ी रात शेष रहनेके समय बैठे हुए थे। आसन कम्पायमान होनेसे शक्रेन्द्रको प्रभुका निर्वाणकाल निकट प्रतीत हुआ और उसने तत्काल वहाँ आकर प्रभुसे निवेदन किया कि:—
"भगवन्! आप एक क्षणमात्रके लिए आयुष्यकी वृद्धि कीजिये; क्योंकि आपके जन्म समयका संक्रमित 'भस्म गृह' अभी बैठता है। जो कि दो हजार वर्षों तक आपके शासनको परेशान करेगा। उससे तीर्थकी उन्नति नहीं होगी। अतएव आपकी दृष्टिके सामने ही वह उदय हो जाय तो आपकी दृष्टिके प्रभावसे वह उदय निष्फल हो जायगा।"

"हे शक्रेन्द्र! आयुष्य कर्मके पुद्गल पूर्वभवके साथ विशेष रूपसे बंधे हुए होते हैं। उसे कमी-बेशी करनेकी-

शक्ति किसीमें भी नहीं हो सकती और जो कुछ भी आवीभाव घटित होनेवाला है, वह अवश्य होगा। उसे टाल सकनेके लिए भी कोई समर्थ नहीं हो सकता।"

इसप्रकार कहनेके बाद भगवान् मन, वचन और कायाके योगका निरोध कर मौन होगये और शैलेशीकरण करके सिद्धिपदको प्राप्त हुए। उस समय जीवोंकी रक्षा न हो सके, ऐसे 'कुँथुए' नामक जीवोंकी उत्पत्ति होनेके कारण अब भविष्यमें चारित्र पालन करना कठिन होगा, यह समझ कर इन उत्तम साधुओंने जीव रक्षाके लिए अनशन ग्रहण कर लिया।

उस समय किसी कार्यके निमित्त एकत्र हुए काशी और कौशल देशके अठारह राजा चेड़ा महाराजके सामन्त थे। उनमें नव 'मलकी' जातिके थे और नव 'लेच्छकी' जातिके थे। उन्होंने अमावसके दिन पौषध किया था और पौषधमें ही प्रभुकी वाणी सुन रहे थे।

उन वीरभक्त राजाओंने जिनेश्वरके निर्वाण-कल्याणकी पिछली रातको भाव उद्योतका नाश हो जानेसे अपनेको अन्धकार सहनेमें असमर्थ जानकर द्रव्य-दीपक जलाये थे। इसी प्रकार उस समय भगवन्तका निर्वाण महोत्सव मनानेके लिए आनेवाले देवी-देवताओंके प्रकाशसे भी रात्रि तेजोमय दिखाई देने लगी। उस

समय अन्धकारको नष्ट करनेवाले प्रकाश युक्त रत्नोंको हाथमें लेकर देवगण बोलने लगे :—"श्रीजिनराजके प्रति हमारी यह आरती स्वीकृत हो।" इस उद्देश्यसे लोगोंमें सर्वत्र ही 'मेराइया' (मे-आरात्रिक, मेरी आरती) शब्द प्रचलित होगया। लोग भी हाथोंमें दीपक लेकर :— "यह मेरी आरती" बोलते हुए वहाँ आये। इस प्रकार सब स्थानोंमें दीपक लगने-लगे। तभीसे प्रति वर्ष इस प्रकार उत्सव मनाया जानेके कारण दीवालीका पर्व भूमण्डलपर प्रसिद्ध होगया। इसी प्रकार जिन-शासनमें कदाग्रह वाले मिथ्या दृष्टि देवता और भस्मग्रह जो दुष्टता करते हैं; उसे दूर करनेके लिए भी ये 'मेराइया' हैं। इसका आशय यह है कि "श्रीवीर प्रभुके सङ्घकी आर्ति पीड़ा दूर हो जाय!" इस प्रकार संसारमें दीवाली पर्व प्रकट हुआ।

प्रातःकालमें गौतम स्वामी देवशर्माको उपदेश देकर लौटे तो मार्गमें ही उन्हें महावीर स्वामीका निर्वाण हुआ सुनकर खेद हुआ। इसके पश्चात् अनित्यकी भावना पर चढ़ते हुए, क्षपणक श्रेणीपर आरूढ़ हो, उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रने भी वीर प्रभुका निर्वाण महोत्सव करके प्रातःकाल गौतम स्वामीका "केवल महोत्सव" किया।

भगवन्तके निर्वाणसे उनके ज्येष्ठ-बन्धु नन्दिवर्धनको भी अत्यन्त खेद हुआ और उसी खेदमें उन्होंने अन्न-जल त्यागकर प्रतिपदाका दिन भाईके शौकमें निर्गमन किया। इसलिए द्वितीयाके दिन उनकी बहिन सुदर्शनाने भाईको अपने घर बुलाकर उनका शौक शमन-दूर करके भोजन कराया; तभीसे 'भाई दूज' जगतमें प्रसिद्ध होगई! आज भी उस दिन बहन भाईको अपने घर बुलाकर भोजन कराती है।" इस प्रकार दिवालीका माहात्म्य सुनाकर सुहस्तिस्वामी मौन होगये।

सम्प्रति राजाने पुनः प्रश्न किया कि :—"गुरुदेव! भगवान महावीरका शासन कब तक चलेगा, और दूसरे तीर्थंकर इस क्षेत्रमें फिर कब आवेंगे?"

"राजन्! भस्मग्रहके दो हजार वर्ष और पाँचसौ-वक्रीके मिलकर पच्चीस सौवर्ष तो यह शासन डावाँडोल ही रहेगा; किन्तु उसके बाद जैनधर्मका उदय होगा, वह इस पाँचवें आरेके अन्ततक अर्थात् इकीस हजार वर्ष तक अस्खलित रूपमें चलता रहेगा। इस समय युग प्रधानोंके तेईस उदयमें पहला उदय प्रवर्तित हो रहा है। इस उदयके आरम्भमें प्रथम सुधर्मास्वामी हुए; और अन्तिम पुष्पमित्र होंगे। इस उदयमें वीस युग प्रधान होंगे। श्रीमहावीर निर्वाणसे ६१७ वर्ष तकमें

प्रथम उदय समाप्त होगा। उसके बाद वज्रसेन सूरिसे दूसरा उदय आरम्भ होगा। अन्तमें अहन्मित्रके युग-प्रधान होने पर दूसरा उदय समाप्त होगा। दूसरे उदयमें २३ युगप्रधान होनेकी बात शास्त्रोंमें कही गई है। यह दूसरा उदय १३८० वर्षतक चलेगा।

महावीरस्वामीके मोक्ष गमनके पश्चात् गौतमस्वामी केवलज्ञान प्राप्त हुए और बारह वर्षों तक केवली रूपमें विचरणकर मोक्षको प्राप्त हुए। फिर सुधर्मास्वामीको केवलज्ञान प्राप्त हुआ। सुधर्मास्वामीसे प्रथम युग-प्रधानका उदय आरम्भ हुआ। इस पहले उदयमें भी सुधर्मास्वामीसे पुष्पमित्र पर्यन्त २० युगप्रधान होंगे। यह उदयकाल ६१७ वर्षो तक चलेगा। उसकी सारणी इस प्रकार समझनी चाहिए।

क्रम	युगप्रधान	गृहवास	दीक्षापर्याय	युगप्रधानपद	सर्वायु--मास--दिवस
१	सुधर्मास्वामी	५०	४२	८	१००—३—३
२	जम्बूस्वामी	१६	२०	४४	८०—५—५
३	प्रभव	३०	४४	११	८५—२—२
४	शय्यम्भव	२८	११	२३	६२—३—३
५	यशोभद्र	२२	१४	५०	८६—४—४
६	सम्भूति	४२	४०	८	९०—५—५
७	भद्रबाहु	४५	१७	१४	७६—७—७
८	स्थूलिभद्र	३०	२४	४५	९९—५—५

९	महागिरि	३०	४०	३०	१००—५—५
१०	सुहस्ति	३०	२४	४६	१००—६—६
११	गुणसुन्दर	२४	३२	४४	१००—२—२
१२	कालिकाचार्य	२०	३५	४१	९६—१—१
१३	स्कन्दिल	२२	४८	३६	१०६—५—५
१४	रेवतीमित्र	१४	४८	३६	९८—५—५
१५	धर्मसूरि	१८	४०	४४	१०२—५—५
१६	भद्रगुप्त	२१	४५	३९	१०५—४—४
१७	श्रीगुप्त	३५	५०	१५	१००—७—७
१८	वज्रस्वामी	८	४४	३६	८८—७—७
१९	आर्यरक्षित	२२	४०	१३	७५—७—७
२०	पुष्पमित्र	१७	३०	१३	६०—७—७

वज्रसेनस्वामीसे युगप्रधानोंके तेईस उदयोंमें दूसरा उदय होगा। उस दूसरे उदयमें २३ युग प्रधान होंगे। अन्तिम २३वें अर्हन्मित्र युगप्रधान होंगे। दूसरा उदय लगभग १३८० वर्षतक चलेगा; उसकी गणना इस प्रकार समझनी चाहिए :—

क्रम	युगप्रधान	गृहवास	दीक्षापर्याय	युगप्रधानपद	सर्वायु-मास-दिन
१	वज्रसेन	९	११६	३	१२८—३—३
२	नागहस्ति	१९	२८	६९	११६—५—५
३	रेवतीमित्र	२०	३०	५९	१०९—२—२
४	सिंहसूरि	१८	२०	७८	११६—३—३
५	नागार्जुन	१४	१९	७८	१११—५—५

६ भूतदिन्न	१८	२२	७६	११६—४—४
७ कालिकाचार्य	१२	६०	११	८३—७—७
८ सत्यमित्र	१०	३०	७	४७—५—५
९ हारिल	२७	३१	५४	११२—५—५
१० जिनप्रभगणि	१४	३०	६०	१०४—६—६
११ उमास्वाति	२०	१५	७५	११०—२—२
१२ पुष्पमित्र	८	३०	६०	९८—०—०
१३ सम्भूति	१०	१६	४६	७८—२—२
१४ सम्भूतिगुप्त	१०	३०	६०	१००—५—५
१५ धर्मरक्षित	१५	२०	४०	७५—४—४
१६ ज्येष्ठाङ्गगणि	१२	१८	७१	१०१—३—३
१७ फल्गुमित्र	१४	१३	४६	७६—७—७
१८ धर्मघोष	८	१५	७८	१०१—७—७
१९ विनयमित्र	१०	१६	८६	११५—७—७
२० शीलमित्र	११	२०	७६	११०—७—७
२१ रेवन्तसूरि	६	१६	७८	१०३—०—०
२२ स्वप्नमित्र	१२	१८	७८	१०८—०—०
२३ अर्हन्मित्र	२०	१६	४५	८१—०—०

१३८० वर्षतक दूसरा उदय चलेगा। उसके बाद कालान्तरमें युगप्रधानका तीसरा उदय पाड़िवयसूरि (आद्यसूरि) से आरम्भ होगा। यह तीसरा उदय संवत् १९९० में होगा। इस उदयमें ९८ युगप्रधान होंगे। अन्तिम युगप्रधान वैशाख होंगे।

पाडिवयसूरि ९ वर्ष गृहस्थाश्रममें तथा ८२ वर्ष व्रतपर्याय और ९ वर्ष युगप्रधानके रूपमें कुल १०० वर्षकी आयु भोगकर देवलोकको जायेंगे। तीसरा उदय १५०० वर्ष पर्यन्त चलेगा।

चौथे उदयमें प्रथम हरिस्सहसूरि ८२ वर्षकी आयुष्य वाले होंगे। ९ वर्षकी आयुमें ही दीक्षा ग्रहणकर ६० वर्ष व्रतपर्याय और १३ वर्ष युगप्रधान रूपमें रहते हुए सम्पूण ८२ वर्षकी आयु पूर्णकर स्वर्गमें जाएँगे। चौथे उदयमें ७८ युग प्रधान होंगे। अन्तिम सत्कीर्ति नामके युगप्रधान १६ वर्ष गृहस्थाश्रममें, २२ वर्ष व्रतपर्यायमें और १८ वर्ष युगप्रधान रूपमें कुल ५६ वर्षकी आयुवाले होंगे। यह उदय १५४५ वर्ष परिमाणमें चलेगा।

पाँचवा उदय नंदिमित्र सूरिसे आरम्भ होगा। इस उदयमें ७५ युगप्रधान होंगे। अन्तिम युगप्रधान थावर-सुत नामके होंगे। यह उदय १९०० वर्ष तक रहेगा।

छठे उदयमें प्रथम सूरसेन सूरि और अन्तमें रहसुत युगप्रधान होंगे। यह उदय १९५० वर्ष पर्यन्त रहेगा।

सातवें उदयमें रविमित्रसूरि प्रथम युगप्रधान होंगे और अन्तिम जयमंगलसूरि होंगे। यह उदय १७७० वर्ष तक रहेगा।

आठवें उदयमें श्रीप्रभ युगप्रधान होंगे। वे १२ वर्षकी अवस्थामें दीक्षा ग्रहण करेंगे। ४२ वर्ष व्रत-पर्याय और ८ वर्ष युगप्रधान पद भोगेंगे। जगत् विख्यात् कलंकी इस आठवें उदयके आरम्भमें, अर्थात् श्रीप्रभ युगप्रधानके समयमें होंगे। अन्तिम सिद्धार्थ युग-प्रधानके पश्चात् यह उदय समाप्त होगा। आठवाँ उदय १०१० वर्ष पर्यन्त चलेगा और कलंकीके राज्यान्तमें श्रीप्रभ युगप्रधान होंगे।

छठे उदयमें ८९ युगप्रधान और सातवेंमें १०० युगप्रधान और आठवेंमें ८७ युगप्रधान होंगे। इस प्रकार २३ उदयमें २००४ युगप्रधान इस पाँचवें आरेमें होंगे।

सभी युगप्रधान एकावतारी होते हैं और वे जहाँ-जहाँ विचरते हैं, वहाँ चारों दिशाओंमें ढाई योजन क्षेत्रमें दुष्काल और हिंसकजीवोंका उपद्रव नहीं हो सकता। इसका विवरण इस प्रकार समझना चाहिए।

उदय	आदियुगप्रधान	अन्तिमयुगप्रधान	वर्षपरिमाण	युगप्रधानसंख्या
१	सुधर्मा	पुष्पमित्र	६१७	२०
२	वज्र	अर्हन्मित्र	१३८०	२३
३	पाडिवय	वैशाख	१५००	९८
४	हरिस्सह	सत्कीर्ति	१५४५	७८

५	नन्दिमित्र	थावरसुत	१६००	७५
६	सूरसेन	रहस्सुत	१६५०	८६
७	रविमित्र	जयमङ्गल	१७७०	१००
८	श्रीप्रभ	सिद्धार्थ	१०१०	८७
९	मणीरति	ईशान	८८०	६५
१०	यशोमित्र	रथमित्र	८५०	८७
११	धणसिंह	भरणीमित्र	८००	७६
१२	सत्यमित्र	दृढ़मित्र	४४५	७८
१३	धम्मिल	सङ्गतिमित्र	५५०	६४
१४	विजयानन्द	श्रीधरसुत	५६२	१०८
१५	सुमङ्गल	मागधसुत	६६५	१०३
१६	जयदेव	अमरसुत	७१०	१०७
१७	धर्मसिंह	रेवतीमित्र	६५५	१०४
१८	सुरदिन्न	कीर्तिमित्र	४६०	११५
१९	वैशाख	सिंहमित्र	३५६	१३३
२०	कौडिल्य	कूलकमित्र	४०८	१००
२१	मायुर	कल्याणमित्र	५७०	६५
२२	वणिपुरी	देवमित्र	५६०	६६
२३	श्रीदत्त	दुप्पसहसूरि	४४०	४०

अन्तिम दुप्पसहसूरिके पश्चात् पाँचवाँ आरा पूर्ण होने पर जैनधर्म नष्ट हो जायगा। उसके बाद राजधर्म नष्ट होगा और छठा आरा आरम्भ होगा। यह आरा २१००० वर्ष पर्यन्त पूर्ण होनेपर अवसर्पिणीके छह आरे समाप्त होकर उत्सर्पिणीका पहला आरा छठे आरेके-

समान बैठेगा। अवसर्पिणीका अन्तिम और उत्सर्पिणीका पहला आरा धर्म-कर्म और व्यवहार रहित समझना चाहिए। इस आरेके अन्तमें सातदिन तक भिन्न-भिन्न प्रकारकी वर्षा होनेपर पृथ्वीमें रसोत्पत्ति होगी और उससे धान्यादि उत्पन्न होने लगेंगे। मनुष्यका शरीर, आयुष्य भी धीरे-धीरे बढ़ेगा। वह इक्कीस हजार वर्षका आरा पूर्ण होनेपर दूसरा भी उतने ही परिमाणका आयेगा। इस दूसरे आरेकी शुरुआतमें मनुष्यकी उत्कृष्ट आयु २० वर्षकी होगी और शरीरकी लंबाई दो हाथकी होगी।

इस वर्तमान अवसर्पिणीके पांचवें आरेके अन्तमें भी उतना ही समझ लेना चाहिए।

उत्सर्पिणीके दूसरे आरेमें आयुष्य और शरीर परिमाण क्रमशः बढ़ता जायगा और वह क्रमशः दूसरे आरेके अन्तमें सात हाथका शरीर और १३० वर्षकी आयुष्य परिमाण तक बढ़ जायगा। दूसरे आरेके कुछ वर्ष शेष रहने पर जो जातिस्मरण ज्ञान पाकर पहले पुर-नगर आदिकी व्यवस्था करेगा, वह पहला कुलगर कहलायेगा। क्रमशः उसके वंशमें सात कुलगर होंगे।

दूसरा आरा पूर्ण होनेपर उत्सर्पिणीका तीसरा आरा आरम्भ होगा और उसके साढ़े तीन वर्ष बीतने

पर सातवें कुलगरके यहाँ, शतद्वारपुर नगरमें श्रेणिक महाराजका जीव प्रथम नरकके पहले पाथड़े-दलसे निकलकर पद्मनाभ नामसे तीर्थङ्कर होगा। वह महावीर स्वामीके समान आकृति, आयुष्य वाला होगा।

श्रीमहावीर स्वामी और पद्मनाभ तीर्थङ्करके बीच ८४००७ वर्ष और ५ मासका अन्तर समझना चाहिए। उसके बाद ढाईसौ वर्ष महावीर स्वामीके चाचा सुरदेव नामक दूसरे तीर्थङ्कर होंगे। इस प्रकार तीसरे आरेमें एकसे एक बढ़ती स्थितिके अनुसार तेईस जिनवर होंगे। नौ वासुदेव, नौ बलदेव, नौ प्रतिवासुदेव और ग्यारह चक्रवर्ती, तीसरे आरेमें पश्चानुपूर्वीसे होंगे। चौथे आरेमें चौवीसवें तीर्थङ्करका जन्म होगा। उनके समयमें बारहवें चक्रवर्ती होंगे। उनके परलोक गमनके पश्चात् कुछ समय तक जनतत्वके ज्ञाता यतिलोग भरत क्षेत्रको पावन करेंगे।

उसके बाद युगलिक धर्म समीप आ पहुँचनेसे सुख शीलिया जीव—सुखमें रहे हुए जीव चारित्र नहीं ले सकेंगे। इससे साधु धर्मका विच्छेद हो जायगा। सुखकी सामग्री अधिक प्राप्त होनेसे लोग सुखको ही भोगनेवाले होंगे और साधु धर्मका विच्छेद होनेसे उपदेशके अभावमें श्रावक धर्मका भी विच्छेद हो जायगा। सब कोई

सुखमें ही निमग्न रहेंगे और इससे तीर्थका भी विच्छेद हो जायगा। क्रमशः सब लोगोंके सुखी हो जानेसे स्वामी-सेवकका धर्म भी नष्ट हो जायगा। लोगोंके अनीति रहित हो जानेसे राजा प्रजाका व्यवहार भी नाश हो जायगा और सभीलोग समान ऋद्धिवाले हो जायेंगे। युगलिक-धर्म प्रकट होनेसे पहले अग्नि, ग्राम, नगर, व्यापार कृषि आदि कुछ भी नहीं होते किन्तु कल्पवृक्ष प्रकट होनेपर उनसे याचना करनेसे जो भी आवश्यकता हो वह युगलिकोंको प्राप्त हो सकता है। वे युगलिक भी दीर्घकाल पर्यन्त भोगमें मग्न होते हुए भी अतृप्त ही रहते हैं। उनके वज्रऋषभनाराच संघयण और समचतुरस्र संस्थान होते हैं। वे सुन्दर और कान्तिमान होते हैं। रोग, शोक, आधि, व्याधि और उपाधि, दुःख, खेद, दुर्ध्यान और अरति आदि कुछ भी कष्ट युगलिकोंको नहीं होते। वे तो जीवन निरोगी शरीरवाले, सुखी, इच्छानुसार भोग भोगनेव और पापरहित होनेसे मृत्युके बाद भी देवलोकमें जाते हैं। उस समय शाली, दाल, फल, आदि प्रकारके खाद्य पदार्थ स्वाभाविक रूपसे ही भो लिए युगलिकोंके उपयोगमें नहीं आते। पृथ्वी शक्करसे अनन्तगुनी मिठास होती है और ज

अमृतके समान मीठा हो जाता है। उस भूमिमें उगनेवाले कल्पवृक्षोंके फल, पत्ते आदि भी चक्रवर्तीके भोजनसे अधिक मिठे होते हैं और उन्हीं फल-फूल आहार करके घरकी आकृतिके समान उगेहुए उन कल्पवृक्षोंमें ही युगलिक निवास करके रहते हैं। वहाँ पर जूँ, खटमल, डाँस, मच्छर, मक्खी आदि शरीरको कष्ट देनेवाले क्षुद्रजीव भी उत्पन्न नहीं होते। हिंसक जीव सिंह व्याघ्र आदि भी अल्प कषायवाले होनेसे उस समय हिंसा नहीं करते। मनुष्यके समान तिर्यञ्चजीव भी जोड़ीसे-जोड़ले उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार आयुष्य, बल, शरीर वृद्धि पाते हुए पाँचवे आरेमें जाते हैं और क्रमशः छठे आरेमें पहुँच जाते हैं। उसके पूर्ण होनेपर फिर अवसर्पिणीका पहला आरा आता है। उत्सर्पिणीका छठा और अवसर्पिणीका पहला आरा समान होता है। अन्तर केवल इतना ही होता है कि उत्सर्पिणीमें काल क्रमशः चढ़ता हुआ होता है; और अवसर्पिणीमें क्रमशः वह उतरता चला जाता है।

अवसर्पिणीका पहला दूसरा और तीसरा आरा युगलिक धर्मवाला होता है। अर्थात् उत्सर्पिणीका चौथा, पाँचवा और छठा आरा तथा अवसर्पिणीका

पहला, दूसरा और तीसरा आरा ये छहों आरे युग-लिक धर्मवाले होनेसे लगभग कुछ ही कम अठारह कोड़ा-कोड़ी सागरोपम पर्यन्त इस भरतक्षेत्रमें युगलिक धर्म होनेके कारण उस समय धर्मका विच्छेद होता है। इसी प्रकार कृषि, वाणिज्यादिकसे भी रहित उस समयको समझना चाहिए। इसी प्रकार पाँच भरत और पाँच ऐरवतकी स्थिति समझनी चाहिए।

आगामी उत्सर्पिणीके तीसरे आरेमें होनेवाले तीर्थङ्करोंके नाम भगवान महावीरने शास्त्रोंमें बतलाये हैं; उसके अनुसार समझना चाहिए।

इस पाँचवें आरेमें भस्मग्रहका बल अधिक होनेसे जैन-शासन बहुत डोलायमान होगा। अनेक शत्रु उस-पर कटाक्ष करेंगे और उसे असत्य ठहरानेका भी प्रयत्न करेंगे। साथही अपने मिथ्या धर्मको भी सच्चा सिद्ध कर स्थापित करेंगे। फिर भी काल दोषके कारण लोगोंके मन उस असत्य धर्ममें भी सत्य धर्मका अनुभव करेंगे। अल्प सत्त्व-बलवाले लोग उत्पन्न होनेसे तथा बहुल कम होनेके कारण तप-करना या कष्टसाध्य धर्म साध करना उन्हें अच्छा नहीं लगेगा। वे जिह्वा-लो लोग खाने-पीनेमें ही आसक्त रहेंगे। इस प्रकार पंचे योंके विषयोंमें लगेहुए लोगोंको यह अपूर्व त्या

रुचिकर नहीं होगा ; अतएव अनेक प्रकारसे वे इसे डिगानेका प्रयत्न करेंगे।

यही नहीं, वरन् जैन-शासनमें भी अनेक गच्छ, प्रकट होंगे और उन प्रत्येक गच्छके आचार्य भी अपने-अपने गच्छका महत्व स्थापित करनेके लिए अपने मतको सत्य बताकर दूसरेका उत्थापन भी करेंगे। इससे उन गच्छोंमें झगड़े खड़े होंगे। इस प्रकार क्रमशः इस क्षत्रिय-जैनधर्मकी स्थिति वैश्योंके हाथमें चली जाने पर चलनी के समान हो जायगी। ऐसी स्थितिमें भस्म-ग्रह पूर्ण होगा।

भस्मग्रहके उतर जानेपर ये विषाद—झगड़े कम होंगे ; और युग-प्रधानका तीसरा उदय होनेपर जन-धर्मका नया बल प्रकट होगा। आन्तरिक कलहाग्नि भी कुछ शान्त होगी।

उन युगप्रधानोंका प्रभाव अन्य लोगोंपर भी पड़ेगा। उनके उपदेशके प्रभावसे धर्मवृद्धि होती जायगी। चाहे जैसी स्थिति होने पर भी पाँचवें आरेके अन्ततक जैन-धर्म अस्खलित ही बना रहेगा। संसारपर जब तक जैनधर्मका प्रभाव रहेगा, तब तक पृथ्वी रस युक्त रहेगी। मेघ वृष्टि करेंगे, राजा-प्रजाके बीच अच्छा व्यवहार रहेगा। लोग सुखी जैसे जान पडेंगे। वाणिज्य,

कृषि-कर्मादि भी तब तक चलते रहेंगे। पाँचवें आरेके अन्तमें-अन्तिम युगप्रधान दुप्पसहसूरि छठके तपोनन्तसे प्रथम देवलोकमें जायेंगे। वे दो हाथके शरीरवाले होंगे, उनके बाद क्रमशः जैनधर्म नष्ट हो जायगा। तत्पश्चात् उसी समय राजाकी मृत्यु होनेसे राजधर्म भी नष्ट हो जायगा। अर्थात् व्यवहार धर्मका नाश हो जायगा। छठे आरेके आरम्भमें दो हाथका शरीर और बीस वर्षका उत्कृष्ट आयुष्य रहेगी; किन्तु यह परिमाण भी क्रमशः घटता जायगा। छठे आरेके आरम्भमें घर-द्वार, माल-मिल्कियत. आदि अग्निकी वर्षासे नष्ट हो जायेंगे।

इस प्रकार राजाके पूछने पर आर्य सुहस्तिस्वामीने आगामी कालका किञ्चित् वस्तु स्वरूप कह सुनाया। उसके बाद राजा वैराग्य धारण कर धर्ममें प्रीति बतलाता हुआ उसमें विशेष रूपसे सावधान होगया।

छत्तीसवाँ परिच्छेद

अवन्ती पार्श्वनाथ

—:०:—

एकदिन आर्य सुहस्तिस्वामी अपने समुदाय-सहित विहार करते-हुए अवन्ती नगरीमें आये और वे भद्रा सेठानीके एक विशाल भवनमें ठहरे।

एकदिन सायंकालके समय सूरीश्वर नलिनी गुल्म विमानके अध्ययनकी आवृत्ति कर रहे थे; उसे भद्रा सेठानीके देव-समान कान्तिवाले अवन्ति सुकुमाल नामक पुत्रने सुना; जो कि मकानकी सातवीं मञ्जिल पर भोग-विलासमें ही मग्न था। वह देवाङ्गनाओंके समान बत्तीस स्त्रियोंके साथ भोग-विलासमें प्रवृत्त होते हुए भी उसका मन उस नलिनी-गुल्म विमानका अध्ययन सुननेमें विशेष रूपसे उत्सुक हुआ; किन्तु ठीक तरहसे सुनाई न देनेके कारण वह कुमार उन रमणियोंको त्याग कर नीचे उतरा और वस्ती द्वारपर आया।

उस अध्ययनको सुननेपर उसे भास हुआ कि ऐसा तो मैंने कहीं देखा है। अतः इस विषयका चिन्तन करते हुए जाति-स्मरण ज्ञान होनेपर वह सूरीश्वरके

निकट आकर उनको वन्दन कर कहने लगा कि :—

"भगवन् ! क्या आप उस विमानमेंसे आ रहे हैं ?"

आचार्यने उसकी ओर देखकर स्मितमुद्रामें कहा,
"वत्स ! उस विमानमेंसे तो मैं नहीं आ रहा हूँ ; किन्तु भगवन्त महावीरने जो कुछ कहा है, उसीका मैं अध्ययन कर रहा हूँ।"

"अहा ! श्रीभगवन्तकी कैसी ज्ञान शक्ति है ! आप जैसा कि वर्णन कर रहे हैं, वह ठीक वैसा हा है !"

"तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ ?"

"भगवन् ! मैं सातवीं मञ्जिलपर विलास मग्न था ; वहाँ पर इस अध्ययनके शब्द मेरे सुननेमें आये। जिससे मुझे जातिस्मरण ज्ञान हुआ और उसीसे मैं जान गया हूँ कि उस विमानमेंसे ही मैं यहाँ आया हूँ और अब फिर वहाँ जानेकी इच्छा करता हूँ ! सो, भगवन् ! वहाँ अब किस प्रकार जा सकता हूँ ?"

उसकी ऐसी वाणी सुनकर सूरीश्वर विचारमें पड़गये।
"ओहो ! कैसी भवितव्यता है ? भावी बलवान है।"

"वत्स ! वहाँ जाना हो तो दीक्षा लेनी चाहिए ! चारित्रके विना वह स्थान प्राप्त नहीं हो सकता !"

"तो आप मुझे दीक्षा दीजिये। मुझपर अनुग्रह अवश्य कीजिये ! वह मेरा

देवाङ्गनाएँ और मेरे सेवक देवगण तथा वह समृद्धि वैभव, ठकुराई, आदिके सम्मुख ये सब तुच्छ हैं। ये स्त्रियाँ तो डाकिनीकी तरह जान पड़ती हैं। शीघ्रतासे फिर मैं वहाँ पहुँच जाना चाहता हूँ।"

"वत्स! तू अभी निरा बालक है। साधु पालन करना दुष्कर है। लोहेके चने चबा सहज है, किन्तु अतिचार-रहित व्रत पालन बड़ा ही कठिन है।"

"भगवन्! जैसे भी हो, मैं यह व्रत लेनेको हूँ। मैं वहाँ जानेके लिए अधीर हो रहा हूँ। चाहे जैसे करके भी मुझे व्रत-दीक्षा प्रदान कीजिये।"

"यदि तेरा पूर्ण आग्रह है तो प्रथम अपने वर्ग एवं माताकी अनुमति प्राप्तकर!" गुरुने कहा।

तब अवन्ति कुमारने घर आकर माताको करनेके बाद उससे आज्ञा माँगी; किन्तु अनुमति प्रदान नहीं की। अतएव उस साहसी कुमारने अपने हाथोंसे ही परिवारके देखते हुए लोच डाला और गृह व्यवहारसे विमुख होकर वह साधु गया। अतएव विवश दशामें आज्ञा प्राप्त होनेपर उसी वेशमें आर्य सुहस्तिस्वामीके पास आया उनके सम्मुख पाँच महाव्रत ग्रहण किये।

इसके बाद अवन्तिकुमारने कहा :—"भगवन्! मैं चिरकाल पर्यन्त व्रत-पालन करनेके लिए तो सर्वथा असमर्थ हूँ। अतएव अब मुझे क्या करना चाहिए? उसका ठीक मार्ग बतलाइये!"

"वत्स! इस अवन्तीके कंथारिका-वनकी स्मशान भूमिमें जाकर तू वहाँ अनशन अङ्गीकार करके रहना। तू अपने ध्यानमें ही निरन्तर मग्न रहना।" गुरुने ज्ञानसे लाभ होता देखकर आज्ञा प्रदान की।

गुरुकी आज्ञा प्राप्तकर अवन्ति मुनि स्मशानकी ओर चले गये। सुकुमार होनेसे कङ्कर-काँटे आदि चुभनेके कारण उनके पाँवसे रक्त बहने लगा। फिर भी वे उसकी पर्वाह न कर स्मशानमें पहुँचकर कायोत्सर्ग मुद्रामें रहे और अनशन करके कायाको विसर्जित कर दिया।

मार्गमें उनके चरणसे रक्त टपकनेके कारण उसकी गन्धसे आकर्षित हुई एक सियारिन अपने बच्चों सहित उस रक्तको चाटती-चाटती कंथारिकाके वनमें जा पहुँची।

यमराजकी बहिनके समान वह सियारिन रुधिरसे भरे उन मुनिके चरणोंको खाने लगी। रात्रिके प्रथम प्रहरतक उसने दोनों पैर खा लिये और दूसरे प्रहरमें उनकी दोनों जङ्घाएँ खा गई। इसके बाद तीसरे प्रहरमें उनका उदर खाने लगी। इस प्रकार तीन प्रहर तक उसने मुनिजीके

शरीरकी कदर्थना की। फिर भी चतुर्थ प्रहरमें महासत्वशाली शुभध्यानके द्वारा अस्खलित रूपसे मृत्य पाकर जहाँसे आये थे वहीं फिर देवाङ्गनाओंके ... रमण करनेको चले गये और नलिनी गुल्म ... महर्द्धिक देवता होगये।

प्रातःकाल भद्रामाता अपनी पुत्रवधुओंके साथ ... वन्दन करने आयी ; उस समय वहाँ अपने पुत्रको ... देखा। अतएव उसने आचार्य महाराजसे पूछा कि : "मेरा पुत्र कहाँ है ?"

गुरुने ज्ञानके द्वारा समस्त वृत्तान्त जानकर ... कि :—"तुम्हारा पुत्र तो जहाँसे आया था, वहीं उत्पन्न होगया !"

इसके बाद भद्रा शोक करती हुई ... वनमें गई और वहाँ पुत्रका कलेवर देखकर वह अश्रुधा बहाती हुई पुत्रवधुओं-सहित विलाप करने लगी। "अरे बेटा ! हम सबको पूर्ण आशा थी कि तू दीक्षा लेनेपर भी प्रतिदिन दर्शन देता रहेगा ; किन्तु तो हमारे इस मनोरथको भी निष्फल कर ... तू इतना निर्दय होगया ! हाय ! दीक्षा लेकर एकबार भी मेरा आङ्गन पवित्र नहीं किया ! ... व्रत लेनेकी इच्छासे तू हमारे प्रति निर्मोही होगया

किन्तु गुरु महाराजको छोड़कर तू कैसे चला गया ? हाय ! वत्स ! अब तेरा दर्शन कहाँ होगा ? अहा, जहाँ संयोगमें वियोग है ; वहीं वियोगमें दुःख भी है। दुःखसे ही कर्म-बन्धन है। कर्म-बन्धनसे ही संसारमें जन्म-मरण होता है ! अरे ! आज मेरा समृद्धि-युक्त घर भी शून्य हो गया !—अरण्यवत् होगया !--स्मशान तुल्य होगया !" इस प्रकार विलाप करती हुई भद्रा सेठानी क्षिप्रा नदीके तटपर पुत्रका मृतकार्य पूरा करके वधुओं सहित घर लौट आई ! आज उसे वह समृद्धि पूर्ण घर खानेके लिये दौड़ रहा था। उस शून्य भवनमें उसे जरा भी चैन नहीं मिल रही थी। अतः वैराग्यसे रङ्गी हुई उस भद्रा सेठानीने अपनी एक सगर्भा वहूको घरमें रखकर बाकी सब वधुओंके साथ गुरुसे दीक्षा ग्रहण करली।

इसके बाद अवन्तिकुमारकी गर्भवती स्त्री घरपर रही ; उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ; जिसका नाम महाकाल रखा गया। उस महाकालने युवावस्थामें जिस स्थानपर पिताका देहान्त हुआ था ; वहाँ पर महाकाल नामका प्रासाद बनवा कर श्रीपार्श्वनाथ भगवान की नई प्रतिमा निर्माण करवा, अपने पिताके नामपर वहाँ "अवन्ति-पार्श्वनाथ"के नामसे प्रतिष्ठित करवायी।

गुरुमहाराज तो उसके बाद वहाँसे विहार भव्यजनोंको प्रतिबोध देकर पृथ्वीको पवित्र करने लगे वे अवन्ती पार्श्वनाथ भी शासन-प्रभावक प्रतिष्ठित होनेसे चारोंवर्ण-द्वारा पूजाने लगे; कालान्तरमें ब्राह्मणोंकी शक्ति बढ़ जानेसे उन्होंने प्रतिमाको गुफामें गाड़कर उस पर महादेवका स्थापित कर दिया और तबसे वह मन्दिर मन्दिर कहलाने लगा। ईश्वर रूपमें वही फिर कालेश्वरके नामसे प्रसिद्ध होगया।

इसके पश्चात् महान् विक्रमके समयमें दिवाकर सूरिने शिवलिङ्ग हटवा कर वहाँ गड़ी अवन्ती पार्श्वनाथकी मूर्ति हजारों लोगोंके सम्मुख प्रकट की; यह इतिहास प्रसिद्ध घटना है।

सैंतीसवाँ परिच्छेद

अखण्डित आज्ञा

—:०:—

अनार्य-देशके किसी बलवान सामन्तने सम्प्रति राजाको प्रबल अहिंसा धर्मका उपासक जानकर उसके

विरुद्ध बलवा उठाया और उसने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर सम्प्रतिके दूतोंका अपमान करना आरम्भ किया। एक ओर वह अपना सैनिक बल और उसके साधन बढ़ाता गया, और दूसरी ओर वह अगल-बगलके अन्य राजाओंको भय अथवा लालचके द्वारा दबाते हुए अपने पक्षमें मिलाकर भी अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। उस अभिमानी राजाने समझलिया था कि :—"सम्प्रति दया-धर्मका उपासक बनकर निर्बल होगया होगा; अतएव उसपर विजय प्राप्त करना कोई कठिन कार्य नहीं है।" यह समझकर वह सम्प्रतिकी आज्ञाओंको अमान्य करने लगा।

दूतोंने आकर महान् सम्प्रतिको यह समाचार सुनाया। अतएव उसने उस उद्धत राजाका गर्व तोड़नेके लिए अपने सामन्तोंमेंसे एक सामन्तको बहुत बड़ी सेना और अन्य सरदारोंके साथ भेजा।

उस सामन्तकी विशाल सेनाको अपने देशपर आक्रमण करनेके लिये आते देखकर वह अनार्य राजा भी अपनी बलवान् सेना और कितने ही अन्य राजाओंके साथ उसके सामने आ खड़ा हुआ। परस्पर भयङ्कर युद्ध हुआ और उसमें अनेक जीवोंका संहार हुआ।

रथियोंके साथ रथी और पैदलके साथ पैदल तथा

घुड़सवारके साथ, घुड़सवार अपने स्वामीका नमक ॰
करते हुए वीरता पूर्वक लड़ने लगे। वह बलवान अनार्य
राजा और उसके पुत्र सेनाके मोर्चेपर शस्त्र धारणकर डट
गये। घास-फूसकी तरह सैनिकोंका सर्वनाश होते देख
कर सम्प्रतिकी सेना बहुत बड़ी होते हुए भी उत्साह
रहित होगई। अपनी सेनाकी यह परिस्थिति देखकर ॰
सामन्त चकित हो गया। उसने विचार किया कि :
"यदि अपनी सेना हार गई तो मैं महाराजको क्या ॰
दिखाऊँगा। अतः उस कृष्ण मुखसे वहाँ जानेकी ॰
तो यहीं आत्मसमर्पण कर देनेसे स्वामि-भक्ति तो ॰र्थ
होगी। फिर शत्रु भी तो बलवान है। वह एक ॰
हुए भी अनेक रूपमें दिखाई देकर मेरी सेनाको नष्ट
रहा है। ऐसी दशामें मुझे किसी प्रकार भी उस॰
उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।"

इस प्रकार युद्ध करते हुए कई दिन ॰
प्रवाहकी तरह बह गये; किन्तु फिर भी कोई ॰
नहीं निकलसका। दोनोंकी सेनामें असंख्य जन ॰
हुआ था। फिरभी अनार्यराजा उत्साहमें था;
विजयका पासा उसे अपने पक्षमें दिखाई देता था।

महान् सम्प्रतिके सामन्तने अपने सरदारोंको ॰
कर मन्त्रणा की कि—"अब क्या करना चाहिए

क्योंकि हमारी सेनाका बहुत बड़ा भाग नष्ट हो चुका है ; फिर भी विजयके कोई चिह्न नहीं दिखाई देते ! इसपर एक सरदारने कहा कि--"शत्रु बलवान है, अजेय है, अतएव नयी सेना मँगवाई जाय और तब तक हम सब बचाव पक्षमें खड़े होकर लड़ते रहें !"

"किन्तु हम किस मुँहसे यह समाचार भेजें ? इससे तो महाराजको तुरन्त ही हमारी निर्बलताका पता चल जायगा। इतनी तैयारी होते हुए भी जब हम कुछ न करसकें, तो दूसरी सेनाके आनेपर भी क्या करलेंगे ?"

"ठीक है, कल प्रातःकाल हमें केसरिया वस्त्र धारण कर एकदम शत्रुपर टूट पड़ना चाहिए। यदि उसे जीत सके तो जियेंगे ; नहीं तो हमारे बाद भले ही महाराज नई सेना लेकर आवें ! किन्तु हारकर या पराजयके समाचार वहाँ भेजना शौर्यको कलङ्कित करने जैसा होगा। क्षत्रियका बल तो उसका भुजाओंमें ही होता है--उसकी तलवारमें होता है। महाराज स्वयं ही इसके प्रत्यक्ष आदर्श हैं।" एक सरदारने कहा :—

"निश्चित ही इस समयके वे महारथी पुरुष हैं। वे हमारी पराजयका समाचार सुनकर कितना दुःख अनुभव करेंगे ? वे हार क्या वस्तु है ; इसे वासुदेवकी तरह जानते ही नहीं। केवल जीतना ही उनका महामन्त्र है। अतएव

हमें भी अपनी भुजाओंका पूरा बल कल सवेरे शत्रुको अवश्य बतलाना ही चाहिए।" दूसरे सरदारने कहा।

"शाबाश! बहादुरों! मैं भी आपके साथ सहमत हूँ। कल सवेरे सेनापतिके रूपमें मैं स्वयं मोर्चे पर जाऊँगा। तुम लोग मेरे पीछे रह कर युद्धमें अपना क्षत्रियत्व दिखलाना। कलका अस्त होता हुआ सूर्य या तो वह नहीं देखेगा या मैं ही न देखूँगा; किन्तु अपने जीते-जी तो मैं पराजयके समाचार महाराजके पास कदापि नहीं भेजूँगा।" उस सामन्तके शब्दोंका सबने सम्मान किया और जोरोंसे रणसंग्राम होने लगा।

गुप्तचर-द्वारा यह समाचार अनार्य राजाको भी विदित हो गये थे। यह जानकर उसको बड़ी प्रसन्नता हुई कि—"कल युद्धका अन्त आ जायगा और मेरा राज्य ही संसार पर इस जमानेमें स्वतन्त्र महाराज्य कहलाएगा।"

दूसरे दिन सूर्योदय होते ही दोनों दलकी सेनाएँ आमने-सामने खड़ी होनेपर युद्ध आरम्भ होगया। आज युद्धका जोश भयङ्कर था। सामन्त और उसके सरदार सेनामें सबसे आगे खड़े होकर लड़ रहे थे। इसके कारण सैनिकोंमें अपूर्व उत्साह दिखाई देता था। मारकाट आरंभ हो गयी थी। तलवार, भाले और धनुष्यसे

निकले हुए तीखे बाण परस्पर टकरा रहे थे। संसारकी समस्त प्रवृत्तियोंसे ध्यान हटकर उनका चित्त केवल युद्धमें एकाग्र हो रहा था। युद्ध करते-करते तीसरा प्रहर होने आया। लाखों सैनिक युद्ध भूमिपर बलिदान होगये। इसी बीच अनार्य राजा और सामन्त राजा लड़ते-लड़ते आमने-सामने आगये। दोनों परस्पर टूट पड़े। दोनों की आँखोंमें खून और भुजाओंमें बल था। शरीरमें अपूर्व शौर्य था। स्फूर्ति थी। दोनों ही एक दूसरेका प्राण हरणकर युद्धका अन्त करना चाहते थे। शत्रुसे अपना-अपना बचाव करते हुए भी परस्पर प्रहार करनेके लिए अचूक निशाना लगा रहे थे। इस प्रकार कुछ समय तक युद्ध चलता रहा। भुजबलमें दोनों ही समान प्रतीत होते थे। किसमें अधिक शक्ति है, इसका निर्णय नहीं हो सका। साथ ही दोनोंमें किसकी हार-जीत होगी, यह तो भावीके पर्देमें छिपा होनेसे अल्प मतिवालोंके लिए कुछ भी निश्चय करना कठिन था।

दोनों एक दूसरेके प्रहार चुका रहे थे। दोनोंके सरदार अपने-अपने स्वामीकी रक्षाके लिए उनके दोनों ओर खड़े हो, लड़कर शत्रुओं पर प्रहार कर रहे थे।

इतने ही में दोनोंके हाथियोंके सिर आपसमें टकराये। सामन्तके हाथीने क्रोधसे अपनी सूँडको शत्रुके

हाथी पर जोरसे पछाड़ कर उसकी सूँड़को ऐसी दबा
कि वह चक्कर खाने लगा। यह देख, अनार्य राजा
विचलित सा हो उठा। इतने ही में सामन्त एक।
उछल कर उसके हाथीपर जा पहुँचा और वहाँ दोनों
बाहु युद्ध होने लगा। सामन्तके हाथीने अपने
अच्छा मौका मिला देखकर शत्रुके हाथीको
सूँडकी लपेटमें फँसाये रक्खा।

अन्तमें सामन्त सरदारने अनार्य राजाको युद्धमें पछाड़कर बन्दी बना लिया और उसे अपने सरदारोंके बीच फैंक दिया। भालेकी द्वारा पराजित राजा मरते-मरते बड़ीही गिरफ्तार कर लिया गया। तत्काल ही सामन्त पासमें खड़े हुए अपने हाथीपर कूद गया। यह देख शत्रुकी सेना भी चारों ओरसे भागने लगी।

इसके बाद विरोधी राजाओंको भी सामन्तने बन्दी बना लिया और उनकी राजधानियोंमें अपनी दुहाई फिराते हुए वहाँ अपने अधिकारी नियुक्त कर दिये। इसके बाद राजधानीमें वापस लौटकर महाराजको वन्दन किया। राजा सम्प्रतिने भी सामन्त और सरदारोंको उनकी योग्यताके अनुसार पुरस्कार देकर सम्मानित किया। साथही पराजित राजाओंको अपने

यहाँ वन्दीगृहमें रखवाकर उनके पुत्रोंको अपनी आज्ञा माननेपर राज्य देदिये। इसप्रकार तीनोंखण्डमें सम्प्रति की आज्ञा अखण्डित रूपसे व्याप्त हो गई। यह आज्ञा वासुदेवके समान उसके जीवनके अन्ततक कायम बनी रही।

अड़तीसवाँ परिच्छेद

उपसंहार

—:०:—

समय अपना काम किये जाता है और उसका अनुसरणकर नयेका पुराना और पुरानेका नया होता रहता है। सुखशान्तिमें तीनों खण्डका राज्य भोगते हुए महान् सम्प्रतिने वीर भगवानकी तीसरी शताब्दि भी व्यतीत करदी। इसी प्रकार चौथी शताब्दिके वर्षभी पानीके प्रवाहकी तरह बहे जा रहे थे। इस बीच भूमण्डल पर अनेक घटनाएँ घटित हो रहीं थीं। जिस समय जो होनेवाला था, वह हो रहा था। वीरसंवत् २९१में अर्थात् लगभग तीसरी शताब्दिके अन्तमें श्री आर्यसुहस्तिस्वामी भी सुस्थित एवं सुप्रतिबद्धको

अपने स्थानपर स्थापितकर देवबालओंकी मनोकामना पूर्ण करने चले गये। उसी अवधिमें सम्राट् अशोक भी मगधके सिंहासनका त्यागकर परलोकका राज्य भोगनेके लिये प्रयाण कर गया। इसके बाद महान सम्प्रति तीनों खण्डके अधिपति होकर राज्य करने लगे। सोलह हजार राजा (कहीं कहीं आठ हजार भी कहे गये हैं; तत्व केवलीगम्य) उनकी सेवामें उपस्थित रहते थे। जबतक पितामह विद्यमान रहे तबतक मगधपति वे (अशोक) ही रहे; और महान् सम्प्रति उज्जैनमें ही रह कर अपना अधिकतर समय व्यतीत करते थे। वहींसे संसारके सभी देशोंपर अपना शासन करते थे। उनकी आयु पूरी सौ वर्षकी होनेसे दीर्घकाल पर्यन्त पृथ्वीकी समृद्धि भोगकर चौथी शताब्दिके भी कुछ वर्ष व्यतीत होनेके बाद लगभग पन्द्रह बीस वर्ष बीतनेपर वे अपनी आयुके सौवर्ष पूर्णकर देवलोककी समृद्धि भोगने चले गये। वहाँसे शिववधुकी गोदमें खेलनेके लिए जाएँगे। उन्होंने तीनों खण्डकी पृथ्वीपर-प्रायः प्रत्येक ग्राम और नगरमें जिन-मन्दिर निर्माण करवाकर पृथ्वीको जिन-मन्दिरोंसे विभूषितकर दिया। उन्होंने ६६००० जिनमन्दिरोंका जीर्णोद्धार करवाया और ३६००० नये जैन मन्दिर बनवाये। यह बात पहले

ही हम देखचुके हैं कि प्रतिदिन कम-से-कम एक जिन मन्दिर तैयार हो जानेका समाचार सुननेके बाद ही सम्प्रतिने भोजन करनेका नियमसा बना लिया था। इसप्रकार उनका सौ वर्षकी आयुमें उन्होंने नवीन जैन मन्दिर बनवाये और प्राचीन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करवाया।

इसके अतिरिक्त उनके समयमें पीतल, ताँबा, सोना, चांदी एवं पाषाणसे बनाई हुई प्रतिमाएँ सवाकरोड़की संख्यामें प्रतिष्ठित हुई हैं। उनके बनवाये हुए मन्दिर नागेल, गिरनार, शत्रुञ्जय, रतलाम आदि अनेक स्थानोंमें आज भी देखनेमें आते हैं। इसीप्रकार उनकी स्वतःकी प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ भी अनेक स्थानोपर देखनेमें आती हैं।

राजा सम्प्रतिने अनार्य देशोंमें भी साधुओंको विहार करवाकर उनके उपदेश द्वारा अनेक जैनधर्मी बनाये थे। उस महान् सम्राट्के समयमें जैनोंकी संख्या कम-से-कम चालीस करोड़ मानी जाती थी। वे स्वयं भी बारह-व्रत-धारी पक्के जैन थे। तीनोंकाल जिनपूजन करते एवं स्वजन और स्वधर्मियोंके प्रति बन्धुवत् वात्सल्यभाव रखते थे।

उनके समयमें श्री महावीर स्वामीके समयसे च आते हुए निर्ग्रन्थ गच्छका नाम कौटिकगच्छ ह

गया। आर्य सुहस्तिस्वामी अपने पाट पर सुस्थित और सुप्रतिबद्धको स्थापितकर देव लक्ष्मी भोगने चले गये। उसके बाद इन सूरिवरोंके द्वारा करोड़बार सूरिमन्त्रका जप करनेसे उनके गच्छका नाम "कौटिकगच्छ" ...र प्रसिद्ध हो गया।

ऐसे महान् सर्वोत्तम तीनों खण्डके ...पति अखण्ड राज्य अनेक वर्षोंतक भूमण्डल पर रहते हुए जैनेतर इतिहासमें कहीं इनका नामोनिशान भी न... मिलता ; यह एक आश्चर्य जनक बात है। ...र्यवंर मुकुट मणि तो महान् सम्प्रति ही थे! महान् अ...क पश्चात् महाराज सम्प्रति सिंहासनपर विराजमान हुए किन्तु जैनोंके अतिरिक्त अन्य किसी भी लेखक या विद्वा... इतिहासमें उनका कहीं पर भी उल्लेख नहीं ... है। महान् सिकन्दर और महान् चन्द्रगुप्त और म... अशोकके लिए तो इतिहासकारोंने कई पन्ने रङ्ग दिये है किन्तु इन महान् प्रतापी सम्राट्के लिए लिखनेका अवक... कदाचित् इनके जैन होनेसे ही न मिल सका हो।

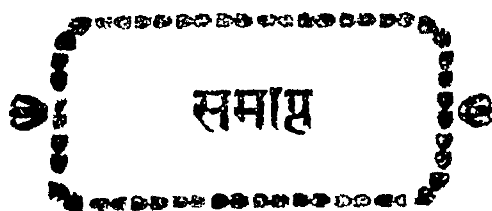
महाराजा सम्प्रति उस युगके एक प्रचण्ड यो... और महारथी थे। बल्कि उनके बाद आज तक अन्य किसी राजाने उनके समान पृथ्वी ... नहीं की। यह एक निर्विवाद बात है।

जगत्के इतिहासमें इतिहासकार भले ही इनका नामोल्लेख भी न करें ; किन्तु इससे किसी प्रकार भी उनका अस्तित्व नष्ट नहीं हो सकता। श्री नेमिनाथके समयमें हुए कृष्ण, बलभद्र ही नहीं उनसे भी लाखों वर्ष पहले हुए राम-लक्ष्मण इतिहासके पृष्ठोंपर जीवित विद्यमान हैं ; किन्तु उनसे भी अधिक समृद्धिशाली होते हुए भी उनके पश्चात् हुए बारहवें ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ; जिन्होंने छः खण्ड पृथ्वीपर अधिकार स्थापित कर सारे भरतक्षेत्रमें अपनी अखण्ड आज्ञा प्रवर्तित की थी ; उनका भी जैनोंके सिवाय अन्य इतिहासोंमें कहीं नामोल्लेख भी नहीं मिलता।

अस्तु। इतिहासकार सर्वज्ञ तो होते ही नहीं ; अतएव उनकी अल्पमतिके अनुसार उन्हें जितना भासमान ज्ञान हुआ, उतना ही उनके द्वारा लिखा जानेका अनुमान किया जा सकता है। अन्यथा श्रीकृष्णको हुए आज लगभग ८६००० वर्ष व्यतीत हो जानेपर भी उनका अस्तित्व माना जाता है, और उनसे समर्थ भरताधिप ब्रह्मदत्त, जिन्हें प्रायः ५०००० वर्ष भी नहीं हुए हैं। उनका नाम भी अन्य इतिहासोंमें न दिखाई दे ; यह निश्चित ही एक आश्चर्य जनक विषय कहा जा सकता है।

मौर्यवंशकी अन्तिम अखण्ड ज्योति रूपमें ही म
सम्प्रति थे। उनके पश्चात् मौर्यवंशका पतन हुआ।
वंशके अन्तिम बृहद्रथ राजाके पाससे उसीके सेन
पुष्पमित्रने उसकी निर्बलतासे लाभ उठाकर राज्य
लिया और इस प्रकार वह ईस्वी सन्से १८५ वर्ष
मगधके सिंहासन पर बैठा था।

किन्तु महान् सम्प्रतिके पश्चात् होने वाले
उनके समान सत्ताका उपभोग नहीं कर सके।
बादके अनेक राजा तुरन्त ही स्वतन्त्र होगये और
लोगोंमें जैनधर्मकी भावना भी क्रमशः नष्ट होती
गई। शासन देवता जागृत हों और फिरसे पृथ्वी
सम्प्रतिका समय प्राप्त होने पर संसार जैनमय बन
अहिंसाका उपासक बन जाय तथा लोगोंमें जैनधर्म
भावना जागृत हो! यही भावना रखते हुए म०
सम्प्रतिकी जीवन गाथा समाप्त की जाती है।



Printed by—S. K. Manna.
AT THE BHOLANATH PRINTING WORKS
13 Rajendra Sen Lane, Calcutta-6.